आलोचनात्मक अध्ययन...

(प्रश्नोत्तर रूप में)

pate = 6H

गोदान

—राजनाथ शर्मा एम० ए०

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

गोदान

[प्रश्नोत्तर शैली में आलोचनात्मक अध्ययन
एवं विशिष्ट स्थलों की व्याख्या]

(पूर्णतः संशोधित एवं परिवर्द्धित चतुर्थ संस्करण)

लेखक—
राजनाथ शर्मा एम० ए०

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा

चतुर्थ आवृत्ति
सन् १९६४

मूल्य : २.५०

मुद्रक —
कैलाश प्रिन्टिङ्ग प्रेस,
बाग़ मुजफ्फर खाँ, आगरा

दो शब्द

'गोदान' हिन्दी के उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। यह भारतीय किसान-जीवन का महाकाव्य है। प्रेमचन्द ने इसमें राजनीतिक दलदल से दूर रह कर किसान-जीवन की उस मूलभूत समस्या का यथार्थ चित्रण किया है जिसने भारत के ही नहीं अपितु सारे संसार के विशेष रूप से पिछड़े हुए देशों के किसानों के जीवन को भार बना रखा है और वह समस्या है ऋण की समस्या। 'गोदान' की सबसे बड़ी और क्रान्तिकारी विशेषता यह है कि इसमें प्रेमचन्द अपने सम्पूर्ण पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर समस्याओं के किसी भी प्रकार के काल्पनिक समाधानों को प्रस्तुत करने के मोह से अपने को पूर्णरूपेण बचा ले गए हैं। 'गोदान' के पूर्ववर्ती उनके अन्य उपन्यासों के समान इसमें हमें कोई समाधान नहीं मिलता, केवल अस्पष्ट संकेत मिलता है। सत्य को संकेत के रूप में प्रस्तुत करना कलाकार की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'गोदान' की सभी विशेषताओं पर प्रकाश डालती है। इसे लिखते समय हमने विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रेमचन्द तथा 'गोदान' पर लिखित अनेक पुस्तकों से सहायता ली है। अतः हम उन विद्वानों के आभारी हैं। 'गोदान' में 'राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास' (Epic Novel) के सम्पूर्ण गुण मिल जाते हैं। हमने यथाशक्ति इस पर संक्षेप में प्रकाश डाला है। फिर भी स्थानाभाव के कारण उससे हमें पूर्ण सन्तोष नहीं रहा है। इसका कारण यह है कि यह पुस्तक केवल विद्यार्थियों के लिए ही लिखी गई है अतः विस्तार में जाना सम्भव नहीं था। यदि इससे विद्यार्थी-वर्ग लाभान्वित हो सका तो हम अपने इस लघु प्रयास को सार्थक समझेंगे।

बसन्त पंचमी १९५८
लक्ष्मी निवास
गोकुलपुरा, आगरा

राजनाथ शर्मा

नवीन संस्करण की भूमिका

'गोदान' पर अनेक विद्वानों द्वारा उच्चकोटि के ग्रन्थ लिखे गए हैं। उनके रहते हुए भी इस छोटी-सी पुस्तक की उपादेयता एवं लोकप्रियता का सबसे सबल प्रमाण यही है कि अल्पकाल में ही इसके अनेकों संस्करण निकल चुके हैं। इसमें यथा-स्थान संशोधन एवं परिवर्द्धन कर दिया गया है। आशा है स्नेही पाठक हमें सुझाव देकर इसे और भी अधिक उपादेय बनाने में सहायता करेंगे।

राजनाथ शर्मा

प्रश्न-सूची

---:*:---

गोदान

प्रश्न १—'गोदान' की कथा संक्षेप में अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर—'गोदान' में ग्रामीण एवं नागरिक, दोनों ही प्रकार के जीवन की कथायें हैं। कथा का प्रारम्भ ग्रामीण जीवन के संघर्षमय वातावरण से प्रारम्भ होता है। होरी बेलारी नामक गाँव का पाँच बीघे का किसान है। होरी को अपने जमींदार रायसाहब अमरपालसिंह से भेंट करने जाना है। धनिया अपना काम छोड़कर बार-बार जमींदार के यहाँ जाने की होरी की आदत का विरोध करती है परन्तु होरी व्यवहार-कुशल व्यक्ति के समान यह कहकर कि—"यह सबसे मिलने-जुलने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है", रायसाहब से मिलने चल देता है। मार्ग में वह अपनी दीन दशा एवं एक गाय खरीदने की इच्छा पर विचार करता हुआ आगे बढ़ता है कि पड़ौस के गाँव के ग्वाले भोला से उसकी भेंट हो जाती है, जो अपनी गायों के साथ चला आ रहा है। भोला की एक गाय पर होरी का मन ललचा उठता है। भोला विधुर है। वह अपने विवाह की चिन्ता में है। होरी उसकी प्रशंसा करता हुआ उसका एक विधवा से विवाह करा देने का उसको लालच देता है। बदले में भोला भी उसे वही गाय ले लेने के लिए कहता है, परन्तु होरी अपनी मर्यादा बचाने के लिए उस समय गाय नहीं लेता। कह देता है कि फिर मँगा लूँगा।

इसी समय भोला भूसे की कमी का रोना रोता है और होरी उसे थोड़ा सा भूसा अपने घर से दे देने का वचन देता है। होरी उस समय गाय इसीलिए नहीं लेता कि कहीं भोला यह न समझे कि यह मेरी मजबूरी का फायदा उठा रहा है। होरी वहाँ से आगे बढ़कर रायसाहब के पास पहुँचता है। रायसाहब राष्ट्रवादी हैं कौंसिल के मेम्बर हैं, ऊपर से खूब न्याय आदि की बातें करते हैं, अत्याचारों को बुरा समझते हैं। और होरी के सामने अपनी मजबूरियों और

मुसीबतों का रोना रो कर यह सिद्ध कर देते हैं कि वे बड़े सज्जन पुरुष हैं। परन्तु इसी समय उनका एक चपरासी आकर सूचना देता है कि मजदूर बेगार नहीं करना चाहते। रायसाहब यह सुनकर क्रोध से उबल पड़ते हैं और उन्हें धमकाने और मारने चले जाते हैं। उनके इस परिवर्तित रूप को देखकर होरी सोचता है कि–"अभी यह कैसी-कैसी नीति और धरम की बातें कर रहे थे और एकाएक इतने गरम हो गए।" होरी रायसाहब द्वारा आयोजित धनुष-यज्ञ की लीला में राजा जनक के माली का पार्ट पाकर अपने भाग्य को सराहता हुआ घर लौट आता है।

घर आने पर होरी रायसाहब की प्रशंसा करता है परन्तु उसका पुत्र गोबर उन्हें रंगा हुआ सियार समझता है क्योंकि वे सारे सुख-साधन रहते हुए भी दुखी बनने का 'ढोंग' रचते हैं। इसके उपरान्त होरी भोला से गाय प्राप्त करने की आशा, उसे भूसा देने का वायदा एवं भोला का विवाह करा देने के अपने चालाकी भरे आश्वासन का उल्लेख करता है। होरी की इस चालाकी पर माँ बेटे दोनों उसका तिरस्कार करते हैं। परन्तु होरी यह कहकर कि भोला धनिया की बहुत प्रशंसा कर रहा था, धनिया को अपने पक्ष में कर लेता है। गाय आने के समाचार से होरी की दोनों लड़कियां सोना और रूपा तथा गोबर, धनिया आदि सभी प्रसन्न हो उठते हैं। कंगाल के घर लक्ष्मी जो आने वाली थी।

एक दिन भोला भूसा लेने आ पहुँचता है। धनिया तथा अन्य सभी उसका बड़ा स्वागत करते हैं। होरी एक खाँचा भूसा देने की बात कहता है परन्तु धनिया तीन खाँचे भरवा देती है और गोबर को एक-एक खाँचा देकर भोला के घर पहुँचा आने को कहती है। भोला के घर भोला की विधवा बेटी झुनिया से मुलाकात होती है। दोनों परस्पर आकर्षित हो उठते हैं। दूसरे दिन गोबर गाय लाने भोला के घर पुनः जाता है जिसका कि भोला ने वायदा कर दिया था। गाय आने की खुशी में होरी का परिवार खुशी से फूला फिरता है। गाय का स्वागत् करने की तैयारियाँ होने लगती हैं। इसी बीच होरी एक बाँस वालें को साझे के बाँस बेच देता है और उसमें भाइयों से छिपाकर कुछ रुपयों की बेईमानी करना चाहता है, परन्तु उसे सफलता नहीं मिलती है।

गोबर जब गाय लेकर आता है तो सारा गाँव गाय को देखने के लिए उमड़ पड़ता है। सभी उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। सारे गाँव वाले होरी की गाय देखने आते हैं परन्तु उसके सगे भाई हीरा और शोभा, जो अलग रहते हैं, गाय देखने नहीं आते। जब होरी उन्हें बुलाने उनके घर जाता है तो पाता है कि दोनों बैठे होरी की बुराई कर रहे हैं कि होरी ने बँटवारे के समय जो रुपए दाब लिए थे अब निकल रहे हैं। होरी दुखी होकर लौट आता है और धनिया से सारी बातें कह देता है। धनिया हीरा के घर जाकर खूब लड़ती है। सारा गांव इकट्ठा होकर इस कलह का तमाशा देखता है।

गोबर जब गाय लेने गया था तो झुनिया उसे उसके गाँव तक पहुँचाने आई थी। रास्ते में दोनों एक दूसरे का साथ देने की प्रतिज्ञा करते हैं। गोबर अपने प्रेम की दृढ़ता की सौगन्ध खाता है और झुनिया उससे प्रतीज्ञा करा लेती है कि वह उसके लिए सब कुछ त्याग कर देगा। झुनिया अनेक प्रकार की दुनियादारी की बातें कर गोबर पर अपने ज्ञान का प्रभाव जमाकर उसे पूर्ण रूप से अपने वश में कर लेती है और फिर दोनों गुप्त रूप से आपस में मिलने का वायदा कर एक दूसरे से अलग हो जाते हैं।

रायसाहब के गाँव सेमरी में छिड़काव आदि कर धनुष-यज्ञ की तैयारियाँ की जा रही हैं। वहाँ मण्डप, फूल गमले तथा बिजली आदि का प्रबन्ध किया जा रहा है। रायसाहब के मेहमान देहात एवं नगर दोनों स्थानों से आये हैं। नागरिक मेहमानों में प्रमुख हैं—'बिजली' नामक पत्र के सम्पादक पं० औंकार नाथ, वकील—दलाल श्यामबिहारी तंखा, दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर डा० बी० मेहता, मिल-मालिक मिस्टर खन्ना एवं उनकी पत्नी कामिनी खन्ना, जिनका नाम उपन्यास में आगे चलकर गोविन्दी हो जाता है, लेडी डाक्टर मिस मालती तथा बिगड़े हुए लखपती मिर्जा खुर्शेद। यह सब लोग रायसाहब का निमन्त्रण पाकर धनुष-यज्ञ का उत्सव देखने शहर से आये हुए हैं। रायसाहब सबका यथोचित स्वागत कर उनके ठहरने की व्यवस्था करते हैं और फिर जब सब लोग एक साथ बैठते हैं तो उनमें विभिन्न विषयों पर बातें होने लगती हैं। सभी लोग अपने-अपने व्यवसाय के अनुरूप बातें करते हैं। राय साहब जमीं-दार वर्ग की मजबूरियों का बखान करते हुए आदर्शवाद की डींगें हाँकते हैं,

परन्तु स्वयं किसानों पर अत्याचार करते हैं। डा० मेहता विरोध करते हुए कहते हैं कि सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर नहीं होना चाहिए। ओंकारनाथ भी रायसाहब की हाँ में हाँ मिलाते हैं और बुद्धि के महत्त्व पर एक भाषण-सा देने लगते हैं। तंखा साहब रायसाहब को पटाकर उन्हें प्रसन्न करना चाहते हैं। मिस मालती ओंकारनाथ के आदर्शवाद पर तीखा प्रहार कर उनसे अफसरों के प्रति नम्र रहने की सिफारिश करती है। परन्तु ओंकार नाथ खोखले आदर्शों की दुहाई देते हुए अपने को बड़ा सिद्धान्तवादी और दृढ़ चरित्र वाला सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। डा० मेहता इन सबकी कटु आलोचना करते हैं।

मिस्टर खन्ना मालती पर लट्टू हैं। वे हर प्रकार से उसे रिझाने का प्रयत्न करते हैं काफी लम्बे वाद-विवाद के उपरान्त भोजन का कार्यक्रम प्रारम्भ होता है। भोज्य सामग्री में माँस एवं मदिरा दोनों की प्रचुरता है। ओंकरनाथ सच्चे वैष्णव होने का अभिनय कर अपने कमरे में जाकर अलग फलाहार करते हैं। इससे कुढ़ कर यह मण्डली यह शर्त बदती है कि यदि मालती सम्पादक जी को शराब पिलाने में सफल हो सके तो एक हजार रुपया दिया जायेगा। मालती शर्त मंजूर कर लेती है। मिर्जा खुर्शेद अपनी चालाकी से तुरन्त एक हजार रुपया इकट्ठा कर लेते हैं। रुपया इकट्ठा हो जाने पर रायसाहब मालती का नाम लेकर ओंकारनाथ को वहाँ बुला लाते हैं। वह मालती का नाम सुनते ही अपने भाग्य को सराहते हुए तुरन्त वहाँ आ पहुँचते हैं। मालती उनका बनावटी श्रद्धा के साथ बड़ा गहरा स्वागत करती है। उन्हें कर्मठ राष्ट्रसेवी, जनता का नायक आदि न जाने किन-किन विशेषणों से सम्बोधित कर एक संस्था का प्रधान बनाने का प्रस्ताव रखती है, जिसके लिए लाखों रुपये का चन्दा कर दिया जायेगा। साथ ही उन्हें जाति-पाँति के संकीर्ण बन्धनों से ऊपर सिद्ध कर अन्त में अपने आकर्षण नारीत्व का अन्तिम हथियार चलाकर उन्हें शराब पिला देती है। सब लोग कहकहे लगाते हुए मालती की प्रशंसा कर उसे एक हजार रुपए दे देते हैं।

इधर ये लोग धनुष-यज्ञ देखने के लिए पंडाल में जाने के लिए प्रस्तुत हो ही रहे हैं कि एक लम्बा तड़ंगा पठान बन्दूक कन्धे पर रखे वहाँ आ खड़ा होता

है । वह गुस्से में भरकर कहता है कि उसके किसी आदमी को रायसाहब के आदमियों ने लूट लिया है इसलिए वह अपना रुपया लेकर जाएगा वर्ना सबको गोली मार देगा । उसे देखकर उपस्थित व्यक्तियों का डर के मारे बुरा हाल हो जाता है । पठान रुपए न मिलने पर मालती को उठा ले जाने की धमकी देता है । रायसाहब थोड़ा सा साहस दिखाते हैं परन्तु और सब कायर बने छिपने का स्थान ढूँढने लगते हैं । मालती उन लोगों की इस कायरता के लिए उन्हें खूब फटकारती है क्योंकि वे सभी उसके उपासक हैं । इसी समय होरी माली का रूप धरे रायसाहब को खोजता हुआ वहाँ आ पहुँचता है और उस दृश्य को देखकर पठान को एक करारी पटकनी देकर उसकी छाती पर सवार हो दाढ़ी खींच लेता है । दाढ़ी खिचने पर रहस्य खुलता है कि डा० मेहता ही पठान का रूप धरे हुए थे । मेहता इस प्रकार इन सभ्य समाज के प्राणियों की असलियत खोलकर रख देते हैं । सब लोग अत्यन्त लज्जित होते हैं ।

इसके उपरान्त दूसरे दिन यह मित्र मण्डली शिकार के लिए प्रस्थान करती है । कुल तीन जोड़ियाँ बनती हैं—रायसाहब और मिस्टर खन्ना, मिर्जा खुर्शेद और तंखा तथा मेहता और मालती । तीनों टोलियाँ अलग-अलग शिकार के लिए निकल पड़ती हैं । मालती मेहता के प्रति आकर्षित है इसलिए वह एकान्त में प्रेमालाप करने के लिए उनके साथ आई थी । परन्तु मेहता अपनी शिकार की धुन में चले जा रहे हैं । एक नाला आने पर वे मालती को कन्धों पर बैठा कर उसे पार करते हैं । मालती प्रेम का प्रदर्शन करती है परन्तु मेहता प्रेम के असली रूप की व्याख्या कर उसे इस क्षेत्र में असफल सिद्ध कर देते हैं । इसी समय मेहता एक चिड़िया का शिकार करते हैं जो नदी की धारा में गिरकर बहने लगती है एक जंगली लड़की उसे पकड़कर मेहता को दे देती है । मेहता उस लड़की के साहस पर मुग्ध हो उठते हैं ।

वह काली जंगली लड़की मालती और मेहता दोनों को अपनी झोंपड़ी पर ले जाती है और उनके खाने का प्रबन्ध करती है । उस कार्यरत लड़की की तरफ मेहता को मुग्ध भाव से देखते देखकर मालती जल उठती है और उस लड़की को मोटर लाने की आज्ञा देती है परन्तु वह स्वाभिमानिनी लड़की मालती

को फटकार देती है। इस कलह के उपरान्त मालती मेहता वहाँ से चल पड़ते हैं।

खन्ना और रायसाहब में स्वार्थ की बातें होती हैं। खन्ना रायसाहब से अपनी मिल के शेयर खरीदने का आग्रह करते हैं परन्तु रायसाहब अपनी आर्थिक कठिनाइयों का रोना रोकर टाल जाते हैं।

मिर्जा खुर्शेद और तंखा शिकार करते हुए आगे बढ़ते हैं और मिर्जा एक हिरन का शिकार कर उसे एक किसान पर लदवा कर उसके गाँव पहुँचते हैं और सारे गाँव की दावत करते हैं। दिन भर गाँव वालों के साथ मनोरंजन कर शाम को अपने साथियों से जा मिलते हैं। गाँव वाले उन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

इधर होरी के घर गाय आ जाने से खूब चहल-पहल है। सारा परिवार गाय की सेवा-टहल में लगा रहता है। सोना और रूपा तो जैसे उसकी सहेलियाँ बन गई हैं। बरसात का पहला दौंगड़ा गिरते ही गाँव में खेतों को जोतने-बोने की चहल-पहल प्रारम्भ हो जाती है। किसान उमंग में हैं। परन्तु रायसाहब का कारिन्दा नोखेराम एलान कर देता कि बिना लगान चुकाए कोई भी अपने खेत नहीं जोत सकेगा। होरी रुपयों के लिए महाजनों के यहाँ भागा फिरता है। उस गाँव में कई महाजन हैं—झिंगुरीसिंह, मंगरूशाह, दुलारी; दातादीन आदि। झिंगुरीसिंह की नीयत होरी की गाय पर है। वे काफी समझा-बुझा कर होरी को अपनी गाय उन्हीं के हाथों बेचने को तैयार कर लेते हैं। काफी रो धोकर धनिया भी इस प्रस्ताव से सहमत हो जाती है। किन्तु अन्त में यही तय होता है कि गाय न बेचकर रुपए सूद पर ले लिए जायें।

उसी दिन रात को जब होरी अपने बीमार भाई शोभा को देखकर घर लौटता है तो अपने दूसरे भाई हीरा को गाय के पास खड़ा पाता है। गाय उसी रात मर जाती है। उसे जहर दिया गया है। होरी का शक हीरा पर जाता है और वह धनिया से यह बात कह देता है। हीरा रात में ही घर से भाग जाता है। सुबह होते ही धनिया हीरा पर गऊ हत्या का अपराध लगा कर सारे गाँव में कोहराम मचा देती है। इस पर हीरा धनिया को मारता है और अपने भाई को बचाने के लिए अपने पुत्र गोबर की झूँठी कसम खा जाता

है। चौकीदार द्वारा थाने में रिपोर्ट किए जाने पर दारोगा तहकीकात के लिए आता है और हीरा की तलाशी लेना चाहता है। होरी अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए महाजनों से रुपए उधार लेकर दारोगा को देना चाहता है कि धनिया चंडी का सा रूप धरे आकार रुपए छीन लेती है और दारोगा एवं गाँव वालों को खूब खरी-खोटी सुनाती है। अन्त में दारोगा गाँव वालों से ही पचास रुपए वसूल कर चला जाता है। गाँव के महाजन दारोगा को कोसते रह जाते हैं क्योंकि ये रुपए उन्हें ही देने पड़े थे।

हीरा के घर से भाग जाने के बाद होरी उसकी स्त्री पुनिया की सहायता करने लगता है। धनिया पहले तो बिगड़ती है परन्तु अन्त में शान्त हो जाती है। होरी को फसली बुखार धर दबाता है और महीने भर में वह अच्छा हो पाता है। धनिया जो अब तक होरी द्वारा पीटे जाने पर उससे खिंची-खिंची सी रहती थी, अब उसके प्रति सदय हो उठती है।

जाड़ों की रात में एक दिन जब होरी अपने खेत की झोंपड़ी में युगों पुराने कम्बल से सर्दी से बचने का प्रयत्न करता हुआ सोने का उपक्रम कर रहा था कि धनिया आकर कहती है कि झुनिया पाँच महीने का गर्भ लिए उसके घर आ गई है। वह गोबर, भोला, झुनिया आदि सभी पर बिगड़ती है। होरी यह सुनकर गुस्से से भर उठता है और यह कहता हुआ घर की ओर चल पड़ता है कि झुनिया को झोंटे पकड़ कर बाहर निकाल देगा। उसे गुस्से में देखकर धनिया झुनिया के प्रति सदय हो उठती है और होरी से उससे कुछ भी न कहने के लिए प्रार्थना करती है। घर आकर दोनों झुनिया को सान्त्वना देते हैं। गोबर के विषय में पूछने पर झुनिया बताती है कि वह उसे गाँव तक पहुँचाने आया था, फिर पता नहीं कहाँ चला गया।

झुनिया दूसरे ही दिन सारे गाँव की चर्चा का विषय बन जाती है। सब लोग मिल कर होरी को जाति से निकाल देते हैं। उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया जाता है। एक दिन पण्डित दातादीन धनिया से झुनिया को घर में न रखने के लिए कहते हैं जब कि खुद उनके सुपुत्र मातादीन एक चमारिन सिलिया को रखेल बनाये हुए है। धनिया उन्हें फटकार देती है। इसी तरह

गाँव के अन्य बड़े लोग भी धनिया को समझाते हैं कि झुनिया को निकाल दे। परन्तु धनिया सबको मुँह तोड़ उत्तर दे देती है।

अन्त में जब पटेश्वरी लाला को यह भय सताने लगता है कि झुनिया के गाँव में रहने से किसी की आबरू सलामत नहीं रहेगी तो वे गाँव के महाजनों एवं नोखेराम आदि के साथ मिलकर यह षडयन्त्र रचते हैं कि पंचायत कर होरी पर दण्ड लगा दिया जाय। उसी दिन झुनिया के लड़का पैदा होता है। पंच इसलिए शीघ्रता कर पंचायत जोड़ते हैं और एक स्वर से यह फैसला कर देते हैं कि होरी पर सौ रुपए नकद और तीस मन अनाज का डाँड़ लगाया जाय। धनिया इस निर्णय का काफी विरोध करती है परन्तु होरी बिरादरी के निर्णय को सर्वोपरि मानकर उसे स्वीकार कर लेने में ही अपनी मर्यादा की रक्षा समझता है और परिणाम यह होता है कि होरी का सारा अनाज खलिहान से ही उठाकर पंचों के यहाँ पहुँच जाता है और अस्सी रुपए में उसे अपना घर भी गिरवीं रख देना पड़ता है।

उधर गोबर जब छिपकर यह देख लेता है कि झुनिया को उसके घर में शरण मिल गई तो लोक-लज्जा के भय से शहर जाने के लिए भाग खड़ा होता है और राह में एक पति-पत्नी के झगड़े के फैसले के उपरान्त दूसरे दिन सकुशल लखनऊ जा पहुँचता है। शहर में जाकर वह मजदूरी प्राप्त करने के लिए जा खड़ा होता है। मिर्जा खुर्शेद को उस दिन छः आने प्रति व्यक्ति की दर से कई सौ मजदूरों की जरूरत थी। गोबर भी उन्ही के साथ चला जाता है। मिर्जा इन सबको कबड्डी खेलने के लिए ले जाते हैं। एक लम्बे चौड़े अहाते में मिर्जा टिकट लगाकर कबड्डी का आयोजन करते हैं। प्रायः बुड्ढे ही इस खेल के खिलाड़ी चुने जाते हैं। मिर्जा और डाक्टर मेहता भी कबड्डी खेलते हैं। रायसाहब, मालती, तंखा आदि भी दर्शकों में बैठे हैं। मिस्टर खन्ना रायसाहब को मिल के शेयर खरीदने के लिए पटाने की कोशिश करते हैं। तंखा मालती को दानी साहिबा के विरोध में चुनाव में खड़े होने के लिए उकसाते हैं। परन्तु दोनों को ही निराश होना पड़ता है। उधर मेहता और मिर्जा की कुश्ती में बड़ा मजा आ रहा है। खेल बड़े सुखद वातावरण में समाप्त होता

है और उसके बाद मिर्जा गोबर को पन्द्रह रुपए महीने पर अपने यहाँ नौकर रख उसे रहने के लिए उसी अहाते में एक कोठरी दे देते हैं।

गाँव के पंचों के षडयन्त्र से होरी दाने-दाने को मुँहताज हो जाता है। बच्चे भूख से बिलखने लगते हैं। ऐसे गाढ़े समय में एक दिन हीरा की पत्नी पुनिया अनाज देकर धनिया की सहायता करती है। समय पर वर्षा न होने से ऊख सूख जाती है। अब यह चिन्ता सवार है कि दिन कैसे कटेंगे। इसी समय भोला आकर गाय के रुपयों का तकाजा करता है। वह भुनिया को शरण देने के कारण होरी से नाराज है और रुपए न मिलने पर होरी के बैलों को खोल ले जाता है। गाँव वाले विरोध करते हैं। परन्तु होरी के चुप रह जाने पर वे भी चुप रह जाते हैं।

मालती बाहर से तितली है और भीतर से मधुमक्खी। वह विनोद इस-लिए करती है कि जिससे उसके कर्त्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाय। उसके पिता पाश्चात्य सभ्यता के अनन्य उपासक और उच्चकोटि के दलाल थे। वे अपनी तीनों लड़कियों को यूरोप भेजना चाहते थे। मालती इङ्गलैंड हो आई थी परन्तु इसी समय लकवे ने पिता को अपाहिज बना दिया। आय का स्रोत बन्द हो गया। सारे परिवार का भार मालती के ऊपर ही आ पड़ा। अतः मालती अपनी सीमित आय में सबकी गाड़ी खींचती है। परिवार में आर्थिक अभाव का संकट सदैव रहता है। उसकी दोनों छोटी बहिनें सरोज और वरदा की शिक्षा चल रही है। एक दिन मालती और सरोज में डाक्टर मेहता के विषय में चर्चा होती है। सरोज मेहता की स्त्री-विषयक विचारों की आलोचना करती है। मालती मेहता का पक्ष लेती हुई सूचना देती है कि वीमेन्स लीग में मेहता का भाषण होने वाला है।

नियत समय पर मेहता का भाषण सुनने और उत्तर देने के लिए कटिबद्ध होकर नगर की स्त्रियाँ पूरी तरह सज-धज कर आती हैं। रायसाहब, ओंकार-नाथ, खन्ना, मिर्जा आदि भी उपस्थित हैं। मालती भी आज पूरी तरह से सज कर आई है। मेहता का लम्बा भाषण प्रारम्भ होता है। वह स्त्रियों में पुरुषों के समाधिकार की भावना को यूरोप की कलुषित देन सिद्ध कर भार-तीय नारियों के लिए क्षमा, दया और त्याग को आदर्श बताते हैं। नारी को

विलासिनी न होकर गृह-स्वामिनी बनना चाहिए। ओंकारनाथ, खन्ना आदि भाषण के बीच में मेहता की आलोचना करते जाते हैं। परन्तु रायसाहब और मिर्जा मेहता के विचारों से पूरी तरह सहमति प्रकट करते हैं। मालती मेहता के भाषण से बहुत प्रभावित होती है। मिसेज खन्ना भाषण को अत्यन्त सुन्दर बताती है और मालती और मेहता को लेकर विनोद करने लगती है।

भाषण के उपरान्त मालती के आग्रह करने पर मेहता उसे अपनी मोटर में उसके घर पहुँचाने चलते हैं और मालती उन्हें भोजन का निमन्त्रण भी देती है। मार्ग में मालती और मिसेज खन्ना के विषय में बातें होने लगती हैं। मेहता आक्षेप लगाते हैं कि क्योंकि मालती ने मिस्टर खन्ना को आकर्षित कर रखा है इसलिए मिसेज खन्ना दुखी हैं। मेहता के मुँह से इस आक्षेप को सुनकर मालती को बड़ी वेदना होती है। वह अपने बंगले पर पहुँच मेहता से बिना हाथ मिलाये ही चली जाती है। वह यह भी भूल जाती है कि उसने मेहता को भोजन का निमन्त्रण दे रखा था।

पंचों द्वारा होरी से दण्ड के रुपये ले लेने का समाचार सुनकर रायसाहब आग-बबूला हो उठते हैं और नोखेराम को बुलाकर आदेश देते हैं कि तुरन्त सारा रुपया उनके पास आ जाना चाहिए। गीदड़ की इतनी मजाल कि शेर का शिकार खा जाय। साथ ही वे होरी के प्रति सहानुभूति का बाह्य प्रदर्शन भी करते हैं। यदि पंच ही रुपए खा जायँगे तो उनका लाखों का खर्च कैसे चलेगा। पंचगण इस सूचना को पाकर परेशान हो जाते हैं और षड्यन्त्र कर सम्पादक औंकारनाथ के नाम एक गुमनाम पत्र भिजवा देते हैं कि राय साहब ने दण्ड के रुपए खा लिए। सम्पादक पत्र को पढ़कर खिल उठते हैं। अच्छा शिकार फंसा। रायसाहब इस समाचार को पाकर सम्पादक के पास पहुँचते हैं और काफी वाद-विवाद के उपरान्त यह तय होता है कि वे उनके सौ ग्राहकों का चन्दा अपने पास से भर देंगे। सम्पादक जी इस प्रस्ताव को मानकर उस खत को अपने पत्र में न छापने का वायदा कर देते हैं।

इधर गाँव वाले रायसाहब द्वारा पंचों को डाँटे जाने की बात सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं। धनियाँ गाँव में घूम-घूम कर पंचों के खिलाफ प्रचार करने लगती है। मगर होरी के सामने यह समस्या है कि बैलों के बिना खेतों में बीज

कैसे बोये । उसके घर में अनाज का दाना नहीं है । दूसरों की मजदूरी कर दिन कट रहे हैं । एक दिन दातादीन होरी के शुभचिन्तक बनकर उसके पास आते हैं और प्रस्ताव रखते हैं कि आधे-साझे पर वह उसके खेतों के लिए बीज और बैल दे सकते हैं। निरुपाय होरी सहमत हो जाता है । दूसरे ही दिन सारा परिवार बुबाई पर चिपट जाता है ।

साझा हो जाने पर मातादीन होरी के घर आकर झुनिया पर डोरे डालने का प्रयत्न करता रहता है परन्तु झुनिया उसे बातों से ही बहलाती रहती है । इसी समय शहर की शक्कर मिल के आदमी गन्ना खरीदने के लिये गाँव में आते हैं । किसान इस फिराक में हैं कि गन्ने के दाम उन्हीं को मिलें और साहूकार उन्हें न छीन सकें । परन्तु साहूकार उनसे भी अधिक चालक हैं । वे पहले से ही वहाँ जा पहुँचते हैं और सारा रुपया हड़प कर जाते हैं । होरी ऊख सवा सौ रुपयों में बिकती है परन्तु वह घर एक पैसा भी नहीं ला पाता । साहूकार सब छीन लेते हैं । अब होरी क्या करे ? यह आशा भी समाप्त हो गई ।

खन्ना और उसकी पत्नी गोविन्दी रहते तो एक ही घर में हैं परन्तु स्वभाव भिन्न होने के कारण उनमें आपस में पटती नहीं । गोविन्दी सादगी और अपनी गृहस्थी में अनुरक्त है । वह कविता भी करती है । विलास से उसे घृणा है । खन्ना विलास-प्रिय हैं, धन के पीछे पागल हैं । वह इसी कारण गोविन्दी की सात्त्विक एवं कोमल भावनाओं का सम्मान नहीं कर पाते । आन्तरिक सौन्दर्य से उनका कोई सम्बन्ध नहीं । सम्पत्ति की दीवार ऊँची होने के साथ-साथ इस दम्पत्ति को एक दूसरे से पृथक् करती जा रही है ।

एक दिन उनका लड़का बीमार पड़ता है गोविन्दी खन्ना से किसी डाक्टर को बुला देने का आग्रह करती है । कई डाक्टरों के नाम आने के उपरान्त खन्ना मालती को बुलाने का सुझाव देते हैं । गोविन्दी मालती से पहले ही से जली बैठी है । इस सुझाव पर भड़क उठती है । खूब वाद-विवाद होता है, गालियों तक की नौबत आ जाती है और परिणाम यह होता है कि खन्ना पत्नी को मार बैठते हैं । गोविन्दी शाम को घर छोड़ने का इरादा कर बच्चे को साथ ले पार्क में जा बैठती है । वहीं संयोगवश मेहता से उसकी मुलाकात हो जाती हैं । मेहता गोविन्दी के सद्‌गुणों के भक्त हैं। आज की बातों से उनकी श्रद्धा और भी

गहरी हो जाती है और अन्त में मेहता नारी के क्षमा, दया मातृत्व आदि गुणों की दुहाई देकर उसे पुनः उसके घर पहुँचा आते हैं ।

गोबर अब मिर्जा का नौकार नहीं है । उसने खोंचा लगाना शुरू कर दिया है और पूरा शहरी बन गया है । अच्छा खासा कमा लेता है और बचे पैसों से साहूकारी करता है उसका ज्ञान भी बढ़ गया है । प्राचीन विचार और रूढ़ियों के भय का भूत उसके सिर से उतर चुका है और एक दिन वह गाँव चलने की तैयारी करता है । सबके लिये उचित समान खरीदता है और इक्के पर बैठकर स्टेशन की ओर रवाना हो जाता है ।

होरी अब एक तरह से दातादीन का मजदूर बन गया है । काम लेने में दातादीन कसाई के समान क्रूर है । होरी और उसका सम्पूर्ण परिवार खेत में काम कर रहा है । दातादीन बार-बार उससे फुर्ती करने के लिए कहता है । स्वाभिमानी होरी पागल की तरह तेजी से हाथ चलाने लगता है और कुछ देर में बेहोश होकर गिर पड़ता है । धनिया रोने लगती है । होरी को घर पहुँचा दिया जाता है कि उसी समय गोबर आ पहुँचता है । सारे घर में खुशी की लहर दौड़ जाती है । बच्चे सामान खोलकर देखने लगते हैं परन्तु झुनिया मान किए भीतर बैठी रहती है । गोबर को घर की दीन दशा देखकर अत्यन्त दुख होता है । तत्पश्चात् लाया हुआ सामान परिवार के प्रत्येक प्राणी को बाँट दिया जाता है और गोबर झुनिया को भी मना लेता है ।

शाम को गोबर बन-ठन कर गाँव में निकलता है नौजवान उसके साथ लग लेते हैं । दातादीन, झिंगुरीसिंह आदि के मिलने पर वह खूब व्यंग्य कसता है । शहर जो हो आया है । उसके बाद वह भोला से अपने बैल वापस लाने के लिए उसके घर जाता है और भोला तथा उसके लड़के जंगी को नौकरी दिलाने का लालच दिखाकर मुफ्त में अपने बैल ले आता है ।

होली पर गाँव के लड़के तथा अन्य किसान, गोबर के नेतृत्व में, उसी के दरवाजे पर होली मनाते हैं । गाँव के साहूकारों की नकल करते हुए स्वांग खेला जाता है और उन लोगों का मजाक उड़ाता है । होली के दूसरे दिन दातादीन जब होरी को खेत पर काम करने के लिए बुलाने आते हैं तो गोबर और होरी अपने खेत के काम को प्रथम महत्त्व देकर इन्कार कर देते हैं । इस पर

दातादीन अपना कर्ज माँगने लगते हैं। गोबर उस पर बैंक की ब्याज दर से सूद देने की बात कहता है। परन्तु होरी धर्म की दुहाई देकर तय की हुई ब्याज दर को ही स्वीकार कर लेता है जिसके अनुसार ३०) के २००) हो जाते हैं क्योंकि होरी को परलोक का भय है।

उधर नोखेराम आदि गोबर की हरकतों से चिढ़कर होरी को परेशान करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु गोबर की दृढ़ता से उन्हें सफलता नहीं मिल पाती। होरी सीधा-सादा किसान है इसलिये सबकी बातों में आ जाता है। गोबर इस बात से क्षुब्ध होकर झुनिया और बच्चे को लेकर तुरन्त लखनऊ लौट जाने की तैयारी करता है। धनिया जब झुनिया के जाने पर आपत्ति करती है तो गोबर और झुनिया दोनों उसका अपमान कर बैठते हैं। परिणामस्वरूप गोबर बाल-बच्चों को लेकर तुरन्त चल देता है। होरी और धनिया बहुत दुखी होते हैं। रायसाहब को कई महत्त्वपूर्ण समस्यायें सुलझानी हैं। कौंसिल का चुनाव लड़ना है, अपनी पुत्री का विवाह करना है तथा अपनी सुसराल की जायदाद प्राप्त करने के लिए मुकदमा दायर करना है और इस सबके लिए लाखों रुपयों का खर्च है जो उन्हें जुटाना है। उन्हें चुनाव राजा सूर्यप्रतापसिंह के विरुद्ध लड़ना है, जिन्हें तंखा ने उभाड़कर चुनाव के लिए तैयार किया है। तंखा रायसाहब को धोखा देता है कि वे चुनाव लड़ने की घोषणा करें और समय पर एक लाख राजा साहब से लेकर बैठ जायँ। तंखा अपना वायदा पूरा नहीं करता और रायसाहब जब उसके घर जाते हैं तो उनका अपमान करता है। अब रायसाहब चुनाव के लिए कर्ज लेने खन्ना की शरण लेते हैं। खन्ना रायसाहब के सहपाठी और अन्तरंग मित्र हैं परन्तु अपना कमीशन तय कर कर्ज दिलाने का वायदा करते हैं। दोनों में मालती और मेहता को लेकर बातें होती हैं। इसी समय मेहता व्यायामशाला के लिए चन्दा लेने आ धमकते हैं। रायसाहब राजा साहब के नाम के आगे पाँच हजार लिखा देखकर स्वयं भी पाँच हजार लिख देते हैं। खन्ना साफ टाल जाते हैं। व्यायमशाला का उद्-घाटन गोविन्दी के हाथों होगा इससे खन्ना पशोपेश में पड़ जाते हैं। इसी समय मालती आ पहुँचती है और खन्ना को डाँटकर एक हजार का चैक लिखवा लेती है।

झुनिया और बच्चे के चले जाने से धनिया का घर सूना-सा हो जाता है। सिलिया चमारिन, जो मातादीन की रखैल है, के घर वाले मातादीन को खलिहान में घेरकर उसके मुँह में हड्डी का टुकड़ा डाल उसे चमार बनाने की घोषणा कर देते हैं। सिलया सबसे नाता तोड़कर मातादीन की ही बनकर रहने का निर्णय करती है। परन्तु मातादीन उससे बात भी नहीं करना चाहता। निराश्रिता सिलिया को धनिया अपने घर में शरण देती है।

होरी की पुत्री सोना सत्रह साल की हो गई है। गाँव के बदमाश लड़के उसके घर के चक्कर लगाने लगते हैं, इसलिये होरी को उसके विवाह की चिन्ता है। उसकी सगाई सोनारी गांव के एक धनी किसान के लड़के से हो चुकी है। होरी विवाह के लिए कर्ज लेना चाहता है परन्तु सोना सिलिया को अपने भावी पति मथुरा के पास भेजकर दहेज न माँगने पर प्रस्तुत कर लेती है। मथुरा का बाप नाई के द्वारा अपनी बात होरी के पास लिखकर भेज देता है परन्तु धनिया खूब धूमधाम से विवाह करने पर अड़ जाती है।

भोला नोहरी नामक एक विधवा से विवाह कर उसे घर ले आता है। परन्तु उसके बेटे कामता और उसकी बहू से उनकी नहीं पटती। कामता एक दिन भोला को मार-पीट कर घर से निकाल देता है। भोला नोखेराम के यहाँ आकर नौकरी की तरह तथा नोहरी उसकी रखैल की तरह रहने लगती है। नोहरी नोखेराम का संरक्षण पाकर सारे गाँव पर हावी हो जाती है और भोला सब-कुछ जानता हुआ भी विवश बना रहता है।

होरी गाँव के एक साहूकार मंगरू शाह का कर्जदार है। पटवारी पटेश्वरी मंगरू को भड़काकर होरी पर दावा करवा देता है और होरी की खड़ी ऊख नीलाम हो जाती है। होरी इसी ऊख के बल पर सोना के विवाह के लिए दुलारी से रुपये उधार माँग रहा था। अब यह सहारा भी चला गया। एक दिन नोहरी होरी के घर जाती है और उसे रुपये देने का अश्वासन देती है।

गोबर इस बार लखनऊ पहुँचकर संकट में पड़ जाता है। उसकी दूकान टूट जाती है। वह मिल में काम करने लगता है। झुनिया से उसकी खटपट रहती है। उसका लड़का बीमार होकर मर जाता है। दूसरी सन्तान पैदा होने वाली है परन्तु गोबर शराब पीकर आता है और झुनिया को मारता-पीटता

है। झुनिया के प्रसव के समय चुहिया नामक एक पड़ोसिन उसे सम्हाल लेती है गोबर खन्ना की शक्कर मिल में मजदूरी करता है। वहाँ वेतन कम करने के प्रश्न को लेकर हड़ताल हो जाती है। पुराने और नये मजदूरों में झगड़ा होने से गोबर बुरी तरह घायल होकर घर लौटता है। झुनियाँ सारी कटुता भूल कर उसकी प्राणपण से सेवा करती है और इस तरह पति-पत्नी के सम्बन्ध पुनः मधुर हो जाते हैं।

खन्ना मजदूरों की हड़ताल को अन्यायपूर्ण समझते थे यद्यपि मिर्जा, सम्पादक, गोविन्दी आदि मजदूरों की मांग को न्याय, संगत बता चुके थे। खन्ना ने जब मेहता से पूछा तो उन्होंने भी इसे न्याय-संगत घोषित किया। खन्ना मेहता के विचारों से प्रभावित हैं। इसी समय मालती आती है और मेहता तथा खन्ना को स्वयं अपने हाथ से पकाये हुये भोजन का निमन्त्रण देती है। दोनों सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। अचानक खन्ना की मिल से धुंआँ उठता दिखाई देता है और सारी मिल अग्नि की लपटों से घिर जाती है। तीनों मोटर में बैठकर मिल की तरफ भागते हैं। मिल जलकर खाक हो जाती और साथ ही खन्ना भी दिवालिया हो जाता है। वह पागल हो उठता है और घर आकर गोविन्दी के चरणों पर गिर पड़ता है। गोविन्दी धन की निन्दा करती हुई उसे सांत्वना देती है।

नोहरी होरी को रुपये देकर सारे गाँव में अपनी उदारता का ढिंढोरा पीटती फिरती है। होरी भोला को अपने घर लौट जाने के लिए समझाता है परन्तु भोला की नोहरी के सामने एक भी नहीं चलती। होरी खेत में हल चलाता हुआ सिलिया और नोहरी के चरित्रों की तुलना कर रहा था कि मातादीन आकर उसे सिलिया को देने के लिए दो रुपये देता है। रुपये पाकर सिलिया आनन्द से मग्न हो जाती है। वह अपने इस आनन्द को किसी से कहकर व्यक्त करने के लिए व्याकुल है और इसे सोना से कहने के लिए नदी पार कर सोनारी गाँव जा पहुँचती है। रात का समय है। गाँव में सन्नाटा है। सिलिया के किवाड़ खटखटाने पर मथुरा आता है और सिलिया से प्रणय-निवेदन करता है। सोना जाग जाती है और सिलिया को इतनी रात

गए आने के लिए खूब फटकारती है। सिलिया दुख से शून्य बनी अपने घर लौट आती है।

सम्पत्ति की दीवाल ढल जाने से खन्ना और गोविन्दी के सम्बन्ध अब मधुर हो गए हैं। उन्हें मालती की तरफ से निराशा हो गई है। वे मिल को चलाने का प्रयत्न करते हैं और सबसे सलाह लेते फिर रहे हैं। मेहता के प्रभाव से मालती के चरित्र की काया-पलट हो गई है। वह किसी प्रकार मेहता को प्राप्त करना चाहती है। मेहता जीवन के मध्यम मार्ग को श्रेष्ठ समझते हैं। मध्यम मार्ग सेवा-भाव है। तब मेहता और मालती इसी कार्य के लिए गांवों की तरफ निकल जाते हैं। एक दिन दोनों होरी के गाँव जा पहुँचते हैं। मालती गाँव की स्त्रियों को सफाई का महत्त्व बताती है और बीमारों का इलाज करती है। शाम को दोनों नदी किनारे चले जाते हैं और वहाँ अपने हाथ से बनाई नाव पर दोनों में प्रेम के विषय पर गहरा वार्तालाप होता है। मेहता प्रेम को खूंखार शेर की संज्ञा देते हैं, जो अपने शिकार का एकमात्र उपभोक्ता होता है। मालती इस संकीर्णता का विरोध कर प्रेम को परीक्षक न मानकर उपासक मानती है। महता के इस संकीर्ण रूप को देखकर वह उदास हो जाती है। उसकी दृष्टि में प्रेम भौतिक मार्गों से परे की वस्तु है।

रायसाहब की लड़की की शादी हो जाती है, उन्हें ससुराल की जायदाद मिल जाती है और वे चुनाव भी जीत जाते हैं। राजा साहब उनके पुत्र रुद्रपाल के साथ अपनी लड़की की सगाई करने का प्रस्ताव रखते हैं और रायसाहब स्वीकार कर लेते हैं परन्तु रुद्रपाल मालती की छोटी बहिन सरोज से विवाह करना चाहता है और उसने चुपचाप विवाह कर भी लिया है। उस बात पर पिता पुत्र में खटक जाती है। रायसाहब होम मेम्बर हैं परन्तु पुत्र के इस व्यापार के सम्मुख उनकी एक नहीं चलती। उनका सारा गर्व चूर-चूर हो जाता है। यहीं तक नहीं बल्कि रुद्रपाल सरोज के साथ इङ्गलैंड चला जाता है और तंखा के उकसाने पर रायसाहब की फिजूलखर्ची के लिए उन पर केस दायर कर देता है। उधर मिर्जा खुर्शेद वारांगनाओं का सुधार करने के प्रयत्न संलग्न हैं। मेहता उनके इस विचार से सहमत नहीं। मालती के विषय में

मेहता मिर्जा से कहते हैं कि अब उन्हें मालती को प्राप्त करने के लिए तपस्या करनी पड़ रही है।

मालती अब जन-सेवा-कार्य में व्यस्त रहती है। मेहता से कम मिल पाती है। मेहता दूसरों की सहायता में अपना पूरा वेतन खर्च कर डालते हैं। उनके पास नए कपड़े भी नहीं हैं और मकान मालिक छः महीने के किराये की उन पर डिग्री करा लेता है। मालती उसका भुगतान कर मेहता से कोठी खाली करवाकर उन्हें अपने बँगले में ही रहने को लिवा ले जाती है। दोनों दिन में कई बार मिलते हैं परन्तु मालती अपने सेवा-कार्य में ही व्यस्त रहती है। अमीरों का खिलौना बनी रहने वाली मालती अब सेवा की देवी बन गई है। गोबर अब मालती के ही यहाँ माली का काम करता है और सपरिवार वहीं रहता है। झुनियाँ के बच्चे के चेचक निकलने पर मालती माँ की तरह उसकी सेवा करती है। मेहता को भी बच्चे से मोह हो जाता है। मालती के इस रूप को देखकर मेहता की आँखें खुल जाती हैं और एक दिन वे मालती के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखते हैं परन्तु मालती विवाह-बन्धन में न बँध कर उन्हें मित्र-रूप में अपना सबसे बड़ा हितैषी और सहयोगी स्वीकार कर लेती है।

सिलिया का बच्चा अब खूब खेलने लगा है। मातादीन उसे छिपकर देख आता है। अचानक एक दिन बच्चे का निमोनिया से प्राणान्त हो जाता है और यह घाव सिलिया और मातादीन को पुनः एक कर देता है। मातादीन खुल्लमखुल्ला सिलिया के साथ आकर रहने लगता है।

होरी की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती चली जाती है। अब उसे कर्ज भी नहीं मिलता। खेत पर बेदखली लग गई है अन्त में होरी अपनी छोटी बेटी रूपा का विवाह एक चालीस वर्ष के सम्पन्न किसान से कर बदले में दो सौ रुपया ले लेता है। परन्तु वह ऐसा चारों ओर से हताश होकर ही करता है। गोबर इस विवाह में घर आता है। इस बार गोबर अत्यन्त शील और सौजन्यता का परिचय देता है और विवाह के उपरांत झुनियाँ को गाँव में छोड़कर शहर लौट जाता है।

अब होरी गोबर के बच्चे के लिए गाय लाने के निमित्त एक ठेकेदार के यहाँ कंकड़ खोदने का काम करता है। धनिया भी उसके साथ लगी रहती है। एक दिन हीरा भी लौट आता है और होरी से अपने कर्मों की क्षमा मांगता है। जेठ की तपती दुपहरी में कंकड़ खोदते समय एक दिन होरी को लू लग जाती है और वह बेहोश हो जाता है। उसे डोली में उठाकर घर लाया जाता है परन्तु अब उसकी शक्ति समाप्त हो चुकी है। उसके सम्मुख जीवन के विभिन्न स्मृति-चित्र आते हैं और चले जाते हैं। होश आने पर वह धनिया से क्षमा माँगकर अपने महाप्रयाण की तैयारी करता है। मरने के लिए गोदान करना आवश्यक है। धनिया सुतली बेचकर प्राप्त बीस आने दातादीन के हाथ पर रखकर कहती है—महाराज यही इनका गोदान है। और होरी बीस आने का गोदान कर मर जाता है।

प्रश्न २—उपन्यास की परिभाषा बताते हुए संक्षेप में उपन्यास के तत्वों का विवेचन भी कीजिये।

उत्तर—उपन्यास की परिभाषा—विभिन्न विद्वानों ने उपन्यास की विशेषता एवं गुण को दृष्टि में रखकर उपन्यास की परिभाषा की है और सभी इसे मानवचरित्र का दर्पण मानते हैं। डा० श्यामसुन्दरदास, "मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा" को उपन्यास मानते हैं। प्रेमचन्द का कथन है कि-उपन्यास "मानव चरित्र का चित्र" है। उनके अनुसार "मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों की खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।" बाबू गुलाबराय का मत है कि—"उपन्यास कार्य-कारण शृङ्खला में बंधा हुआ वह गद्य-कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।" डा० भगवतशरण उपाध्याय उपन्यास को जीवन का दर्पण मानते हैं। कुछ विद्वान् इसे "आधुनिक युग का महाकाव्य" की संज्ञा से विभूषित करते हैं। इन सब परिभाषाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि आज का उपन्यास सत्य का नाना रूपी चित्रण कर जीवन को उदात्त बनाने का सबसे सफल साधन है।

उपन्यास के तत्त्व—उपन्यासकार अपने उपरोक्त दायित्व को किस प्रकार पूर्ण सफलता के साथ निभा सके, इसके लिए विद्वानों ने उपन्यास के छः प्रमुख तत्त्व निर्धारित किए हैं–**१–कथावस्तु, २-चरित्र-चित्रण ३–कथोपकथन, ४—शैली, ५—देशकाल और वातावरण एवं ६—उद्देश्य**। तत्त्वों का यह वर्गीकरण यूरोपीय विद्वानों द्वारा किया गया है और हिन्दी का उपन्यास प्रमुख रूप से पाश्चात्य साहित्य की ही देन है, इसलिए हमें इन्हीं तत्त्वों को मूल मानकर उपन्यास का निर्माण अथवा विवेचन करना पड़ता है। उन छः तत्त्वों में से तीन प्रमुख माने जाते हैं—कथानक या घटना-क्रम, चरित्र या पात्र और बीज या उद्देश्य। बीज या उद्देश्य को हमारी समझ में एक पृथक तत्त्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि प्रत्येक रचना के मूल में कोई न कोई उद्देश्य सदैव निहित रहता है। अन्य कोई उद्देश्य न भी रहने पर मनोरंजन का उद्देश्य तो रहता ही है। आजकल उपन्यास के कथानक और पात्रों का निश्चित स्वरूप स्थिर करने में भी कठिनाइयाँ उपस्थित हो रही हैं क्योंकि नवीन उपन्यासकार कथानक और पात्रों का नया स्वरूप गढ़कर नवीन प्रयोग कर रहे हैं। यह सत्य है कि युग के साथ प्राचीन परिभाषायें अथवा मान्यताएँ भी बदलती रहती हैं। जिस प्रकार आधुनिक 'महाकाव्य' को हम प्राचीन शास्त्री कसौटी पर पूर्णरूपेण खरा उतरते हुए न पाकर भी उसे महाकाव्य मान लेते हैं उसी प्रकार उपन्यास को आज से चालीस या पचास वर्ष पहले बनी मान्यताओं अथवा तत्त्वों के आधार पर नहीं देखा जा सकता। फिर भी हमें अभी तक उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर उपन्यासों की आलोचना करनी पड़ती है।

हम पहले प्रथम तीन प्रमुख तत्त्वों पर विचार करेंगे।

१—कथावस्तु या घटना-क्रम—उपन्यास की मूल कथा को कथावस्तु कहा जाता है। इसका उदय, विकास और अन्त निश्चित सा होता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह मानी जाती है कि उपन्यास की सम्पूर्ण घटनायें आपस में ऐसी सम्बद्ध हों कि यदि उनमें से एक को भी हटा दिया जाय तो सारी कथा विश्रृङ्खल हो जायगी—उसका क्रम टूट जायगा। इन घटनाओं में औचित्य का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक। प्रत्येक घटना कथा को विकास देने वाली होनी चाहिए। व्यर्थ की घटनाओं का समावेश कथावस्तु

को विकृत, शिथिल एवं प्रभावहीन बना देता है। घटनाओं की इस एकता और संगठन पर डा० भगवतशरण उपाध्याय की टिप्पणी दृष्टव्य है। आप कहते हैं कि—'कहानी के उस विस्तार में कला की दृष्टि से रस का संचरण और परिपाक होता है। घटनाचक्र की एकता या अनेक मुखी जीवनधारा का स्वस्थ विलयन ही उसका पाक है। घटनाचक्र की एकता वस्तु-गठन के रूप में, उपन्यास के रस को कलत्व प्रदान करती है।"

परन्तु आज का नवीन उपन्यासकार यह समझने लगा है कि वास्तव में घटनाओं में, जब वे हमारे सांसारिक जीवन में घटती हैं, कोई क्रम नहीं होता। घटनाओं के क्रम को न तो हम पकड़ सकते हैं और न उनका नियन्त्रण कर पाते हैं। जीवन बिखरी हुई असम्बद्ध घटनाओं का संग्रह-मात्र है। इसलिए यूरोप के अनेक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में विशृङ्खलित, असम्बद्ध, बिखरे जीवन के चित्र भर दिए हैं। हिन्दी के भी अनेक उपन्यासों में यही प्रवृत्ति लक्षित होती है जैसे उपेन्द्रनाथ अश्क के "गर्मराख" नामक उपन्यास में। इन लोगों के सामने यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि घटनाओं का क्रम क्या हो ? उनका जीवन से क्या सम्बन्ध हो ? इसके लिए इन लोगों ने यह हल निकाला है कि घटनायें चाहे सत्य हों या काल्पनिक उन्हें दैनिक जीवन के आधार पर गढ़ना आवश्यक है। और साथ ही उसमें आकस्मिक घटनायें भी होनी चाहिए क्योंकि वास्तविक जीवन में भी आकस्मिक घटनायें घटा करती हैं।

अँग्रेजी आलोचक एडविन म्योर उपन्यास के तत्वों में कथानक को सबसे अधिक महत्वपूर्ण और स्पष्ट मानते हैं। उपन्यास का सारा ढाँचा इसी तत्त्व पर आधारित रहता है। इसका चुनाव इतिहास, पुराण, जीवनी, सम-सामयिक घटना आदि कहीं से भी किया जा सकता है। आज जीवन से सम्बन्धित कथानक को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है क्योंकि उसमें हमारे दैनिक जीवन की स्वाभाविकता है। कथानक को रोचक होना चाहिए क्योंकि उपन्यास मनोरंजन का प्रधान साधन है। रोचकता के लिए उसमें उत्सुकता, कौतूहल और नवीनता का होना आवश्यक है। उसमें अलौकिक अथवा असम्भाव्य घटनाओं

को स्थान नहीं मिलना चाहिए क्योंकि आज का बुद्धिवादी युग इन्हें स्वीकार नहीं करता। इसलिए उसमें जीवन की वास्तविकता का चित्रण आवश्यक है।

वर्ण्य विषय की दृष्टि से कथानक को साहसिक, प्रेम-प्रधान, तिलिस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक, पौराणिक और सामान्य जीवन से सम्बन्धित आदि अनेक भागों में बाँटा जा सकता है। कथानक को उपस्थित करने के प्राय: तीन ढंग अधिक प्रचलित रहे हैं—

१—लेखक तटस्थ दर्शक की भाँति उसका वर्णन करता है।

२—कथावस्तु नायक या किसी अन्य पात्र के द्वारा कहलाई जाती है।

३—पात्रों की शृङ्खला के रूप में उसका वर्णन होता है। आजकल प्रथम दो ढंग ही अधिक अपनाये जा रहे हैं। विशेषकर प्रथम ढंग।

यहाँ कथावस्तु के विषय में प्रेमचन्द के विचार जान लेना भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इस पुस्तक में उन्हीं के उपन्यास "गोदान" का विवेचन करना है। प्रेमचन्द का मत है कि—"उपन्यासकार को इसका अधिकार है कि वह अपनी कथा को घटना वैचित्र्य से रोचक बनाये, लेकिन शर्त यह है कि प्रत्येक घटना असली ढांचे से निकट सम्बन्ध रखती हो। इतना ही नहीं, बल्कि उसमें इस तरह घुल-मिल गई हो कि कथा का आवश्यक अङ्ग बन जाय, अन्यथा उपन्यास की दशा उस घर की सी हो जायगी जिसके हर एक हिस्से अलग हों।...उपन्यास में वही घटनायें, वही विचार लाना चाहिए जिनसे कथा का माधुर्य बढ़ जाय, जो प्लाट के विकास में सहायक हों अथवा चरित्रों के गुप्त मनोभावों का दर्शन करते हों।"

२—चरित्र-चित्रण और पात्र—उपन्यास में पात्रों का चरित्र-चित्रण सजीवता, सत्यता और स्वाभाविकता के साथ अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से होना चाहिये। पात्र की प्रकृति के अनुरूप ही उसके कार्य और बातें होना आवश्यक है। इससे कथावस्तु के विकास में पर्याप्त सहायता मिलती है। इस युग में पात्रों-सम्बन्धी प्राचीन धारणाओं में अन्तर आ गया है। पहले अन्य पात्रों की उपेक्षा कर केवल नायक और नायिका पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता था। आज सबको समान महत्व दिया जाता है। पात्र चाहे दैवी हों अथवा साधारण उनकी चरित्र की अच्छाई एवं बुराई दोनों ही बातों का चित्रण किया जाता है।

आज के मनोविज्ञान की यही माँग है। आज पात्रों का व्यक्तित्व सर्वथा स्वतन्त्र होता है। वे उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली-मात्र नहीं होते। स्वतन्त्र संकल्प शक्ति सम्पन्न और निरन्तर शक्तिशील पात्रों से ही उपन्यास की उत्कृष्टता और लेखक की सफलता आँकी जाती है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण दो प्रकार से होता है—एक में लेखक स्वयं वर्णन द्वारा पात्रों का चरित्र-चित्रण करता है और दूसरे प्रकार में लेखक पात्रों के विषय में स्वयं कुछ न कह कर अन्य पात्रों के द्वारा ही पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालता है। यह प्रणाली सांकेतिक अथवा नाटकीय कहलाती है। आजकल इसी दूसरी प्रणाली का अधिक प्रयोग हो रहा है। घटना प्रधान उपन्यासों में पात्रों का चरित्र घटनाओं द्वारा स्पष्ट होता है। चरित्र दो प्रकार के होते हैं—टायप (वर्ग-विशेष के प्रतिनिधि) और विशिष्ट। 'गोदान' का होरी पहले प्रकार का और "शेखर : एक जीवनी" का शेखर दूसरे प्रकार का पात्र है। पात्रों के दो भेद और हैं—आदर्शवादी और यथार्थवादी। आज कल वही उपन्यास श्रेष्ठ समझे जाते हैं जिनके पात्रों में आदर्श और यथार्थ का मिश्रण होता है।

प्रेमचन्द का कथन है "उपन्यास के चरित्रों का विकास जितना ही स्पष्ट गहरा और विकासपूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा, और यह लेखक की रचना-शक्ति पर निर्भर है।······यह विकास इतने गुप्त, अस्पष्ट रूप से होता है कि पढ़ने वाले को किसी तबदीली का ज्ञान भी नहीं होता। अगर चरित्रों में किसी का विकास रुक जाय तो उसे उपन्यास से निकाल देना चाहिए, क्योंकि उपन्यास चरित्रों के विकास का ही विषय है। अगर उसमें विकास-दोष है, तो वह उपन्यास कमजोर हो जायगा। कोई चरित्र अन्त में भी वैसा ही रहे जैसा वह पहले था—उसके बल, बुद्धि और भावों का विकास न हो, तो वह असफल चरित्र है।···विकास परिस्थिति के अनुसार स्वाभाविक हो, अर्थात्—पाठक और लेखक दोनों इस विषय में सहमत हों।···चरित्र में कुछ विशेषता भी रहनी चाहिये। जिस तरह संसार में कोई दो व्यक्ति समान नहीं होते, उसी भांति उपन्यास में भी न होना चाहिए। कुछ

लोग तो बात-चीत या शक्ल-सूरत से विशेषता उत्पन्न कर देते हैं, लेकिन असली अन्तर तो वह है, जो चरित्रों में हो।"

३—**उद्देश्य या बीज**—उपन्यास के उद्देश्य या बीज से तात्पर्य जीवन की व्याख्या अथवा आलोचना से है। उपन्यास में जीवन का चित्रण होता है। इसलिए उपन्यासकार, जीवन के साधारण और असाधारण व्यापारों का मानव जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका अङ्कन करता है। सभी उपन्यासों में कुछ विशेष विचार और सिद्धान्त स्वतः ही आ जाते हैं। कुछ उपन्यास का उद्देश्य केवल मनोरंजन मानते हैं किन्तु आधुनिक उपन्यासों में मनोरंजन के साथ साथ किसी विशिष्ट उद्देश्य का प्रतिपादन भी होता है। श्रेष्ठ उपन्यास लेखक अनुभवी और विचारशील होते हैं। वे लोगों के भावों, विचारों और व्यवहारों आदि का भली-भाँति निरीक्षण कर उनके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते हैं और उस ज्ञान की सहायता से नैतिक महत्व का ऐसा चित्र अंकित करते हैं, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पात्रों के परस्पर विरोधी विचारों का संघर्ष उस उद्देश्य की उत्कृष्टता सिद्ध करता।

उपन्यासकार अपने सिद्धान्त अथवा उद्देश्य का प्रतिपादन प्रत्यक्ष रूप से न कर वार्तालाप या घटनाओं द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से करता है और इस प्रकार नीरसता और अरोचकता से अपने उपन्यास को बचा ले जाता है। उद्देश्य सदैव महान् और प्रभावशाली होना चाहिये।

प्रेमचन्द साहित्य का परम उद्देश्य मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों—ईर्ष्या और प्रेम, क्रोध और लोभ, भक्ति और विराग, दुख और लज्जा का सफल चित्रण करना मानते हैं। उनकी दृष्टि में बिना उद्देश्य के कोई रचना नहीं हो सकती। परन्तु जब साहित्य किसी सामाजिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक मत के प्रचार का साधन बना दिया जाता है तो वह अपने ऊँचे पद से गिर जाता है। यह सिद्धान्त अत्यन्त ऊँचा और सुन्दर है। परन्तु आधुनिक जटिल परिस्थितियों में नवीन विचारधारा से प्रभावित होने से नहीं बचा सकता। इसलिए प्रेमचन्द का कथन है कि—"मगर यह क्योंकर मान लिया जाय कि जो उपन्यास किसी विचार के प्रचार के लिए लिखा जाता है, उसका महत्व क्षणिक होता है?...हमारा ख्याल है कि क्यों न कुशल साहित्यकार कोई विचार-प्रधान

रचना भी इतनी सुन्दरता से करे जिसमें मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभाता रहे। 'कला के लिए कला' का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो।" अतः देश की विपन्नावस्था में रचित साहित्य में किसी विचार विशेष का कलात्मक स्वरूप चित्रित करना साहित्य के मूल उद्देश्य में बाधक नहीं समझा जाना चाहिए।

उद्देश्य तो महान् होना ही चाहिए, साथ ही उसकी अभिव्यक्ति की शैली और परिस्थितियाँ भी प्रभावोत्पादक होनी चाहिएँ। इस अभिव्यक्ति के दो ढंग हैं—आत्म कथनात्मक और विश्लेषणात्मक। पहले ढंग में उद्देश्य की अभिव्यक्ति, सरल और सुन्दर ढंग से होती है। कहीं-कहीं लेखक कथावस्तु, शैली और तथ्य कथन के ढंग से भी विशिष्ट नैतिक उद्देश्य का प्रतिपादन कर देते हैं। यह नाटकीय ढंग कहलाता है। विश्लेषणात्मक प्रणाली में लेखक आलोचक की भांति पात्रों का गुण-दोष विवेचन करता हुआ अपने उद्देश्य को स्पष्ट करता है। इनमें से नाटकीय ढंग अधिक कलापूर्ण माना जाता है। एक आलोचक के शब्दों में—"आज के उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोवैज्ञानक विश्लेषण और उसके द्वारा मानव-मन के गहनतम स्तरों की व्याख्या करना है।"

उपरोक्त तीन प्रमुख तत्त्वों के अतिरिक्त कथोपकथन, देशकाल और शैली नामक तत्त्वों का भी सफल उपन्यास के निर्माण में काफी बड़ा भाग रहता है।

४—**कथोपकथन**—नाटक में तो इस तत्व का एकाधिकार होता है परन्तु उपन्यास में आवश्यकतानुसार ही इसका प्रयोग किया जाता है। यह कथा-वस्तु के विकास तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक होता है। इससे कथा-वस्तु में नाटकीयता और सजीवता आ जाती है। इसके द्वारा प्रासंगिक घटनाओं का भी संकेत दे दिया जाता है। पात्रों की आन्तरिक मनोवृत्तियों के स्पष्टीकरण में भी यह सहायक होता है। इसका विधान पात्रों के चरित्र, स्वभाव, देश, स्थिति, शिक्षा, अशिक्षा आदि के अनुसार होना चाहिए।

प्रेमचन्द उसी उपन्यास को अधिक सुन्दर मानते हैं जिसमें वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय अर्थात् वार्तालाप कम, परन्तु सोद्देश्य और सारगर्भित होना चाहिए। वह केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य को—जो किसी चरित्र के

मुँह से निकले—उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिए। साथ ही बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल, सरल और सूक्ष्म होना आवश्यक है।

५—**देशकाल**—पात्रों के चित्रण को पूर्णता एवं स्वाभाविकता देने के लिए देशकाल या वातावरण का ध्यान रखना भी आवश्यक है। घटना का स्थान, समय, तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान होना उपन्यासकार के लिए आवश्यक है। चरित्रों का चित्रण उनके अनुसार ही होना चाहिए। ऐतिहासिक उपन्यासों का तो यह प्राण ही माना जाता है। परन्तु देश, काल और वातावरण का वर्णन वहीं तक उचित है जहाँ तक कि वह कथा-प्रवाह में सहायक हो।

६—**शैली**—उपन्यासकार को अपने भाव एवं विचारों को व्यक्त करने के लिए सरस और सरल भाषा एवं शैली का प्रयोग करना चाहिए। भाषा का प्रयोग तत्कालीन समाज के दृष्टिकोण से हो तो अधिक श्रेयष्कर होता है। परन्तु उसमें सरलता का होना अत्यन्त आवश्यक है। समष्टि रूप से रचना शैली सजीव और प्रभावोत्पादक होनी चाहिए परन्तु प्रेमचन्द के शब्दों में—"इसका यह अर्थ नहीं कि हम शब्दों का गोरखधन्धा रच कर पाठक को इस भ्रम में डाल दें कि इसमें जरूर कोई न कोई गूढ़ आशय है। जिस तरह किसी आदमी का ठाठ-बाट देखकर हम उसकी वास्तविक स्थिति के विषय में गलत राय कायम कर लिया करते हैं उसी तरह उपन्यासों के शाब्दिक आडम्बर देखकर भी हम ख्याल करने लगते हैं कि कोई महत्त्व की बात छिपी हुई है। सम्भव है, ऐसे लेखक को थोड़ी देर के लिए यश मिल जाय, किन्तु जनता उन्हीं उपन्यासों को आदर का स्थान देती है जिनकी विशेषता उनकी गूढ़ता नहीं उनकी सरलता होती है।"

हिन्दी में उपन्यास लेखन की चार शैलियाँ प्रचलित हैं, १—कथाशैली, जैसे प्रेमचन्द का 'गोदान' २—आत्मकथा शैली, जैसे इलाचन्द्र जोशी का 'घृणामयी' ३—पत्र शैली, जैसे उग्र का 'चन्द हसीनों के खतूत', ४—डायरी शैली जैसे 'शोणित तर्पण'। पत्र और डायरी शैली में हिन्दी में बहुत कम उपन्यास लिखे गए हैं। अधिकतर उपन्यासों की रचना कथाशैली में हुई है।

प्रेमचन्द सफल उपन्यास उसे मानते हैं—"जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करे, उसके सद्भाव जाग उठें। जिसके भाव गहरे हैं, प्रखर हैं—जो जीवन में लद्दू बनकर नहीं, बल्कि सवार बनकर चलता है, जो उद्योग करता है और विफल होता है, उठने की कोशिश करता है और गिरता है, जो वास्तविक जीवन की गहराइयों में डूबा है, जिसने जिन्दगी के ऊँच-नीच देखे हैं, सम्पत्ति और विपत्ति का सामना किया है, जिसकी जिन्दगी मखमली गद्दों पर ही नहीं गुजरती, वही लेखक ऐसे उपन्यास रच सकता है जिनमें प्रकाश, जीवन और आनन्द प्रदान का सामर्थ्य होगी।" और प्रेमचन्द ऐसे ही उपन्यास लेखक थे।

प्रश्न ३—उपन्यास-कला के प्रधान तत्त्वों की दृष्टि से 'गोदान' की आलोचना कीजिये।

अथवा

"कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण, सम्वाद, वातावरण' भाषा, शैली आदि की दृष्टि से 'गोदान' प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है"—इस कथन पर युक्ति-संगत अपने विचार प्रकट कीजिये।

उत्तर—प्रायः सभी आलोचकों का यह मत है कि 'गोदान' प्रेमचन्द के उपन्यासों का शीर्षमणी है। इसमें प्रेमचन्द की उपन्यास-कला अपने पूरे वैभव के साथ प्रकट हुई है। यहाँ हम उपन्यास-कला के विभिन्न तत्त्वों के आधार पर गोदान की परीक्षा करेंगे। सबसे पहले कथानक को लीजिये।

कथानक—इसमें दो कथायें साथ-साथ चलती हैं। ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित और नागरिक जीवन से सम्बन्धित। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ग्रामीण कथा को मुख्य अथवा आधिकारिक तथा नागरिक कथा को गौण अथवा प्रासंगिक मानते हैं। इन दोनों कथाओं की सम्बन्ध-स्थापना रायसाहब और गोबर द्वारा होती है। रायसाहब के यहाँ रामलीला देखने के लिये नगर के संभ्रान्त व्यक्ति आते हैं और गोबर मजदूर बनकर शहर जाता है और वहाँ इन लोगों के सम्पर्क में आता है। इस प्रकार वे दोनों कथायें एक दूसरे से मिल जाती हैं। 'गोदान' प्रधानतः ग्रामीण जीवन का उपन्यास माना जाता है। फिर इसमें नागरिक कथा को जोड़ने का क्या कारण था ? यह प्रश्न आलोचकों

ने उठाया है और इसके भिन्न-भिन्न उत्तर दिये हैं। इनमें से अधिकांश की यह धारणा रही है कि नागरिक कथा उपन्यास के कथावस्तु के संगठन को शिथिल बना देती है। मूल कथा से उसका तारतम्य नहीं बैठ पाता। परन्तु यह आलोचना करने का शुद्ध शास्त्रीय दृष्टिकोण है। प्रेमचन्द 'गोदान' में भारतीय समाज का समग्र चित्र उतारना चाहते थे, जिसका प्रमुख भाग गाँवों में बिखरा पड़ा है। उन्होंने इसमें किसानों के होने वाले उस शोषण का चित्रण किया है जिसे प्रत्यक्ष रूप से तो जमीदार करते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से नगर वाले। रायसाहब खन्ना की मिल के शेयर खरीदते हैं, नागरिक मित्रों को दावत देते हैं, अधिकारियों को डालियाँ पहुँचाते हैं। आखिर यह सब धन कहाँ से आता है और कहाँ चला जाता है। स्पष्ट है कि किसानों से आता है और विलास आदि के उपकरणों एवं अधिक धन कमाने की लालसा से खिंचकर नगर चला जाता है। इस तरह प्रेमचन्द अगर नागरिक कथा को न लाते तो शोषण के इस चक्र का यह चित्र अधूरा ही रह जाता। ग्रामीण जीवन नागरिक जीवन की तुलना में अधिक सुन्दर, पवित्र और सादा होता है। नगरों में विलास है इसलिये पाप है। यही सारी बातें दिखाने के लिये 'गोदान' में नागरिक कथा को जोड़ना कला एवं उद्देश्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था और वही प्रेमचन्द ने किया।

चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण की दृष्टि से तो प्रेमचन्द को 'गोदान' में असाधारण सफलता प्राप्त हुई है, ऐसा वाजपेयी जी का कहना है। इसके पात्र कठपुतली न होकर रक्त-माँस के बने हुए सजीव व्यक्ति हैं। पात्रों के चरित्र में सर्वत्र एक गतिशीलता मिलती है, वे स्थिर नहीं हैं। यद्यपि होरी को इस उपन्यास का नायक माना जाता है मगर प्रेमचन्द ने किसी एक ही पात्र को प्रमुखता नहीं दी है बल्कि कुछ विशिष्ट पात्रों को परिपूर्ण आदर्श के विभिन्न अवयवों के रूप में उपस्थित किया है और वे पात्र अपने-अपने क्षेत्र के परिचित आदर्श हैं जैसे होरी, धनिया, मालती, मेहता, सिलिया आदि इन्हीं की समष्टि से पूर्ण आदर्श का स्पष्टीकरण होता है जो यथार्थ पर आधारित है। इसके सभी पात्र 'मानव' हैं लोकोत्तर नहीं।

होरी भारतीय किसान का मूर्तिमान रूप है। भारतीय किसान की समस्त

विषमता का वह जीवित प्रतिनिधि है। महाजनों का एक पूरा दल दातादीन, झिंगुरीसिंह, रायसाहब, पुलिस, पंच आदि सभी उसे चूसते हैं। वह सदैव परिस्थितियों के सम्मुख नत-मस्तक होता चला जाता है, कभी विद्रोह नहीं करता। उसकी सरलता, ईमानदारी और उदारता ही उसके चरित्र की सबसे बड़ी पूँजी है। लेकिन जीवन भर संघर्ष करने वाले "ऐसे प्राणी की मृत्यु पर एक गौ भी दान करने को न हो, इससे अधिक जीवन की विडम्बना और क्या हो सकती है।"

होरी की पत्नी धनिया ऊपर से बादाम की तरह कठोर पर हृदय की कोमल है। वह एक सच्ची भारतीय नारी का रूप है जो जीवन भर अपने पति के कंधे से कंधा भिड़ाकर चलती रहती है। परन्तु होरी की तरह अन्याय और अत्याचार को बिना विरोध किए नहीं सह सकती। वह जीभ की हल्की है इसलिये साफ कहने वाली है। होरी पर प्रायः तीखे व्यंग कसती रहती है। गाय की हत्या के समय होरी के भाई पर इल्जाम लगाती है और बदले में होरी से मार खाती है। वह हृदय की कोमल है इसलिये झुनियाँ के पाँव पकड़ने पर उसे गले लगाकर आश्रय देती है। अन्य स्त्री-पात्रों में झुनियाँ, सिलिया आदि आकर्षक हैं। सिलिया समाज की दुर्व्यवस्था की शिकार है। जाति से चमार होने पर भी आदर्श सती है। नागरिक स्त्री पात्रों में मिस मालती, मिसेज खन्ना दोनों के चरित्र पूरे उतरे हैं। मिसेज खन्ना प्राचीन आदर्शों वाली नारी है। मालती, प्रेमचन्द के शब्दों में 'नवयुग की साक्षात प्रतिमा है।" वह खन्ना आदि को खूब उल्लू बनाती है। बाद में मेहता के प्रति आकर्षित होने पर उसके जीवन में परिवर्तन आ जाता है। वह ग्रामीण सुधार में मेहता का साथ देती है। एक तितली देवी बन जाती है।

अन्य पुरुष पात्रों में प्रोफेसर मेहता का चरित्र विशेष आकर्षक है। उनके चरित्र द्वारा प्रेमचन्द्र ने यह दिखाया है कि किसी प्रकार के लोगों को जनता की सेवा के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहिये। मेहता निर्भीक और स्पष्टवादी हैं। पठान का अभिनय कर उन्होंने नागरिक उच्चवर्गीय व्यक्तियों की कायरता की पोल खोलकर रख दी। मौका पड़ने पर वे रायसाहब और खन्ना को उनकी मक्कारी और धनलिप्सा के लिये खूब फटकारते हैं। स्त्री-आन्दोलन विषयक उनके विचार

रूढ़िवादी हैं । मालती उनके संसर्ग में आकर तितली से त्यागमयी नारी बन जाती है ।

गोबर एक अल्हड़ और उग्र विचारों वाला युवक है । वह अत्याचारी को सह न सकने के कारण नगर को भाग जाता है किन्तु वहाँ से भी निराश होकर अन्त में गाँव लौट आता है । वह नगर से अनेक बुराइयाँ भी सीख आता है । परन्तु नगर में रहने से उसमें एक नवीन राजनीतिक चेतना आ जाती है जिसके कारण वह बड़े लोगों की असलियत को समझ भाग्य पर विश्वास करना छोड़ देता है ।

मातादीन का चरित्र कला की दृष्टि से बड़ा सुन्दर है । "वह निर्मम कठोर स्वार्थी, लोलुप युवक धीरे-धीरे बदल कर सिलिया का तप सफल कर देता है । अन्त में जब पुर्नमिलन होने पर सिलिया उससे पूछती है कि तुम ब्राह्मण होकर एक चमारिन के साथ कैसे रहोगे तो वह जवाब देता है—"जो अपना धर्म पाले वही ब्राह्मण, जो धर्म से मुँह मोड़े वही चमार है ।" रायसाहब और खन्ना ढोंगी देशभक्तों के ज्वलन्त प्रतीक हैं । उनके चरित्रों में धनी व्यक्तियों की सारी मक्कारी आ गई है । वे दोनों नावों में एक साथ पैर रखकर, चलने वाले राष्ट्रवादी और जी हुजूरी बजाने वाले प्राणी हैं तथा गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले रईसों के एजेन्ट हैं । औंकारनाथ खद्दरधारी ढोंगी सम्पादक हैं । मिर्जा खुर्शेदअली फक्कड़ और मनमौजी हैं । ग्रामीण पात्रों में बिसरुसाह दुलारी, मगरूसाह,झिंगुरीसाह, दातादीन नोखेराम आदि सब एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं । इस प्रकार गोदान के सभी पात्र नागरिक और ग्रामीण युग जीवन का साकार चित्र उपस्थित कर देते हैं ।

कथोपकन—कथोपकथन की दृष्टि से भी गोदान एक उत्कृष्ट कलाकृति प्रमाणित होता है । उसके कथोपकथन सर्वत्र सजीव, पात्रानुकूल, चरित्र को स्पष्ट करने वाले और कथा को गति देने वाले हैं । सोना और झुनियाँ के ननद भावी के मजाक तथा झिंगुरीसिंह की नकल के कथोपकथन काफी मनोरंजक हैं । झुनियाँ और गोबर के रोमान्स से सम्बन्धित वार्तालाप काफी सरल और मार्मिक है ।

वातावरण—पात्रों के अनुकूल वातावरण की सृष्टि करने में तो प्रेमचन्द

अद्वितीय है। सोना का पति मथुरा और सिलिया चमारिन जब अंधेरे में मिलते हैं तो उस समय का चित्रण देखिये। "बरोठे में अंधेरा था उसने सिलिया का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा……सिल्ली का मुँह उसके मुँह के पास आ गया था और दोनों की सांस और आवाज और देह में कम्प हो रहा था।" ग्रामीण जीवन के चित्र तो इस उपन्यास में बड़े ही सुन्दर और यथार्थ हुए हैं। "लू चल रही है बगूये उठ रहे हैं, धरती तप रही है मगर किसान अपने खलियान में कार्यरत हैं। कहीं मड़ाई हो रहीं हैं, कहीं अनाज ओसा जा रहा है। कमकर अपने-अपने हक के लिये चारों तरफ जमा हैं।" एक किसान के घर का वर्णन देखिये—कौने में तुलसी का चबूतरा है दूसरी ओर जुआर के कई बोझ दीवार के सहारे रखे हैं। समीप ही ओखल के पास कुटा हुआ धान पड़ा है। खपरैल पर लौकी की बेल से लौंकियाँ लटक रही हैं। उसारी में एक गाय बँधी है आदि। ग्रामीण जीवन के ऐसे चित्र उतारना प्रेमचन्द की ही कलम का काम था क्योंकि उन्होंने ये चित्र कल्पना से न गढ़कर आँखों से देखकर खींचे थे।

भाषा-शैली—भाषा के क्षेत्र में तो प्रेमचन्द सम्राट हैं। उनकी भाषा सरलता, सौन्दर्य, व्यंग्य और प्रवाह के कारण आदर्श मानी जाती है। वह तीखी, पैनी तथा मर्मस्थल पर प्रभाव डालने वाली होती है। वह जन-साधारण के जीवन से अपने शब्द-चित्र बनाती है। प्रो० प्रकाशचन्द्र के शब्दों में प्रेमचन्द की भाषा—"गोदान में परम रसवती अलंकार-बोझिल कवितामयी हो गई है। इसके सरल प्रवाह में कथानक और कथोपकथन सजल गति से बहे हैं। "शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में प्रेमचन्द की भाषा में पूर्व संस्कार के कारण एक सामाजिक मर्यादा का ध्यान था, उससे उनके कृत्तित्व में एक गम्भीरता आई, आधुनिक युग के प्रति उसमें जो प्रेरणा थी उससे उनकी कला में एक शक्ति आई और उर्दू की व्यंजकता के कारण रोचकता। इस प्रकार प्रेमचन्द अपने कलाकार रूप में प्राचीनता और नवीनता के संगम थे।"

'गोदान' की भाषा में 'एक नया रस', लचक और यौवन सा आ गया है। वह अधिक परिष्कृत, मधुर और साहित्यक हो गई हैं। एक उदाहरण देखिए—

"वह अभिसार की मीठी स्मृतियाँ याद आईं। जब वह अपने उन्मत्त उसासों में, अपनी नशीलीं चितवनों में मानों अपने प्राण निकल कर उसके

चरणों पर रख देता था। झुनियाँ किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने छोटे से घौंसले में एकान्त जीवन काट रही थी। वहाँ नर का मत्त आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें, मगर बहेलिये का जाल और छल भी तो वहाँ न था।"

भाषा के गाम्भीर्य का एक और उदाहरण दृष्टव्य है—

"वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय में सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है, क्षण क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी काँपने लगती है। लालसा का सुनहला आवरण हट जाता है। और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममयी संध्या आती है, शीतल और शान्त, जब हम थके हुए पथिकों की भाँति दिन भर यात्रा का वृत्तान्त कहते हैं और सुनते हैं, तटस्थ भाव से, मानों हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहाँ नीचे का जन-रव हम तक नहीं पहुँचता।"

"गोदान की इन्हीं विशेषताओं को देखकर प्रकाशचन्द गुप्त ने मुक्तकंठ से प्रेमचन्द की महानता को स्वीकार करते हुए लिखा है कि—"गोदान में प्रेमचंद ने उत्कृष्ट कलाकार के सभी गुण दर्शाये हैं। उनकी शैली प्रौढ़ है, पात्र सच्चे और सजीव हैं। ग्राम्य जीवन को खूब समझते हैं। उनकी रचना में गम्भीरता और सरसता है। 'कालाकल्प' के बाद जो उनका पतन हुआ था उसका प्रतिकार उन्होंने कर दिया। अपने पुराने गौरवमय स्थान पर वे लौट आये। संक्षेप में 'गोदान' प्रेमचंद की अचल कीर्ति का स्मारक है।

प्रश्न४—"गोदान एक सोद्देश्य उपन्यास है"—इस कथन की विवेचना करते हुए बताइये कि प्रेमचन्द इस उपन्यास के द्वारा क्या कहना चाहते हैं।

अथवा

'गोदान' की ऐसी आलोचना कीजिए कि इस उपन्यास की सभी प्रमुख विशेषताओं का उद्घाटन हो जाये।

उत्तर—प्रेमचन्द साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन-मात्र ही नहीं समझते थे अपितु उससे अधिक समाज के कल्याण का एक प्रमुख साधन भी मानते थे। अपने उपन्यासों में उन्होंने समाज का जहाँ यथार्थ चित्रण किया है वहाँ उस चित्रण के पीछे उनका ये उद्देश्य सदैव रहा है कि पाठक उस यथार्थता से परिचित हो सकें एवं सुधार प्रवृत्त हो सकें। इस प्रकार उनके समस्त उपन्यास सोद्देश्य हैं। 'गोदान' में भी उनकी सोद्देश्यता को देखा जा सकता है। यद्यपि प्रेमचन्द का अन्तिम उपन्यास 'मङ्गल सूत्र' था लेकिन चूँकि वह अधूरा ही रह गया अतएव 'गोदान' ही उनका अन्तिम पूर्ण उपन्यास माना जाता है। कहा जाता है कि "इसमें लेखक की सम्पूर्ण चेतना की अभिव्यक्ति हुई और उसने अपने प्रौढ़तम अनुभवों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया।" और यह सत्य भी है क्योंकि इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने अपने सम्पूर्ण पूर्वा-ग्रहों का मोह त्यागकर तटस्थ कलाकार के रूप में युग का चित्रण किया है। इसमें न वे किसी के अनुयायी हैं और न किसी सिद्धान्त विशेष के प्रचारक। इससे पूर्व प्रेमचन्द समाज की दशा को सुधारने के विभिन्न परीक्षण करते आये थे परन्तु सन्तोष उन्हें एक से भी नहीं मिला था। सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्म-भूमि आदि उनके विभिन्न उपन्यास इन्हीं परीक्षणों के परिणाम थे। उनका सुधारवादी दृष्टिकोण इन उपन्यासों में उन्हें यथार्थ की भूमि से बलात् परे खींचकर काल्पनिक समाधानों की भूल-भूलैयों में भटकता रहा था। जैसे-जैसे उनका जीवन अनुभव गहरा एवं विस्तृत होता गया वैसे-वैसे वे अपने उन काल्पनिक समाधानों पर आधारित पूर्व प्रयत्नों की निस्सारता का अनुभव करते गये। उनका विकासवादी दृष्टिकोण भी उन्हें पूर्ण सन्तोष न दे सका। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में उन्होंने अनुभव किया कि कोई भी सुधारवाद प्रयत्न आर्थिक विषमता से उत्पन्न जीवन की कटुता को दूर नहीं कर सकेगा। इसलिये आदर्शवाद का मोह छोड़कर समाज का कच्चा चिट्ठा समाज के सम्मुख रखना पड़ेगा। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने सम्पूर्ण भारत का—नागरिक एवं ग्रामीण भारत का कच्चा चिट्ठा उपस्थित कर पाठकों को यह सोचने पर विवश कर दिया कि-"यह समाज गया। कोई सुधार और प्रचार इस व्यवस्था को टूटने

से नहीं बचा सकता । अब तो जीवन के नव-निर्माण की बात सोचनी पड़ेगी ।" गोदान हमें इसी बात को सोचने के लिये विवश करता है ।

प्रेमचन्द-साहित्य में प्रारम्भ से अन्त तक सर्वत्र आर्थिक असमानता को ही सब प्रकार की सामाजिक विषमताओं का मूल कारण बताया गया है । उनके पहले उपन्यासों में ऐसे सामाज का चित्रण है जिसमें धर्म और कर्म के नाम पर जमीदार, साहूकार, मिल मालिक, पंडित, ढोंगी नेता, कमीने पत्रकार, सरकारी अहलकार आदि सभी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के पोषण के लिये, गरीब जनता का खुलकर शोषण करते हैं और जनता उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाती । अन्त में कोई आदर्शवादी काल्पनिक समाधान प्रस्तुत कर जनता के आँसू पोंछ दिये जाते हैं । 'गोदान' में भी शोषण का यही क्रम चालू रहता है । लेकिन 'गोदान' की शोषण क्रिया में पहले से पर्याप्त अन्तर आ गया है । यह पहले से नितान्त भिन्न है । 'गोदान' के शोषक मीठी वाणी बोलने वाले हैं जैसे राय साहब अमरपालसिंह । निरीह किसान इनके पंजों में फँसा हुआ छटपटाता रहता है । उसकी दशा दिन पर दिन गिरती चली जाती है । समाज की जोंकें उस गरीब किसान को अपनी भूमि का मालिक किसान भी नहीं बनने देतीं । उसकी जमीनें छीन ली जाती हैं । वह खेतीहर मजदूर बन जाता है । फिर भी उसके दुखों का अन्त नहीं आता । अन्त में वह दुखों के पहाड़ तले पिस-पिस कर दम तोड़ देता है । होरी मर जाता है, धनिया बेहोश हो जाती है । होरी और धनिया के जीवन भर के संघर्ष, अटूट परिश्रम और ईमानदारी का यह दुखद परिणाम निकलता है । और यह अन्त दिखाकर प्रेमचन्द मूक स्वर में पाठक से पूछते से प्रतीत होते हैं कि समाज की यह दशा अब और कितने दिनों तक चलती रहेगी । इस विषम-व्यवस्था का अन्त कर उस समाज की स्थापना करनी होगी जिसमें किसान-मजदूर सुखी रहेंगे । उनके शोषकों का अस्तित्व मिट जायेगा । यही प्रेमचन्द का समाजवाद है । इस व्यवस्था को लाने के लिये उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से दिखाया है कि क्रांति द्वारा ही यह व्यवस्था लाई जा सकती है ।

'गोदान' भारतीय किसान के जीवन का कच्चा चिट्ठा और सच्चा महा-

काव्य है। यह बताता है कि आखिर किसान इतना दुखी क्यों है। वह जी तोड़ महनत कर समाज का पेट पालता है और खुद भूखा रहता है। आखिर उसका पैदा किया हुआ अन्न कहाँ चला जाता है। उसके यहाँ प्रत्यक्ष रूप से डाँका नहीं पड़ता, चोरी नहीं होती, फिर वह निर्धन का निर्धन क्यों बना रहता है। इसी रहस्य का उद्घाटन करने के लिये प्रेमचन्द ने किसान के सबसे बड़े अभिशाप, उसके जीवन-शत्रु 'ऋण' और उसके नाम पर होने वाला विभिन्न प्रकारों के शोषण का चित्रण किया है। डा० रामविलास शर्मा इसी कारण 'गोदान' की मूल समस्या ऋण की समस्या मानते हैं जो आये दिन किसान के जीवन को सबसे अधिक व्याकुल बनाये रखती है। होरी की जीवन कथा में यही दुख और व्याकुलता सप्राण और मूर्तिमान हो उठी है। उनके जीवन की सारी विषमताएँ इसी के चारों तरफ मँडराती रहती हैं। इससे उत्पन्न दुखों का विशाल अम्बार जिससे किसान को मरने पर भी मुक्ति नहीं मिलती पाठक के हृदय को कचोटता रहता है। किसान मरने पर उन दुखों को विरासत के रूप में अपनी सन्तान के लिये भी छोड़ जाता है। प्रेमचन्द ने इस मूल-समस्या को पकड़ लिया था और इस कारण वे गोदान में किसान-जीवन का इतना कारुणिक चित्र सफलता के साथ अङ्कित कर सके थे जिसे देखकर पाठकों का हृदय द्रवित हो आठ-आठ आँसू रो उठता है। किसान जीवन जितनी सच्चाई, गहराई, मार्मिकता एवं हृदय-स्पर्शिता के साथ 'गोदान' में चित्रित हुआ है इतना सम्भवत: विश्व साहित्य में और कहीं भी नहीं हो पाया है।

'गोदान' में प्रेमचन्द अपनी पुरानी मान्यताओं का मोह पूर्ण रूप से छोड़कर यथार्थ की ठोस भूमि पर आ खड़े हुए हैं। उन्होंने अपने पिछले परीक्षणों से यह देखा था कि सुधारवादी दृष्टिकोण समस्या का असली एवं यथार्थ हल नहीं दे पाता। मवाद से भरे हुए फोड़े को ऊपरी दबाइयों से ठीक नहीं किया जा सकता। उसके लिये जर्राह के तेज नश्तर की जरूरत होती है। तभी उस फोड़े की प्राणान्तक पीड़ा का उपचार हो सकेगा। 'गोदान' में समाज रूपी रोगों के यही नश्तर लगाने का प्रेमचन्द ने प्रयत्न किया है। जमींदार अमरपाल मिल-मालिक खन्ना, स्वार्थी पत्रकार, ओंकारनाथ, चुनाव विशेषज्ञ तंखा, पंड्डित दातादीन, पटवारी, पंच, दरोगा आदि ही समाज का वह मवाद है जो समाज

के आधार पर और अन्नदाता किसान के रक्त को दूषित कर उसे पीड़ा से व्याकुल बनाये हुए है। इसलिये क्रान्ति का नश्तर लगाकर वर्तमान समाज व्यवस्था में व्याप्त इस मवाद को बाहर निकालना पड़ेगा। नव-निर्माण तभी सम्भव हो सकेगा।

किसान-मजदूर के होने वाले शोषण का पूरा जिक्र दिखाने के लिये ही प्रेमचन्द ने 'गोदान' में ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की कहानी को एक साथ सूत्र में गूँथा है। इस कौशल द्वारा उन्होंने यह दिखाया है कि किसानों और मजदूरों का शोषण गाँव और नगर के सभ्य बदमाश मिलकर करते हैं। कोई मीठी बोली बोल कर शिकार करता है तथा कोई आँखें दिखाकर। परन्तु प्रेमचन्द ने विशेष बल ग्रामीण जीवन पर ही दिया है। नागरिक सभ्यता के ढोंगी और स्वाभाविक मक्कारों से उन्हें स्वाभाविक चिढ़ है। इसी कारण वे किसान का मिल-मजदूर बनना पसन्द नहीं करते क्योंकि इससे तो वह और भी ज्यादा बुरा बन जाता है। गोबर शहर जाकर अनेक बुराइयाँ सीख आता है। प्रेमचन्द भारत का सच्चा स्वरूप यहाँ के गाँवों में ही देखते थे।

'गोदान' में प्रधान समस्या किसान की है परन्तु इसमें 'कर्मभूमि' के किसान आन्दोलन जैसा कोई भी आन्दोलन नहीं होता। इसमें जो आन्दोलन है उसका प्रकार भिन्न और अप्रत्यक्ष है। इसके किसान की ऋण-समस्या 'कर्मभूमि' आदि की समस्त किसान-समस्याओं से अधिक भयानक है। पहले के किसान आन्दोलन अँग्रेज के शासक रूप से मुक्ति चाहते थे और प्रेमचन्द अँग्रेज के 'पूँजीपति' के रूप से मुक्ति चाहते हैं क्योंकि यही किसानों की दीन दशा का मूल कारण है। 'गोदान' में अँग्रेज प्रत्यक्ष रूप से कहीं नहीं आता मगर उसके एजेन्ट, जमींदार, मिल-मालिक आदि अपने छुठभैयों और सरकारी अहलकारों की सहायता से दिन-रात शोषण करने में व्यस्त रहते हैं। साथ ही उन्होंने बगुला-भगत देशभक्तों की भी कलई गोदान में खोलकर रख दी है जो देशभक्ति की चादर ओढ़कर जनता के अपने आदमी बनकर उसका शोषण कर रहे थे। जैसे जमींदार अमरपालसिंह और पूँजीपति खन्ना! होरी प्राचीन विचारधारा का सीधा-सच्चा भाग्यवादी किसान है। वह इन धूर्तों के छल छंदों को नहीं समझ पाता मगर गोबर, जो नई पीढ़ी का प्रतीक है इनकी असलियत को खूब समझता है।

खन्ना जैसे पूँजीपति "खद्दर पहनते थे और फ्रांस की शराब पीते थे।" रायसाहब राष्ट्रीय होने पर हुक्कामों से मेल-जोल बनाये रखते थे।

जिस प्रकार प्रेमाश्रम के बलराज और मनोहर दो पीढ़ियों के प्रतीक हैं उसी प्रकार गोदान के होरी और गोबर भी दो पीढ़ियों के भिन्न विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनोहर की तरह होरी भाग्यवादी किसान है जो युवक किसान-मजदूरों में फैलती जा रही थी। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में—'चाहे गाँव में खेती करे, चाहे शहर में मजदूरी, वह दूसरों का अन्याय बर्दाश्त करने के लिये तैयार नहीं है। होरी के मरने के बाद गोबर मानों पिता के हत्यारों के लिए एक चुनौती के रूप में जीवित रहता है, गोबर जिसने राजनीतिक जल्सों के पीछे खड़े होकर भाषण सुने हैं और उनसे अङ्ग-अङ्ग में बिधा है। इसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा।" प्रेमचन्द का जीवन-सन्देश भी यही है।

गोबर भाग्यवादी की खिल्ली उड़ाता हुआ कहता है कि यहाँ सबल निर्बल को दबाकर बड़ा आदमी बन जाता है। बड़े आदमियों का भाव-भजन और दान-धर्म किसानों और मजदूरों के बल पर ही चलता है। गोबर के उपरोक्त विचार यह प्रकट करते हैं कि किसानों की नई पीढ़ी रायसाहब जैसे मिठबोले लोगों की धूर्तता को पहचानने लगी थी। प्रोफेसर मेहरा भी इन जमींदारों की मक्कारी का पर्दाफास कर देते हैं। साथ ही प्रेमचन्द मेहता द्वारा पठान का अभिनय कराकर इन उच्च वर्गीय लोगों—रायसाहब, खन्ना, तंखा आदि की कायरता का भी उद्‌घाटन कर देते हैं जो पराई और हराम की कमाई खा-खाकर बुजदिल बन गये हैं। पूँजीपति खन्ना भी मक्कारी, ढोंग और बुजदिली में रायसाहब से पीछे नहीं हैं।

रायसाहब और खन्ना दोनों मित्र हैं, दोनों शोषक हैं, दोनों मक्कार हैं, और इसलिये आपस में मिलकर काम करना चाहते हैं और मजा यह है कि दोनों ही देशभक्ति की चादर ओढ़े रहते हैं। मेहता एक साथ ही इन दोनों की खबर लेते हुए यह सिद्ध कर देते हैं कि हमारा बुद्धिजीवी वर्ग उच्चवर्गीय इन मक्का-रियों के प्रति काफी सतर्क है। उसे बहकाया नहीं जा सकता। मेहता जनता

में संगठन कर "नई एकता के सूत्रधार बनाने की तैयारी कर रहे हैं ?" प्रेमचन्द ऐसे समय मालती के मुँह से बुद्धिजीवी वर्ग को अपना सन्देश देते हुए कहलवाते हैं—"संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अन्ध-विश्वास का, कपट धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त-पुकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे, तो सुनने वाले कहाँ से आयेंगे और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान बन्द नहीं कर सकते।"

प्रेमचन्द का उपरोक्त सन्देश समस्त बुद्धिजीवी वर्ग के लिये है। इसी वर्ग में वह शक्ति होती है जो जनता के दुख-दर्द को साकार चित्रित करने में समर्थ होती है। मगर आज हमारे बुद्धिजीवियों में से कोई फ्रायडवाद की गलियों का चक्कर लगाता हुआ काम ग्रन्थियों के रहस्यों का वातावरण करता फिर रहा है, कोई नवीन प्रयोग के मायाजाल में उलझकर जनता को पूरी तरह से भूल बैठा है तथा कोई मादक मदिरा की खुमारी में अपने सिवाय सारे संसार को विस्मृत-कर बैठा है। ऐसे लोग 'गोदान' को पढ़ें और सोचें कि उनका क्या कर्त्तव्य है। संसार की प्रसिद्ध जन-वृत्तियों में बुद्धिजीवी वर्ग ने नेतृत्व ग्रहण कर उन्हें सफल बनाया है। उसने जनता में उद्‌बोधन का स्वर फूँका है, उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया है। मालती हमारे उसी बुद्धिजीवी वर्ग के ज्ञान, अनुभव कला को चुनौती देती हुई कहती है—"अपनी विद्या और बुद्धि को, अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले आओ।" होरी और गोबर के भाईबन्द, जो पददलित जनता के प्रतीक हैं, ऐसे लोगों की तरफ आशा से आँखें लगाये बैठे हैं—कि वे उनका पथ-प्रदर्शन करेंगे।

'गोदान' में प्रेमचन्द ने एक प्रकार से सम्पूर्ण भारतीय जीवन—ग्रामीण और नागरिक को संजोकर एक साथ रख दिया है। इसी कारण प्रोफेसर विश्वम्भर उसे आधुनिक भारतीय जीवन का दर्पण मानते हैं। इसकी कहानी एक ऐसे किसान की कहानी है जो चारों ओर से मध्यवर्ग से जकड़ा हुआ है। जमींदार, मिल-मालिक, पुलिस, सूदखोर महाजन, पंडित आदि सभी उसे जोंकों की तरह चूँस रहे हैं। होरी में सामान्य किसानों की अच्छाई और बुराई सभी

मौजूद हैं। "किस प्रकार अपनी परिस्थितियों और संस्कारों से पिसता हुआ वह दरिद्र प्राणी करुण मृत्यु प्राप्त करता है। किस प्रकार सभी का पेट भरता हुआ वह स्वयं अपने जीवन की किसी सामान्य इच्छा को पूर्ण करने में असमर्थ रहता है, यही सब कुछ दिखाना 'गोदान' का लक्ष्य है।"

प्रश्न ५—"गोदान" के आधार पर इस उपन्यास में वर्णित सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक दशाओं पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—'गोदान' में भारत के ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की विभिन्न झाँकियों को लेखक ने सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के द्वारा जहाँ हम एक ओर ग्राम की सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक दशाओं से अवगत होते हैं वहाँ दूसरी ओर नाम की सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से भी अनभिज्ञ नहीं रहते।

सामाजिक दशा—'गोदान' में ग्राम एवं नगर से सम्बन्धित दो कथाओं का वर्णन हुआ है अतएव सुविधा के तौर पर पहले ग्रामीण सामाजिक दशाओं का विवेचन करेंगे पुनः नगर से सम्बन्धित सामाजिक परिस्थितियों पर दृष्टि डालेंगे।

ग्रामीण जीवन की सामाजिक दशा

पारिवारिक स्थिति—ग्राम में परिवारों की दशा विशेष शान्तिपूर्ण एवं सुखद नहीं कही जा सकती। पति-पत्नी, पिता-पुत्र, बहिन-भाई, माँ-बेटे के बीच आये दिन झगड़े होते हैं। सम्मिलित परिवार की प्रथा प्रचलित दिखाई पड़ती है लेकिन नवयुवक पुत्र सम्मिलित परिवार से पृथक रहना ही पसंद करते हैं। होरी का पुत्र गोबर अपने पिता के परिवार से पृथक होकर नगर चला जाता है। पति-पत्नी के बीच प्रायः प्रत्येक दिन घर में किसी न किसी बात पर कलह होती रहती है और कभी-कभी तो क्रोधावेश में आकर पति अपनी पत्नियों को पीट भी देते हैं। होरी ने बहुत लोगों के सामने धनिया को पीटा था। पारिवारिक स्थिति गृह कलह और अर्थाभाव के कारण दुख से पूर्ण ही दृष्टिगोचर होती है।

स्त्रियों की स्थिति—स्त्रियों की स्थिति विशेष उच्च स्तर की नहीं कही जा सकती। स्त्रियों को उनके पति मारते पीटते हैं। लड़कियों को पिता भार समझते हैं। लड़कियों के बेचने की प्रथा प्रचलित पाई जाती है। होरी स्वयं अपनी लड़की रूपा को अधेड़ उम्र वाले रामभरोसे के हाथ बेच देता है। स्त्रियों को भोग-विलास की सामग्री समझा जाता है और उन्हें अपनी वासना पूर्ति के हेतु गाँव के धनी एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति रखेल के रूप में रखते हैं। और कहीं-कहीं तो नीची जाति की स्त्रियों को बहला फुसला कर उनसे अनुचित सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। सिलिया चमारिन को पुरोहित-पुत्र मातादीन अपनी वासना-पूर्ति का साधन बनाता है। इस प्रकार स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती।

जाति-पांति का भेद-भाव—ग्रामीण समाज में जाति-पांति का भेद-भाव का रोग बहुत व्याप्त दिखाई देता है। निम्न जाति वालों को उच्च जाति वाले अस्पर्श्य समझते हैं और उनसे बुरा बर्ताव करते हैं। एक जाति वाले दूसरे जाति वाले से रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते।

धार्मिक वितंडावाद—गाँव में अनेक धार्मिक कुरीतियाँ फैली हुई हैं। जो ब्राह्मण कुल में जन्मा है उसे सभी आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। जो निम्न जाति में जन्मा है वह कितना ही सदाचारी एवं चरित्रवान क्यों न हो उनको लोग हेय दृष्टि से देखते हैं।

नगरों की सामाजिक दशा—जब हम नगर की सामाजिक अवस्था पर दृष्टिपात करते हैं तो वहाँ भी विशेष सन्तोषजनक स्थिति नहीं पाते। नगर के रहने वाले भी अनेक कुरीतियों के शिकार हैं। इसके अलावा उनके जीवन में नई सभ्यता का ज़हर भी धीरे-धीरे व्याप्त हो रहा है। बच्चों का बालपन में विवाह करना और सन्तानों को छैला बनाकर फिराने में ही सन्तुष्ट रहते हैं। शहरों में स्वच्छन्द घूमने पर भी कोई बन्धन नहीं है। मालती व मेहता का स्वच्छन्द प्रेम भी देखने को मिलता है। वैवाहिक समस्या गाँव की तरह शहरों में देखने को नहीं मिलती क्योंकि लोगों की आर्थिक अवस्था अधिक बिगड़ी हुई नहीं है। जाति-पांति का भी इतना अधिक भेद-भाव नहीं मिलता, जितना

गाँवों में है। नगरों में सभ्यता का प्रचार आजकल बढ़ रहा है क्योंकि सभ्यता को अपनाने के लिये उनके पास धन है लेकिन ग्रामीण लोग इस धन से विमुक्त हैं। नगरों में जीवन-संघर्ष ने पारस्परिक सहानुभूति और समवेदना के भावों को भुला दिया है। वहाँ पर सब स्वार्थमय है।

राजनैतिक दशा—

गाँव की राजनैतिक दशा—गाँव में जमीदार को सबसे प्रमुख माना जाता है, उसकी इच्छा सर्वोपरि होती है, उसके बाद मुखिया, महाजन एवं ब्राह्मण पुरोहित को भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। साधारण किसानों के ऊपर इन्हीं लोगों का शासन चलता है। लगान वसूल करने के लिये जमीदार किसानों के खेत तक नीलाम करवा देते हैं। गाँवों में किसी भी बात का फैसला करने के लिये पंचायत होती है और पंचों का फैसला समस्त ग्रामवासियों को शिरोधार्य होता है। इस प्रकार सामाजिक अपराधियों को दण्ड देने का कार्य पंचायतों द्वारा सम्पादित होता है।

नगर की राजनैतिक दशा—नगर में जमीदारों की बजाय मिल-मालिक मजदूरों के सर्वेसर्वा हैं और नगर में सीमित संख्या में मिल-मालिक हैं या फिर पुराने रईस या फिर कुछ शिक्षित प्रोफेसर, पत्रकार आदि हैं, लेकिन बहुसंख्या मजदूरों की है। यह मजदूर मिल मालिक के इशारों पर नाचते हैं तथा जब कभी विद्रोह या हड़ताल करते हैं तो उनको पुलिस आदि की सहायता से दबा दिया जाता है। इस प्रकार मजदूर भी आर्थिक विषमता से पीड़ित हैं।

ऊपर से भिन्न प्रतीत होते हुए इन दो क्षेत्रों में एक बात और जान लेने योग्य है और अब यह कि दोनों ही क्षेत्र एक ऐसी शक्ति द्वारा सताये जा रहे हैं जो स्वयं तो न्याय का अवतार बनी हुई सबसे ऊपर बैठी रहती थी परन्तु जिसके गुर्गे दिन रात शोषण और अत्याचार में लिप्त रहते थे और उस सबकी बदनामी का श्रेय इन्हीं गुर्गों को मिलता था। वह शक्ति थी अँग्रेजी राज्य की जिसने गुंडों को जनता पर मनमाना अत्याचार करने की छूट दे रखी थी। जमीदार, उसके कारिन्दे, सरकारी अहलकार, पूँजीपति आदि उसी से छूट

पाकर भयंकर अत्याचार करते थे। काँग्रेस का आन्दोलन चल रहा था परन्तु उसका उद्देश्य जनता का राज्य न होकर 'ज्ञान' की जगह 'गोविन्द' को ला बैठाना था। प्रेमचन्द ने काँग्रेस आन्दोलन की इस यथार्थता को बड़ी गहराई के साथ देखा था और उसका चित्रण किया था। 'गोदान' में इसीलिये अँग्रेज कहीं खुलकर सामने नहीं आता, जो इन शोषकों का नकाबपोश सरदार है।

उस समय पूँजीवाद सामन्तवाद को हटाकर देश की एक नवीन शक्ति के रूप में उदय हो रहा था, देशी पूँजीवाद को विदेशी पूँजीवाद को उखाड़ कर अपनी स्थिति मजबूत करनी थी और इसके लिये उसने विदेशियों का विरोध करने वाली कांग्रेस का साथ दिया। बिड़ला आदि धनपति कांग्रेस के प्रधान स्तम्भ माने जाने लगे। खन्ना जैसे व्यक्ति इन्हीं के छुटभैये थे। धन-संग्रह बिना मक्कारी और छल-फरेब के असम्भव है। इसलिये एक तरफ तो इन लोगों ने कांग्रेस का साथ दिया और दूसरी तरफ जनता का शोषण करते रहे व्यापार इन लोगों के हाथ में था। बैंक और मिलें इन्हीं की व्यक्तिगत सम्पत्ति थीं और मिलों के लिये कच्चा माल प्राप्त करने लिये ये लोग सस्ते दामों पर किसानों के खेतों की उपज खरीद कर पैसा कमाते थे। मजदूर कीड़े मकोड़ों का सा जीवन व्यतीत करते थे और जब विरोध स्वरूप हड़ताल कर देते थे तो पूँजीपति उन्हें भूखों मारने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे।

इस प्रकार जमींदार पूँजीपति मिलकर जनता का शोषण करते रहे थे। प्रेमचन्द ने इस रहस्य को समझ लिया था, इसलिये इनका वास्तविक रूप का उद्घाटन कर जनता को यह समझाने का प्रयत्न किया कि इनसे सवाधान रहो। ये भेड़ की खाल ओढ़े हुए भयानक रक्त के प्यासे भेड़िये हैं। आज कांग्रेस पर इन्हीं लोगों का कब्जा है और जनता इसलिये अधिक दुखी है यह थी उस समय की राजनीतिक स्थिति। प्रेमचन्द ने स्पष्ट रूप से राजनीति का कहीं नाम भी नहीं आने दिया है, परन्तु उन्होंने अत्यन्त कलात्मक ढङ्ग से समाज के उन सम्पूर्ण तत्त्वों का वास्तविक रूप जनता के सामने रख दिया है, जो हमारी राष्ट्रीय चेतना को विकसित नहीं होने देते।

धार्मिक दशा—

गाँव की धार्मिक अवस्था—गाँव में धर्म का अपना विशेष महत्व है।

भाग्यवादी, कर्मवाद, ब्राह्मण पूजा आदि का प्रचार धर्म की ही आड़ में किया जाता है। जो शास्त्रोक्त विधि-निषेधों का एकनिष्ठ होकर पालन करता है वही धर्मात्मा है। दातादीन और उनके सुपुत्र मातादीन धर्मात्मा ब्राह्मण हैं क्योंकि ब्राह्मणों के लिये निर्धारित सभी वाह्य कर्मों का पालन करते हैं। दातादीन कस कर सूद लेते हैं, किसानों को चूसते हैं फिर भी पूज्य बने रहते हैं। मातादीन चमारिन को रखे हुए हैं परन्तु उसके हाथ का नहीं खाते और कथा-भागवत बांचते हैं इसीलिये पूज्य हैं। चमार उन्हें पकड़कर उनके मुँह में गाय की हड्डी ठूँस देते हैं परन्तु वह तीन सौ रुपये बिगाड़ काशी के पंडितों द्वारा प्रायश्चित करवा कर पुनः शुद्ध हो जाते हैं। परन्तु सत्य अन्त में उभर कर सामने आ ही जाता है और मातादीन को यह स्वीकार करना पड़ता है कि जो अपना धर्म पाले वही ब्राह्मण और जो न पाले वही चमार है। इस कर्म का एक दूसरा रूप और है। नोखेराम कुलीन ब्राह्मण हैं मगर नोहरी अहीरन को रखे हुए हैं। पूजा-पाठ भी करते हैं परन्तु वे जमींदार के कारकुन हैं इसलिए कोई उनसे कुछ भी नहीं कहता।

धर्म द्वारा समर्थित और बहु प्रचारित भाग्यवाद होरी जैसे किसानों की विद्रोह भावना को दबाये रखता है। होरी को यह विश्वास है कि उसे संकट इसलिये झेलने पड़ते हैं क्योंकि उसके भाग्य में ऐसा ही लिखा है। रायसाहब इसलिये मौज करते हैं क्योंकि उन्होंने पूर्व जन्म में पुण्य कर्म किये होंगे। जब होरी ने पूर्व जन्म में कुछ संचा ही नहीं तो भोगे कहाँ से। परन्तु गाँव में गोबर के रूप में एक ऐसी पीढ़ी का उदय भी हो रहा है जो इन सब बातों को मक्कारी समझता है और उनका खुलकर विरोध करता है कि—"यह सब कहने की बातें हैं।" मगर उसे यह नहीं मालूम कि उनका प्रतिकार कैसे करे।

गाँव में गाय को पवित्र समझा जाता है। उसे स्वर्ग की नसैनी कहा जाता है। होरी का भी ऐसा ही विश्वास है और वह छल-फरेब द्वारा अपने दरवाजे पर गाय बाँध भी लेता है परन्तु 'स्वर्ग की यह नसैनी' उसकी जो दुर्गति कराती है उसे देखकर हृदय काँप उठता है। उसके संकटों का प्रारम्भ भी इसी से होता है और जब वह मरता है तब भी इसी लालसा को पूरी करने के प्रयत्न में मरता है और अन्त में उसकी लाश पर कसाई के समान गोदान के लिये हाथ

फैलाये खड़े धर्म के ठेकेदार दातादीन को केवल बीस आने के गोदान से संतोष करना पड़ता है।

नगर की धार्मिक दशा—गाँव की अपेक्षा नगरवासी धर्म को इतना महत्त्व नहीं देते। निम्न मध्यम वर्ग अवश्य ही धर्म-पालन की ओर सचेष्ट दिखाई देता है लेकिन गाँव की अपेक्षा वे भी इस दिशा में कम सचेष्ट हैं। वस्तुतः देखा जाय तो प्रेमचन्द ने ही अपने इस उपन्यास में नगर की धार्मिक अवस्था के चित्रण की ओर बहुत कम रुचि दिखाई है। धार्मिक नैतिकता का भय शहरी लोगों से हटता जा रहा है और वे दुराचारी तथा चरित्र भ्रष्ट होते जा रहे हैं। विवाह को नगरवासी धर्म का बंधन नहीं मानते अपितु उसे सामाजिक बंधन मानते हैं और इसीलिये आधुनिक शहरी लड़कियाँ विवाह को रोग मानती हैं अत: वे उस बंधन में फँसना बेवकूफी समझती हैं लेकिन भीतर ही भीतर वे अविवाहित रह कर भी खूब गुलछर्रे उड़ाती हैं। नगर से धर्म का आध्यात्मिक वातावरण लुप्त होता जा रहा है और पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित भौतिकता का वातावरण घनीभूत होता जा रहा है। धर्म शहर में भी यदि रह गया है तो अपने विकृत रूप में ही।

इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने इस उपन्यास में सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक दशाओं का सफलता-पूर्वक चित्रण कर वातावरण को अत्यन्त सजीव एवं प्रभावोत्पादक बना दिया है।

प्रश्न ६—"गोदान में दो कथाएँ हैं एक ग्राम्य कथा और दूसरी नागरिक कथा; लेकिन इन दोनों कथाओं में परस्पर सम्बद्धता तथा संतुलन का अभाव पाया जाता है।" इस कथन के पक्ष अथवा विपक्ष में अपना उत्तर सप्रमाण दीजिये।

उत्तर—कथावस्तु उपन्यास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व समझा जाता है कथावस्तु विहीन उपन्यास की कल्पना असम्भव है। उपन्यास की सफलता बहुत कुछ कथावस्तु पर निर्भर करती है। उपन्यास की प्रमुख कथा एवं दूसरी गौण या प्रासङ्गिक कथाएँ होती हैं। उपन्यासकार की कुशलता इसमें देखी जाती है कि उसने छोटी बड़ी कथाओं को परस्पर कितने सुन्दर रूप में सम्बद्ध

किया है । छोटी बड़ी कथाएँ यदि परस्पर सम्बद्ध न होकर स्वतन्त्र दिखाई दें तो उपन्यास का प्रभाव शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और उस उपन्यास की सफलता पर भी गहरा आघात पहुँचता है । अतएव किसी भी श्रेष्ठ उपन्यास की कथावस्तु रोचक एवं सोद्देश्य होने के साथ-साथ सुगठित भी होनी चाहिये । यदि उसकी कथावस्तु ही सुगठित, परस्पर सम्बद्ध और संतुलित नहीं है तो उस उपन्यास को उच्चकोटि का उपन्यास नहीं माना जा सकता । पं० नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे हिन्दी के माने जाने हुए आलोचकों ने 'गोदान' की कथावस्तु को शिथिल और असम्बद्ध माना है । अतः पहले हम उन्हीं के आक्षेपों का विवेचन करेंगे ।

वाजपेयी जी 'गोदान' में दो कथायें साथ-साथ चलती पाते हैं—एक आधिकारिक तथा दूसरी प्रासंगिक । ग्रामीण पात्रों से सम्बन्ध रखने वाली कथा को वे आधिकारिक अथवा मुख्य कथा तथा नागरिक पात्रों से सम्बन्ध रखने वाली कथा को प्रासंगिक अथवा गौण कथा मानते हैं और समष्टि रूप से उक्त दोनों कथाओं को परस्पर पूर्णरूपेण सम्बद्ध नहीं मानते । वाजपेयी जी के उक्त मत के विरुद्ध हिन्दी के वयोवृद्ध आलोचक बाबू गुलाबराय का मत है । आप 'गोदान' के कथानक को सुगठित और सम्बद्ध मानते हैं । आप का कथन है कि— "उपन्यास की कथावस्तु गढ़ी हुई नहीं मालूम पड़ती है । उसमें जीवन का सा बहाव है । जीवन के से ही छायालोकमय सुख-दुख भरे चित्र हैं । कहीं खन्ना और तनखा जैसे नैतिक गर्त हैं तो कहीं होरी जैसे उच्च शिखर हैं । कथावस्तु में पूरी गति है । वर्णन सुन्दर होते हुए भी इतने बड़े नहीं हैं कि कथावस्तु की गति कुण्ठित हो जाय । वस्तु का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है, सभी प्रकार का जीवन आ गया है । चोटी के आदमियों का भी वर्णन है और निर्धन लोगों का भी । मिलों की हड़ताल, शक्कर व्यवसाय की समस्याएँ, चुनाव के दाँव-पेच, गाँव के पंचों, जमींदारों और पटवारियों का दम्भ और साहूकारों की जायदाद हड़पने वाली नीति, शिकार, पिकनिक, समाज-सेवा, बालकों का मनोराज्य, जवान और बूढ़ों की रसिकता सभी का सुन्दर चित्र है ।" इस प्रकार **'गोदान' का कथानक जीवन के उपरोक्त विभिन्न चित्रों को समेटता हुआ अविरल रूप**

से अन्त तक चलता चला जता है। फिर इस कथानक को शिथिल अथवा असम्बद्ध कैसे कहा जा सकता है है।

वाजपेयी जी 'गोदान' को शुद्ध रूप से ग्रामीण-जीवन का उपन्यास मानते हैं। उनका पहला तर्क है कि—"यदि उसमें नागरिक पात्र आते हैं तो उनका ग्रामीण पात्रों की गतिविधि से किसी न किसी प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध होना ही चाहिए।" और उन्हें यह घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाई नहीं पड़ा है। उनका दूसरा तर्क यह है कि ग्रामीण वातावरण में नागरिक लोगों का समावेश केवल दो ही उद्देश्यों को लेकर किया जा सकता है। प्रथम यह कि दोनों जीवनों की विषमता को स्पष्ट कर प्रभाव को तीव्र बनाना तथा द्वितीय यह कि नागरिक पात्र ग्रामीण पात्रों का सुधार करें। वाजपेयी जी के उपरोक्त दोनों ही तर्क भ्रमपूर्ण हैं। 'गोदान' न तो केवल ग्रामीण जीवन का उपन्यास है और न प्रेमचन्द नागरिक पात्रों द्वारा ग्रामीण पात्रों का सुधार ही करवाने के पक्ष में हैं। अब 'गोदान' की कथावस्तु के संगठित होने के प्रयोग में तर्क प्रस्तुत करेंगे।

१—'गोदान' समष्टि रूप से शोषण का वह चक्र प्रस्तुत करता है जिसके द्वारा ग्रामीण एवं नागरिक शोषक वर्ग मिलकर सम्मिलित रूप से ग्रामीणों का शोषण करता है। किसान का शोषण स्थानीय साहूकार तो बराबर करते ही रहते हैं और उनके शोषण का तरीका प्रायः प्रत्यक्ष रहता है। परन्तु नागरिक ग्रामीण की तुलना में अधिक चालाक होता है, इसीलिए उसके शोषण करने का तरीका अप्रत्यक्ष रहता है। 'गोदान' में गाँव का साहूकार भिंगुरीसिंह शहर के किसी बड़े साहूकार का दलाल है और शोषण में उसी का हाथ सबसे बड़ा रहता है। अन्य साहूकार छोटे और ठटपूँजिए हैं। दूसरी तरफ जमींदार रायसाहब ग्रामीणों का शोषण कर जो धन एकत्रित करते हैं वह उनके नागरिक जीवन के व्यवसाध्य विलासी वातावरण की पूर्ति में व्यय होता है। आखिर यह धन आता तो किसानों की ही जेब से है। इस धन से जमींदार मुकदमे लड़ता है, इलेक्शन लड़ता है; अपने बेटे-बेटियों का शान के साथ विवाह करता है और सम्पादकों को रिश्वतें देता है। साथ ही हाकिमों को डालियाँ भिजवाता है और अपनी उच्च स्थिति को सुरक्षित रखने के लिए नौकरों और

मोटरों की एक पूरी पल्टन रखता है। इस प्रकार किसान से छीना हुआ पैसा नागरिक विलास और आमोद-प्रमोद में व्यय किया जाता है। अतः 'गोदान' के उपरोक्त दोनों कथित असम्बद्ध कथानकों का सूत्र परस्पर प्रगाढ़ रूप से आबद्ध हो जाता है।

दूसरी तरफ नगर के वे पूँजीपति हैं जो शक्कर मिल आदि खोलकर किसानों की खड़ी फसल सस्ते दामों पर खरीद लेते हैं तथा भुगतान करते समय गाँव के साहूकार से मिलकर किसानों के हाथ एक पैसा भी नहीं लगने देते। क्योंकि साहूकार चाहे गाँव का हो चाहे नगर का सदैव एक दूसरे की सहायता करता है। शोषण का यह चक्र यहीं तक सीमित नहीं रहता। गाँव के जो गोबर जैसे भोले-भाले नवयुवक नगर में जाकर मजदूर बन तरह-तरह की बुराइयाँ सीख जाते हैं वे नगर में जाकर भी शोषण के इस चक्र से त्राण नहीं पा सकते। खन्ना के मिल की हड़ताल इसका प्रमाण है। गोबर वहाँ जाकर अनेक दुर्व्यसनों में फँस तबाह हो जाता है।

यदि वाजपेयी के उपरोक्त दोनों कारणों को स्वीकार कर लिया जाय तो उन दोनों के चित्रों की आंशिक झलक भी 'गोदान' में मिल जाती है। ग्राम और नगर दोनों ही स्थानों में पैसे वालों का राज्य है। नागरिक उच्चवर्ग गरीबों को घृणा की दृष्टि से देखता है। यहाँ तक कि मालती भी गरीब रोगियों की तरफ कोई ध्यान नहीं देती। नागरिक पात्रों में—दो एक को छोड़कर—प्रायः सभी शोषण की फिराक में लिप्त रहते हैं। वे परस्पर भी एक दूसरे को फँसाने की चिन्ता में चौकन्ने रहते हैं। खन्ना और तंखा रायसाहब को फाँसते हैं। उनमें परस्पर सौहाद्र का अभाव है। सम्पादक भी रायसाहब पर हाथ साफ कर लेते हैं। रायसाहब और राजा साहब परस्पर चुनाव लड़कर गरीब जनता से छीना हुआ धन पानी की तरह बहा देते हैं। इस स्थिति की तुलना में ग्रामीण पात्र अधिक उन्नत और श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं। दूसरी तरफ मेहता और मालती ग्रामीणों की सेवा तथा सुधार का भी काम प्रारम्भ कर देते हैं परन्तु है यह सब अप्रधान ही। प्रेमचन्द का उद्देश्य इस विषमता अथवा सुधार का प्रमुख रूप से चित्रण करना था ही नहीं। वे तो ग्रामीण समाज के शोषण के पूरे चित्र को उभारकर सामने लाना चाहते थे और इस शोषण में जितना हाथ ग्रामीण

साहूकारों और जमींदारों का रहता है उतना ही नागरिक उच्चवर्गीय लोगों का भी। फिर इन दोनों कथानकों को परस्पर असम्बद्ध कैसे माना जाय ?

२—वाजपेयी जी का नागरिक कथा को जोड़ने के विरोध में एक तर्क और है। वह यह कि उपन्यास का शीर्षक 'गोदान' है जिससे यह सूचना नहीं मिलती कि यह सम्पूर्ण भारतीय जीवन को चित्रित करने का लक्ष्य रखता है। उन्होंने 'गोदान' शब्द का सम्बन्ध केवल कृषकों से ही बताया है। परन्तु उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि जीवन-पर्यन्त अथक परिश्रम करते हुए भी एक किसान अन्तिम समय एक 'गौ' का भी दान करने में समर्थ नहीं हो सकता, आखिर इसका क्या कारण है ? वही शोषण का अबाध चक्र जो किसान को कभी भी नहीं पनपने देता। आलोचक उपन्यास की इस मूल एवं प्रमुख समस्या को भूलने के कारण ही नागरिक और ग्रामीण कथानकों में सम्बद्धता नहीं देख पाता।

प्रेमचन्द ने जिस प्रकार ग्रामीण समाज का विस्तृत चित्र अङ्कित किया है उसी प्रकार नागरिक समाज का भी। दोनों के ही प्रति प्रेमचन्द के मन में सहानुभूति की भावना विद्यमान है। परन्तु प्रेमचन्द का पक्षपात—यदि इसे पक्षपात माना जाय तो—ग्रामीणों के साथ अधिक है। प्रेमचन्द गोबर को केवल यह दिखाने के लिये नगर भेजते हैं कि गाँव का निर्धन किसान धन की लालसा में शहर जाता है तो उसमें कैसी-कैसी बुराइयाँ आ जाती हैं तथा साथ ही उसकी राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना कितनी जागरूक हो उठती है। प्रेमचन्द यह नहीं चाहते थे कि हमारे किसान नगर में जाकर वहाँ के विषैले वातावरण में अपना सहज भोलापन और पवित्रता खोकर अनेक बुराइयाँ सीख आएँ। वे औद्योगीकरण के इसलिए खिलाफ थे कि नगर में खुलने वाली मिलों के लिए कच्चा माल उपलब्ध करने के लिए ग्रामीण जनता का दुहरा शोषण किया जाता है। ग्रामीण जीवन नागरिक जीवन की तुलना में अधिक सुन्दर, पवित्र और सादा होता है। नगर में विलास है और पाप है। ये सारी बातें दिखाने के लिए 'गोदान' में नागरिक कथा का समावेश कला एवं उद्देश्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था और वही प्रेमचन्द ने किया और इतने कौशल के साथ किया, कि कहीं उसमें शिथिलता नहीं आ पाई।

वाजपेयी जिस नागरिक कथा को प्रासंगिक अथवा गौण मानते हैं उस कथा ने पौने छः सौ पृष्ठों के वृहद उपन्यास के लगभग तीन सौ पृष्ठ घेर रखे हैं। फिर हम उसे गौण कैसे मान सकते हैं। कुछ आदर्शवादी आलोचनों का यह स्वभाव होता है कि वे प्रस्तुत कृति का इस दृष्टिकोण से मूल्याङ्कन नहीं करते कि उसमें जो कुछ है वह कैसा है ? इसके विपरीत वे उन न्यूनताओं अथवा बातों के विषय में लेखक को सुझाव देने बैठ जाते हैं जो उस कृति में नहीं होती अर्थात् यह भी होना चाहिए था, वह भी होना चाहिए था। ऐसा प्रायः इसी कारण होता है कि ऐसे आलोचक आलोच्य कृति की मूल समस्या को पकड़ या समझ नहीं पाते। 'गोदान' का वृहद कथानक भारतीय किसान की कर्ज की उस समस्या को लेकर चलता है जिसने उसके जीवन को भार बना रखा है। वह जीवन-पर्यन्त अथक परिश्रम करते रहने पर भी उस कर्ज से त्राण नहीं पाता। ऐसा इसलिए होता है कि साहूकार, जो नागरिक और ग्रामीण दोनों ही होते हैं तथा जमींदार, पटवारी, कारिन्दे, पुलिस आदि उसे सदैव लूटते रहते हैं। लूट का यह तांडव नृत्य नागरिक और ग्रामीण शोषक वर्ग मिल कर करता है। अतः गोदान में जो चित्रण किया गया है वह सर्वथा स्वाभाविक और साभिप्राय है।

४—उक्त उद्देश्य की पूर्णता के लिए प्रेमचन्द्र ने समाज के जिन वर्गों का चित्रण किया है उनकी सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक मान्यताओं एवं स्थितियों का वर्णन भी इसीलिए आवश्यक हो गया है। इनके अभाव में उनके वास्तविक रूप का उद्घाटन करना असम्भव था।

'गोदान' की कथावस्तु सम्बन्धी आक्षेपों के उक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि इस उपन्यास की कथावस्तु कहीं भी शिथिल एवं असंतुलित नहीं हो पाई है। प्रेमचन्द ने ग्रामीण और नागरिक क्षेत्रों की कथाओं को स्वतन्त्र रूप से विकास प्रदान करते हुए भी इस कौशल के साथ परस्पर सुगठित किया है कि कहीं भी उसमें असम्बद्धता एवं असन्तुलन का ज्ञान नहीं हो पाता। कथावस्तु के सम्बन्ध में उनकी यह कला निश्चय ही विशिष्ट और मुग्धकारी है।

प्रश्न ७—'गोदान' के कथानक की विशेषताओं का उद्घाटन कीजिये।

उत्तर—'गोदान' प्रेमचन्द का अन्तिम उपन्यास है अतः उनके इस उपन्यास में उनकी कला के सम्पूर्ण निखार को बखूबी देखा जा सकता है। इस उपन्यास का कथानक ही अपने में इतना विशिष्ट है कि इसी आधार पर इसे अन्य उपन्यासों से श्रेष्ठ कहा जा सकता है। इस उपन्यास की कथानक सम्बन्धी विशेषताओं का विवेचन नीचे किया जाता है।

१—**कथानक में सुसम्बद्धता**—इस उपन्यास में ग्रामीण एवं नागरिक दो बड़ी कथाओं का पर्याप्त विकास देते हुए भी उपन्यासकार ने उन्हें इस कुशलता से एक दूसरे में पिरोया है कि मुग्ध होना पड़ता है। विस्तृत विवेचन गत प्रश्न में हो चुका है।

२—**भारतीय जीवन का सच्चा चित्रण**—प्रेमचन्द ने गाँव और शहर के क्षेत्रों में अपनी कथावस्तु का चयन किया है। इन दोनों क्षेत्रों से कथा की योजना कर प्रेमचन्द ने भारतीय जीवन की विषमताओं का सच्चे रूप में चित्रण किया है। होरी की कथा उस भारतीय किसान की सच्ची गाथा है जो जीवन पर्यन्त जमीदार, पटवारी, साहूकार, पंच एवं पुलिस के अत्याचारों से पीड़ित हो छटपटाता हुआ तथा जीवन पर्यन्त कर्मठता को अपना एकमात्र अवलम्ब बनाये आगे बढ़ता रहता है और अन्त में उसे 'गोदान' के लिए एक गाय भी मयस्सर नहीं होती। और प्रेमचन्द ने यह सब इतनी स्वाभाविकता के साथ किया है, कि हम पढ़कर यह सोचने लगते हैं कि यह सब तो हमारी देखी और सुनी हुई बातें हैं। हम इन्हें पहले से ही जानते थे।

३—**पात्रों का स्वाभाविक विकास**—'गोदान' के **प्रत्येक पात्र की अपनी-अपनी अलग कहानी** हैं, अपनी-अपनी पृथक समस्यायें हैं और उनको सुलझाने के अपने-अपने ढंग हैं। यहाँ तक कि गाँव के विभिन्न साहूकार भी अपनी-अपनी अलग कहानी और पृथक व्यक्तित्व लिए सामने आते हैं। किसी भी पात्र को प्रेमचन्द ने अपनी कठपुतली नहीं बनाया है। और इन सबको एक साथ समेटे हुए 'गोदान' का विशाल कथानक मन्थर गति से आगे की ओर बढ़ता चला जाता है और अन्त में अपने लक्ष्य भारतीय किसान की करुण कथा का अन्त दिखा कर समाप्त हो जाता है।

४—कथानक में रोचक संवादों की योजना—प्राय: यह देखा जाता है कि लेखक अपने उपन्यासों में लम्बे-लम्बे भाषणों अथवा चिन्तनों में अनेक पृष्ठ घेरते चले जाते हैं और अपनी उस रौ में इस बात का ध्यान नहीं रखते कि यह विस्तार पाठक को उबा भी सकता है। सफल कलाकार की कुशलता इसी में है कि वह लम्बे भाषण भी दे जाय और पाठक को ऊबने भी न दे। 'गोदान' में डा० मेहता महिलाओं की सभा में ऐसा ही एक लम्बा भाषण देते हैं। परन्तु उपन्यासकार उस स्थान पर अत्यन्त सतर्क प्रतीत होता है। डा० मेहता का यह भाषण यद्यपि चलता तो एक ही गति से है और निरन्तर बिना रुके। परन्तु प्रेमचन्द ने यह किया है कि उधर डा० मेहता भाषण दे रहे हैं और इधर खन्ना, सम्पादक औंकारनाथ, रायसाहब, मिर्जा साहब आदि उस भाषण पर आपस में मनोरंजक टिप्पणियाँ देते चलते हैं। साथ ही अन्य श्रोताओं पर भी प्रेमचन्द उस भाषण की प्रतिक्रिया दिखाते चलते हैं। इस कला के कारण भाषण यथेष्ठ लम्बा होते हुए भी नीरस अथवा उबा देने वाला नहीं बन पाता। जब प्रेमचन्द एक भाषण का वर्णन करने में इतनी सतर्कता से काम लेते हैं तो उनसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे दो असम्बद्ध कथानकों का आपस में बलात् गठ-बन्धन करने का प्रयत्न करेंगे। ऐसी सतर्कता के स्थल 'गोदान' में अनेक मिलते हैं।

५—ग्राम्य तथा नागरिक कथाओं की एकसूत्रता—'गोदान' की कथा का प्रारम्भ होरी के ग्रामीण जीवन से प्रारम्भ होता है और रायसाहब के धनुष यज्ञ में आकर वह नागरिक पात्रों से मिल जाता है। होरी का सम्बन्ध अपने जमींदार रायसाहब से है और रायसाहब का सम्बन्ध एक धनी व्यक्ति होने के नाते नगर के औंकारनाथ, खन्ना, तंखा, मेहता, मिरजा, मालती आदि के साथ है। इस प्रकार रायसाहब ग्रामीण और नागरिक जीवन को जोड़ने वाली कड़ी हैं। आगे चलकर गोबर नगर जाकर दोनों क्षेत्रों को मिरजा, मेहता, मालती आदि के सम्पर्क में आकर और भी घनिष्ठता के साथ जोड़ देता है। खन्ना की शक्कर मिल भी इस कार्य में पर्याप्त हाथ बटाती है। बाद में मेहता और मालती का शिकार भ्रमण तथा इन दोनों का होरी के गाँव जाना भी दोनों क्षेत्रों को मिलाने में सहायक होता है। सम्पादक औंकारनाथजी अपने पत्र 'बिजली' में

होरी के गाँव वालों द्वारा भेजे गये पत्र को छापने की बात कह कर इस कथा से जुड़ जाते हैं।

६—प्रासंगिक कथाओं का मुख्य कथा के साथ सुगुम्फन—ग्रामीण जीवन में ही भिन्न-भिन्न कथायें हैं। गोबर की झुनियाँ और मातादीन और सिलिया की भोला, नोहरी और नोखेराम की विभिन्न कथायें नायक होरी और नायिका धनिया से आकर सम्बद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार इन भिन्न प्रतीत होने वाली कथाओं ने समाज के वास्तविक चित्रण के साथ-साथ होरी और धनिया की मानवता को उभारने में पर्याप्त सहयोग दिया है। सम्पूर्ण कथा किसानों की मूल समस्याओं को ही लेकर चलती है परन्तु नागरिक और ग्रामीण क्षेत्रों की विभिन्न कथाएँ जीवन के लिये आवश्यक सदगुणों सेवा, त्याग, मानवता आदि का प्रदर्शन करने के लिये उस मूल समस्या को और भी अधिक महत्त्वपूर्ण, गहन और आकर्षक बना देती हैं। इससे सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण उपन्यास में न तो कोई उपकथा गौण है और न वह मूल विषय से हटकर चलती है। यह विशेषता इस कथानक की एकता एवं घनत्व का प्रतीक है।

७—कौतूहल का समावेश—इस कथानक की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें प्रारम्भ से अन्त तक पाठक का कौतूहल जाग्रत होता रहता है और उपन्यासकार एक कौतूहल का शमन कर दूसरे कौतूहल की अवतारणा करता रहता है। परन्तु 'गोदान' के पाठकों का यह कौतूलह अथवा उत्सुकता 'चन्द्रकान्ता सन्तति' जैसे उपन्यासों के कौतूहल से भिन्न प्रकार का है। इसमें पर्याप्त स्वाभाविकता और नाटकीयता है। उपन्यास का शीर्षक 'गोदान' है। अतः उपन्यासकार पहले परिच्छेद में होरी की गाय-विषयक लालसा को होरी और भोला की भेंट द्वारा व्यक्त कर देता है। तीसरे परिच्छेद में होरी के यहाँ गाय आ जाती है परन्तु उधर गोबर और झुनियाँ का प्रणय व्यापार प्रारम्भ हो जाता है। इधर गाय आ जाने पर हीरा का यह कथन कि—"भगवान चाहेंगे तो बहुत दिन गाय घर में न रहेगी," पुनः पाठक को शङ्कित कर देता है। झुनियाँ के आ जाने पर होरी के घर में नाटकीय स्थिति उत्पन्न हो जाती है परन्तु प्रेमचन्द बड़े कौशल एवं स्वाभाविकता के साथ उसे निबाह ले जाते हैं। झुनियाँ तो आ गई परन्तु होरी गोबर के विषय में चिन्तित है। उसकी गोबर-विषयक चिंता

उसकी अन्य सभी चिन्ताओं पर छा जाती है और पाठक का ध्यान स्वभावतः गोबर के प्रति आकर्षित हो जाता है फिर प्रेमचन्द गोबर को शहर पहुँचा कर उत्सुकता का शमन तुरन्त कर देते हैं। दूसरा नाटकीय प्रसंग धनुषयज्ञ के समय मेहता द्वारा पठान का रूप भरने में उपस्थित होता है। इसमें नाटकीयता का सम्पूर्ण वेग आ गया है। 'गोदान' में ऐसे स्वाभाविक नाटकीय प्रसंगों की भरमार है जो पाठक की रुचि को अपने में रमाये उसे बहलाते हुए अन्तिम लक्ष्य की ओर अग्रसर करते रहते हैं। और पाठक की उत्सुकता को बराबर जाग्रत रखने के लिए उसके सामने एक नई समस्या उत्पन्न करता चलता है समस्या पहले जटिल प्रतीत होती है कि उसका कोई हल ही दिखाई नहीं पड़ता। पाठक की उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँच जाती है। उसी समय लेखक एक सहज सा नाटकीय हल उपस्थित कर पाठक को सन्तुष्ट कर देता है और कथा फिर पूर्व गति से अग्रसर होने लगती है। लेखक होरी की लड़की सोना के विवाह के लिए नोहारी द्वार रुपया दिलवा करा ऐसी ही परिस्थिति उत्पन्न कर देता है।

८—**चमत्कारपूर्ण स्थलों की योजना**—कथावस्तु में चमत्कारपूर्ण स्थलों की भी योजना है। मालती पहले मेहता की ओर आकर्षित होती है परन्तु मेहता प्रेम को खूंखार शेर बताकर उसके साहस को भंग कर देते हैं। मालती उदास होकर मेहता से अलग हट जाती है। अब मेहता मालती के लिए व्याकुल हैं। मालती उनका सारा हिसाब देखती है, उन्हें अपने ही बंगले में रखती है; परन्तु मिलने का अवसर कम देती है। दोनों एक दूसरे को चाहते हैं परन्तु खुल नहीं पाते। झुनियाँ के बच्चे की सेवा में रत मालती के पास मेहता रात्रि के नीरव एकांत में पहुंचते हैं और याचना भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हैं। मालती लता की भाँति मेहता से लिपट जाना चाहती है। उत्सुकता की चरम अवस्था है कि अब क्या होगा ? तभी अचानक रस भंग हो जाता है। "झुनियाँ जाग उठती हूँ और मेहता को कमरे से बाहर चला जाना पड़ता है।" ऐसे चमत्कारपूर्ण स्थलों की भी 'गोदान' में कमी नहीं है।

९—**स्वाभाविकता की पूर्ण रक्षा**—'गोदान' के कथानक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सर्वत्र पूर्ण स्वाभाविक है और इस स्वाभाविकता के

निर्वाह में प्रेमचन्द की अद्भुत कल्पना शक्ति के दर्शन होते हैं। 'गोदान' में वर्णित विभिन्न घटनाओं को देखकर हमें ऐसा नहीं लगता कि हम काल्पनिक चित्र देख रहे हैं। वे हमें सर्वत्र पूर्ण स्वाभाविक दिखाई पड़ते हैं। प्रेमचन्द ने जन-जीवन के ऐसे सुन्दर और सजीव चित्र खींचे हैं कि उन्हें देखकर आश्चर्य से दंग रह जाना पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों लेखक उसी समाज के बीच में रहता हुआ पात्रों की प्रत्येक गति विधि पर सतर्क दृष्टि जमाये हुए है और एक-एक कर उन्हें अंकित करता चला गया है। परन्तु अधिकांश पाठकों को यह मालूम नहीं कि 'गोदान' का अधिकांश भाग प्रेमचन्द ने बम्बई के कोलाहलपूर्ण एवं सिनेमा के विषैले अकलात्मक वातावरण में बैठकर लिखा था और उनकी आत्मा पूरे समय तक अपने गाँव के स्वाभाविक वातावरण में पहुँचने के लिये छटपटाती रहती थी। इससे प्रमाणित होता है कि 'गोदान' के अधिकांश चित्र लेखक की कल्पना की उपज हैं और ऐसा होते हुए भी पूर्ण स्वाभाविक हैं। गोबर और झुनियाँ, मातादीन और सिलिया, नोहरी, भोला और नोखेराम, मालती और मेहता, मालती और खन्ना आदि के चित्र अपने-अपने वर्ग के अनुसार सजीव और साकार हैं। ग्रामीण समाज में ऐसी घटनायें प्रायः घटती रहती हैं। केवल मालती और मेहता के प्रसंग में ऐसा प्रतीत होता है कि वह कुछ अस्वाभाविक सा है। परन्तु उसकी अस्वाभाविकता तभी लगती है जब हम उसे गोबर, झुनियाँ आदि के साथ मिलाकर देखते हैं। मालती और मेहता नितान्त भिन्न वर्ग के प्राणी हैं जिनमें भावुकता और व्यावहारिकता कम तथा बौद्धिकता और आदर्श अधिक रहता है। ऐसे पात्र आधुनिक उच्च समाज में मिल तो जाते हैं परन्तु बहुत कम। इसका कारण कदाचित् यह है कि प्रेमचन्द आदर्शवाद के खिलवाड़ का मोह पूर्ण रूप से त्यागने में असमर्थ रहे हैं।

१०—**अन्तर्द्वन्द्वों की योजना**—इसके अतिरिक्त गोदान के पात्रों के विकास में उनके अन्तर्द्वन्द्वों ने भी पर्याप्त सहयोग दिया है। रायसाहब, गोबर, मालती, मेहता आदि के अन्तर्द्वन्द्वों से कथा को पर्याप्त गति प्राप्त हुई है। मालती के स्पष्ट दो रूप हैं—"बाहर से तितली और भीतर से मधुमक्खी।" मातादीन भी इसी अन्तर्द्वन्द्व का शिकार रहकर अन्त में ठीक रास्ते पर आ जाता है।

रायसाहब अपनी वास्तविक निर्बलताओं को जानते हुए भी अपने निश्चित पथ से नहीं हट पाते। मेहता का प्रेम का बर्बर कोटि का आदर्शवाद अन्त में धराशायी हो जाता है। खन्ना भी पश्चाताप करता है।

कुछ लोग मिर्जा खुर्शेद को अनावश्यक पात्र मानते हैं परन्तु उपन्यास में उसकी अपनी एक उपयोगिता है और वह है मनोरंजन की। वे कभी बुड्ढों की कबड्डी करवाते हैं तथा कभी वारांगनाओं का उद्धार करने की योजना बनाते हैं। ऐसे प्रसंग उपन्यास की गहनता को थोड़ी देर के लिए हटा देने के लिए आवश्यक होते हैं। इस प्रकार 'गोदान' का सम्पूर्ण कथानक विभिन्न प्रकार के पात्रों को समेटता हुआ सफलता के साथ समाप्त होता है।

प्रश्न ८—प्रेमचन्द के चरित्र-चित्रण की विशेषताएँ बताते हुए सिद्ध कीजिए कि इस क्षेत्र में 'गोदान' में वे पूर्ण सफल हुए हैं।

उत्तर—डा० नगेन्द्र के शब्दों में प्रेमचन्द उपयोगितावादी कलाकार थे और उनके उस उपयोगितावाद का—"मूल आधार था अधिक से अधिक व्यक्तियों का अधिक से अधिक हित। प्रेमचन्द के साहित्य पर सर्वत्र शिव का शासन है—सत्य और सुन्दर शिव के अनुचर होकर आते हैं। उनकी कला स्वीकृत रूप में जीवन के लिए थी और जीवन का अर्थ भी उसके लिए वर्तमान सामाजिक जीवन ही था।······कला की स्वतन्त्रता की कल्पना वे स्वप्न में भी नहीं कर सकते थे। केवल मनोरंजिनी कला को वे मदारियों और भाड़ों का खेल समझते थे।" अपनी इसी धारणा के कारण प्रेमचन्द कभी भी जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की ओर आकृष्ट नहीं हुए। उन्होंने अपने युग को तथा मानव जीवन को सदैव व्यावहारिक दृष्टि से ही देखा। व्यावहारिक का अर्थ है कि उन्होंने अपने युग का राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से ही अध्ययन किया था। इसी अध्ययन के कारण उन्हें जनवादी कलाकार कहा जाता है।

जनवादी कलाकार जीवन की समग्रता का चित्र अंकित करते हुए अपनी सहानुभूति का बहुत बड़ा भाग पीड़ित एवं सताये हुए जनों को ही समर्पित करता है। साधारण कलाकार यह करते हैं कि जनवादी चित्रण के उत्कट मोह में पड़कर शोषकों के प्रति अत्यन्त निर्मम एवं कठोर रुख अपना लेते हैं

तथा पीड़ितों एवं शोषितों के प्रति उनकी सहानुभूति प्रायः पक्षपात का रूप धारण कर लेती है। ऐसा होने पर वह कला अपना सन्तुलन खो बैठती है। शोषक हो या शोषित, सभी मानव होते हैं; उनमें भी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ होती हैं—अन्तर केवल मात्रा का पड़ता है। सच्चा कलाकार सत्य का उद्घाटन करता हुआ असत्य का रूप भी स्पष्ट कर देता है। प्रेमचन्द के हृदय में मजदूरों और किसानों के प्रति अगाध सहानुभूति है। शोषितों का इनका जैसा प्रबल हमदर्द हमें और कोई नहीं मिलता और अपनी इस हमदर्दी को प्रकट करने के लिए प्रेमचन्द ने पीड़तों एवं शोषकों का खूब पर्दाफाश किया है। परन्तु ऐसा करने में भी प्रेमचन्द ने अपने सन्तुलन को सदैव कायम रखा है। उन्होंने जमींदारों, पूँजीपतियों, धार्मिक पाखण्डियों के दोषों पर तीखा आक्रमण करते हुए भी उनके गुणों को नहीं भुलाया है। परिस्थितियाँ एवं उनकी चारित्रिक कमजोरियाँ उन्हें अपने गुणों का प्रदर्शन नहीं करने देतीं। प्रेमचन्द के चरित्र-चित्रण की इस सूक्ष्म विशेषता को न समझ सकने के कारण प्रारम्भ में कुछ अधकचरे आलोचकों ने प्रेमचन्द को "घृणा का प्रचारक प्रेमचन्द" कहकर प्रचारित करने का प्रयत्न किया था। परन्तु आज लगभग सभी आलोचक यह स्वीकार करने लगे हैं कि प्रेमचन्द आधुनिक अर्थों में पूर्ण मानवतावादी कलाकार हैं और मानववाद का समर्थक कभी घृणा का प्रचारक नहीं हो सकता।

प्रेमचन्द का सम्पूर्ण साहित्य प्रधानतः आर्थिक समस्या का ही चित्रण करता है। वर्तमान अर्थ प्रधान युग में अन्य सम्पूर्ण समस्याओं का मूलाधार आर्थिक समस्या बन चुकी है और आर्थिक समस्या का यह चक्र समाज के सभी वर्गों को समेट कर चलता रहा है। इसी कारण प्रेमचन्द-साहित्य में समाज के सभी वर्गों का चित्रण मिलता है। सभी उनकी व्यापक सहानुभूति के पात्र हैं। उनके पात्रों में अपढ़, दुखी एवं दरिद्र भोले-भाले किसान तथा मशीनयुग के निर्मम चक्र में पिसते हुए शहर के मजदूर, वर्ण व्यवस्था के शिकार निम्नवर्गीय प्राणी तथा उच्चवर्गीय राजा, महाराजा, जमींदार, पूँजीपति, एवं धर्म के पाखण्डी ठेकेदार, पंडे, पुजारी, महन्त और मध्यमवर्गीय नौकरी पेशा लोग मिलते हैं। उनके विभिन्न उपन्यास, कुल मिलाकर भारतीय समाज का एक समग्र

चित्र उपस्थित कर देते हैं। इन पात्रों में स्पष्टतः दो वर्ग दिखाई पड़ते हैं–एक वे शोषक जो अपने विलास एवं स्वार्थ की खातिर संगठित होकर निर्बलों, असहायों एवं संगठितों का शोषण करते हैं और दूसरे वे जिनका शोषण किया जाता है।

प्रेमचन्द ने भारत की स्थिति एवं जाति को सच्चे रूप में समझकर उसे सच्चे रूप में अंकित किया है और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—"जो ग्रन्थकार किसी जाति को सच्चे रूप में उपस्थित करता है, उसके गुण दोषों को ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त कर सकता है—वह संसार की सबसे बड़ी सेवा करता है।" प्रेमचन्द ने जाति की इस सेवा के लिए समाज के सभी अङ्गों को अपनाया और इतनी सफलता के साथ अपनाया कि उनसे पहिले और उनके बाद आज तक कोई कलाकार हमें इतने विस्तृत एवं सशक्त रूप में उनका चित्रण नहीं दे पाया।

उपरोक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द के चरित्रों का क्षेत्र कितना व्यापक रहा है और यह देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है कि प्रेमचन्द नें इन विभिन्न प्रकार के चरित्रों को किस कलात्मक ढंग से सफलता-पूर्वक चित्रित किया है। प्रेमचन्द द्वारा अंकित सूरदास, होरी बलराज, मनोहर, विनय, रायसाहब अमरपालसिंह, देवीदीन खटीक, सोफिया, सुमन, धनिया, जालपा आदि चरित्र हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि बन चुके हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि प्रेमचन्द को ऐसे सशक्त चरित्रों का निर्माण करने में ऐसी असाधारण सफलता कैसे प्राप्त हो सकी ? इसके लिए हमें पुनः एक बार चरित्र-चित्रण सम्बन्धी प्रेमचन्द के विचारों को जानना पड़ेगा। प्रेमचन्द का कहना है कि—"चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा और यह लेखक की रचनाशक्ति पर निर्भर है। जिस तरह किसी मनुष्य को देखते ही हम उसके मनोभावों से परिचित नहीं हो जाते, ज्यों-ज्यों हमारी घनिष्ठता उससे बढ़ती है, त्यों-त्यों उसके मनोरहस्य खुलते हैं, उसी तरह उपन्यास के चरित्र भी लेखक की कल्पना में पूर्ण रूप से नहीं आ जाते बल्कि उनमें क्रमशः विकास होता जाता है। यह विकास इतने गुप्त, अस्पष्ट रूप से होता है कि पढ़ने वाले को किसी तबदीली का

ज्ञान भी नहीं होता।…कोई चरित्र अन्त में भी वैसा ही रहे जैसा वह पहले था—उसके बलबुद्धि और भावों का विकास न हो, तो असफल चरित्र है।"

प्रेमचन्द के सभी श्रेष्ठ चरित्र उनके इस वक्तव्य के श्रेष्ठ प्रमाण हैं। प्रेमचन्द इनके चित्रण में इसलिए सफल हुये हैं कि उन्होंने इन चरित्रों का सामाजिक जीवन में निकट से और सूक्ष्मता के साथ अध्ययन किया है। इसी कारण प्रेमचन्द के ये पात्र हमें अपने चिर-परिचित से प्रतीत होते हैं। उनके केवल नाम ही कल्पित हैं और सब बातें नितान्त यथार्थ हैं। इन पात्रों में सत् और असत् दोनों ही प्रवृत्तियों वाले पात्र मिलते हैं। प्रेमचन्द मानव के हृदय के सच्चे पारखी थे। इसी कारण उनके पात्र इतने सजीव बन सके हैं।

उपन्यास में चरित्र-चित्रण का महत्व इसलिए अधिक माना जाता है कि कथा-विकास में इससे पर्याप्त सहायता मिलती है। घटना-प्रधान उपन्यासों में घटनायें कथा को विकास देती हैं, परन्तु चरित्र-प्रधान उपन्यासों में घटना-विकास के मूल प्रेरक उनके विभिन्न चरित्र ही होते हैं और सर्वसम्मति से चरित्र-प्रधान उपन्यास घटना-प्रधान उपन्यासों से श्रेष्ठ माने गए हैं क्योंकि चरित्र-प्रधान उपन्यासों में पात्रों की मानसिक स्थिति का विश्लेषण किया जाता है जिसका प्रभाव मानव हृदय पर स्थायी रहता है। मानव भावनायें प्रायः स्थायी और समान रूप से व्यापक होती हैं। इसलिए जो उपन्यासकार इन मानव-भावनाओं का जितना ही सुन्दर, सत्य और अकल्पित चित्रण करता है वह इतना ही श्रेष्ठ उपन्यासकार माना जाता है और वही उपन्यासकार इतना सफल चित्रण कर सकता है जिसका मानव भावनाओं अर्थात् मनोविज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान—पुस्तकीय ज्ञान नहीं—जितना अधिक सूक्ष्म. और विस्तृत होगा। प्रेमचन्द इस कला में पारंगत माने जाते हैं।

परन्तु कुछ आलोचकों का कहना है कि प्रेमचन्द की कृतियों में मनोविज्ञान का चित्रण नहीं मिलता। इसके विपरीत प्रेमचन्द का कहना है कि उनकी प्रत्येक कहानी का आधार मनोविज्ञान रहा है। प्रेमचन्द के मनोविज्ञान पर एक आक्षेप यह लगाया जाता है कि प्रेमचन्द सुधारवाद के मोह में पड़कर अपने पात्रों के चरित्रों में, अन्त में जाकर, ऐसा परिवर्तन कर देते हैं जो अस्वाभाविक प्रतीत होता है। पात्र अपनी सारी दुष्टता त्यागकर सज्जन बन जाते हैं। यह आक-

स्मिक परिवर्तन उचित नहीं प्रतीत होता। ऐसे आलोचक यदि प्रेमचन्द प्रत्येक चरित्र का प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अध्ययन करें तो उन्हें उस आकस्मिक परिवर्तन के बीज उसमें कहीं न कहीं अवश्य मिल जायेंगे। यही बीज किसी आकस्मिक घटना के कारण बाहर आ जाते हैं और परिवर्तन स्पष्ट हो उठता है। उनके चरित्रों में होने वाला यह परिवर्तन जादू की छड़ी के जोर से नहीं होता। घटनायें उसे प्रभावित करती रहती हैं। हम अपने दैनिक जीवन में ही यह देखते हैं कि कुछ व्यक्ति किसी आकस्मिक घटना से प्रभावित होकर एकाएक बदल जाते हैं। परन्तु इसमें ऐसी आकस्मिक घटनायें नहीं होती कि कालिदास जैसा बज्रमूर्ख पलक झपकते ही सरस्वती का वरद् पुत्र बन जाय। ऐसा होना असम्भव है। प्रेमचन्द ऐसी असम्भवताओं से सर्वत्र बचे रहे हैं। 'गोदान' में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता।

दूसरी बात यह है कि प्रेमचन्द ने फ्रायडवादियों (कुण्ठावादियों) को संतुष्ट करने वाले मनोविज्ञान का—जो व्यक्ति में केन्द्रित रहता है—न कर, उस मनोविज्ञान का चित्रण किया है जो समाजगत होता है। साथ ही उन्होंने उसे शाश्वत न मानकर परिवर्तनशील भी माना है। 'मनोविश्लेषण शास्त्र" को ही सम्पूर्ण मनोविज्ञान मानने वालों को अवश्य उनमें मनोवैज्ञानिक चित्र का अभाव दिखाई देगा। इसके लिए प्रेमचन्द को दोषी नहीं माना जा सकता। अस्तु,

चरित्र-चित्रण के कई प्रकार माने गये हैं। कहीं कोई उपन्यासकार पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं—सबलताओं एवं दुर्बलताओं—का स्वयं विश्लेषण करता हुआ चलता है। वह पात्र की मनोदशा को क्रमशः स्पष्ट करता रहता है। कुछ उपन्यासकार पात्र की चारित्रिक विशेषता के सम्बन्ध में स्वयं स्पष्ट रूप से कुछ न कह केवल संकेत देते चलते हैं। इन संकेतों, पात्रों के पारस्परिक वार्तालापों आदि से उस पात्र की मनोदशा, अन्तः चरित्र का क्रमशः स्वतः ही उद्घाटन होता रहता है। उपन्यासकार स्वयं कुछ नहीं कहता। ऐसा होने पर पाठक की उत्सुकता जाग्रत रहती है। इसे ही दूसरे शब्दों में आजकल मनो-वैज्ञानिक चित्रण कहा जाता है और इसी को अपनाने पर भी जोर दिया जाता

है। चरित्र-चित्रण के मुख्य भेद यही दो माने जाते हैं। इनमें से पहले प्रकार को विश्लेषणात्मक तथा दूसरे को अभिनयात्मक की संज्ञा दी गई है।

प्रेमचन्द ने 'गोदान' में विश्लेषणात्मक एवं अभिनयात्मक दोनों ही प्रणालियों को अपनाया है। सामान्यता आलोचक अभिनयात्मक प्रणाली से विश्लेषणात्मक प्रणाली को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। परन्तु इनकी श्रेष्ठता अथवा हीनता सदैव इस बात पर निर्भर करती है कि उपन्यासकार ने इन्हें किस कौशल के साथ निभाया है। उदाहरणार्थ 'गोदान' में विश्लेषणात्मक प्रणाली की ही प्रधानता है परन्तु क्या हम यह कह सकते हैं कि अभिनयात्मक प्रणाली को अपनाने वाले किसी अन्य उपन्यासकार ने हमें होरी और धनिया, मालती और मेहता, गोबर और झुनियाँ, मातादीन और सिलिया जैसे सुन्दर, यथार्थ, सजीव और संतुलित चरित्र दिए हैं ? फिर प्रेमचन्द द्वारा 'गोदान' में अपनाई गई विश्लेषणात्मक प्रणाली को हम महत्वपूर्ण कैसे मान सकते हैं ? प्रणाली चाहे कोई भी क्यों न हो परन्तु उसकी सफलता एवं असफलता लेखक के कौशल एवं रचना चातुर्य पर ही निर्भर करती है। घटना-प्रधान उपन्यासों के जन्मदाता देवकीनन्दन खत्री जब 'भूतनाथ' जैसे अमर एवं अद्वितीय पात्र का सृजन कर सकते हैं तो प्रेमचन्द विश्लेषणात्मक प्रणाली को अपनाकर होरी जैसे अमर पात्रों का सृजन क्यों नहीं कर सकते ?

'गोदान' में इस विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण के अनेक सजीव चित्र भरे पड़े हैं। होरी, धनिया, मालती मेहता आदि के संक्षिप्त से रेखाचित्र उनके चरित्र की विशेषताओं को बहुत कुछ स्पष्ट कर देते हैं। होरी भारतीय कृषकों का प्रतिनिधि है। भारतीय किसान में जो अच्छाइयाँ तथा बुराइयाँ होती हैं वह सब होरी में मिल जाती हैं। वह अनेक महाजनों का कर्जदार है परन्तु बेईमानी नहीं करना चाहता। समाज की, बिरादरी की ब्राह्मण की, जमींदार की सभी मान्यताओं की रक्षा करना चाहता है क्योंकि वह धर्म-भीरु है परन्तु दूसरी तरफ भोला को उसका विवाह कराने का झाँसा देता है, बाँस बेचते समय भाई के साथ पाँच रुपये की बेईमानी करता है, रुपयों के अभाव में एक अधेड़ से रुपये लेकर उसे अपनी लड़की रूपा ब्याह देता है। ऐसा व्यवहार भारतीय किसान के जीवन का अङ्ग बन चुका है। इसको प्रेमचन्द ने कितनी कुशलता

के साथ व्यक्त किया है यह देखने लायक है । होरी भोला को सगाई का लालच देता है और फिर प्रेमचन्द होरी का वास्तविक चित्र खींच कर रख देते हैं जिसे देखकर होरी के प्रति ग्लानि नहीं अपितु सहानुभूति उत्पन्न होती है । एक बेई-मान के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कराने की सफलता के मूल में प्रेमचन्द का वह गहरा अनुभव कार्य कर रहा था जिसके द्वारा उन्होंने होरी जैसे व्यक्तियों की मजबूरियों को देखा था ।

प्रेमचन्द उपन्यास के रूप में अपने युग का सजीव, भावुकतापूर्ण इतिहास लिख रहे थे । उन्हें प्रगतिशील एवं प्रतिक्रियावादी शक्तियों का चित्रण कर अपने निष्कर्ष निकालने थे । इसके लिए अभिनयात्मक प्रणाली से विश्लेषणा-त्मक प्रणाली ही अधिक उपर्युक्त प्रणाली थी । विश्लेषणात्मक प्रणाली में उन्होंने व्यंग और भावुकता दोनों का प्रयोग किया है । मालती की चरित्रगत निर्बलताओं का चित्रण करने के लिए वे उसकी रूपरेखा एवं वेशभूषा का संक्षिप्त वर्णन कर उसे 'नवयुग की प्रतिमा' घोषित कर देते हैं और फिर उसके चरित्र का क्रमशः विकास दिखाते हुए उसे निरन्तर ऊँचा उठाते चले जाते हैं जिसमें पूर्ण सहानुभूति रहती है, इसलिए उसमें भावुक स्थल भी आ गए हैं ।

दो सन्ततियों की परस्पर विरोधी विचारधारा, उनकी परस्पर विरोधी आस्थाओं एवं चरित्रगत विभिन्नताओं का चित्रण करने में प्रेमचन्द ने अभि-नयात्मक प्रणाली का भी प्रचुर रूप से उपयोग किया है । अभिनयात्मक प्रणाली में वार्तालाप की प्रधानता होती है । 'गोदान' के अधिकांश वार्तालाप सोद्देश्य हैं । होरी द्वारा रायसाहब के कष्टों का वर्णन करवा कर गोबर द्वारा रायसाहब की असलियत का पर्दाफाश करवाने में प्रेमचन्द ने एक रूढ़ियों के शिकन्जे में जकड़ी हुई कर्मवाद, पूर्वजन्म आदि को अमिट रेखा मानने वाली होरी की सन्तित तथा इन सब बातों के प्रति अनास्थापूर्ण दृष्टिकोण रखने वाली गोबर की नवीन सन्तति की परस्पर भिन्न विचार-धाराओं का चित्रण किया है । रायसाहब और मेहता का वार्तालाप भी रायसाहब के वर्ग की बखिया उधेड़ कर रख देता है । मालती और मेहता का वार्तालाप बुद्धिजीवियों के सामाजिक उत्तरदायित्व एवं प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालता है और साथ ही इन

वार्तालापों में सम्बन्धित पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का भी उद्घाटन होता चलता है।

चरित्र प्रधान उपन्यासों में प्राय: घटनाओं को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता। 'गोदान' को हम शुद्ध रूप से चरित्र प्रधान उपन्यास नहीं मान सकते यद्यपि पाठक का ध्यान जितना पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं के प्रति आकर्षित होता है उतना घटनाओं के प्रति नहीं। परन्तु प्रेमचन्द घटनाओं का उपयोग इतने अलक्षित रूप से करते हैं कि यदि उन्हें प्रस्तुत रूप में न प्रस्तुत किया जाता तो अनेक पात्रों की चरित्रगत विशेषतायें अधूरी ही रह जातीं। प्रेमचन्द साधारण घटनाओं द्वारा कहीं-कहीं बहुत बड़ा काम कर जाते हैं। धनुषयज्ञ के अवसर पर मेहता द्वारा पठान का रूप भरे जाने से उस नागरिक उच्चवर्ग की कलई खुल जाती है जो अपने को सभ्य, संस्कृत, नारी का सम्मान करने वाला, निर्भीक सम्पादक, मजदूरों को रोटी देने वाला आदि कहता है। उपरोक्त घटना स्पष्ट कर देती है कि चरित्र की दृष्टि से यह वर्ग कितना अकर्मण्य एवं संकट के समय कितना निरीह हो उठता है। गोबर और झुनियाँ की घटना गोबर के जीवन की धारा मोड़ देती है। हीरा द्वारा गाय को विष दिए जाने से होरी के ऊपर संकटों की काली घटायें छाने लगती हैं जो अन्त में उसके प्राण लेकर ही छोड़ती हैं। उपरोक्त घटनायें जहाँ कथा को विकसित करती रहती हैं वहीं सम्बन्धित पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन भी करती चलती हैं। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में अन्तर्द्वन्द्व का प्रचुर रूप से उपयोग किया है। होरी, गोबर, भोला, रायसाहब आदि के चरित्रों में अन्तर्द्वन्द्व रहता है। होरी, रायसाहब के यहाँ प्राय: जाता है। जब इस बात को लेकर गोबर उसकी आलोचना करता है तो होरी मन में उसे उचित समझता हुआ भी प्रकट नहीं होने देता और केवल इतना कहकर चुप रह जाता है कि—'सलामी करने न जायँ तो रहें कहाँ ? भगवान ने जब गुलाम बना दिया है तो अपना क्या बस है।" इन दो वाक्यों में किसान की दीन-हीन, निरीह अवस्था का पूर्ण चित्र स्पष्ट हो जाता है। होरी भाग्यवादी इसलिए बन गया है क्योंकि वह जानता है कि इसके अतिरिक्त प्रतिकार का कोई भी उपाय नहीं है।

गोबर झुनियाँ को गाँव तक पहुँचा कर जब भाग खड़ा होता है तो सोचता

है कि यदि माँ-बाप ने झुनियाँ को सताया तो वह देख लेगा परन्तु जब वह होरी और धनिया के द्वारा झुनियाँ को प्रेम से अपनाये जाता हुआ देखता है तो उसके विद्रोह के भाव दब जाते हैं और माँ-बाप को सोने से मढ़ देने के लिए तत्पर हो उठता है। गोबर किसान है परन्तु नगर में जाकर उसे मजदूरी करनी पड़ती है जो किसान के लिए अपमान की बात है। परन्तु गोबर यह कहकर मन को समझा लेता है कि—"मजूरी करना कोई पाप तो नहीं है।" 'गोदान' के विभिन्न पात्रों के जीवन में अन्तर्द्वन्द्व के अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब वे आगे बढ़ते हुए दिखाई पड़ते हैं।

रायसाहब के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा दिग्दर्शन होता है। रायसाहब जमींदार हैं। वे चाहते हैं कि अत्याचार न करें परन्तु परिस्थितियाँ उन्हें वर्ग की विषमताओं के बन्धनों में सदैव जकड़े रहती हैं। अपने सम्मान की रक्षा के लिए सुधारवादी रायसाहब खन्ना के यहाँ नाक रगड़ते हैं कि उन्हें कर्ज मिलना ही चाहिए। वे कर्ज लेकर चुनाव लड़ना चाहते हैं और इसके लिए कन्या के विवाह को भी टालने को उद्यत हो जाते हैं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'गोदान' के पात्रों को स्पष्टतः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१—ग्रामीण पात्र और २—नागरिक पात्र। ये दोनों ही वर्ग अपने-अपने वर्ग की पूर्ण विशेषताओं के साथ सामने आते हैं। उनकी अपनी समस्यायें हैं, उनको हल करने के अपने तरीके हैं। और प्रेमचन्द अलक्षित रूप से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ते हुए भी ऊपर से उन्हें पृथक ही रहने देते हैं। इन दोनों वर्गों के चित्रण में प्रेमचन्द अनेक ज्वलन्त समस्याओं को भी सामने ले आते हैं जैसे नारी की स्थिति, प्रेम, स्वशासन, चुनाव, पत्र-कारिता, बुद्धिजीवियों के कर्त्तव्य, वेश्या-सुधार आदि के चित्र देते हुए वे सम्पूर्ण समाज के चरित्र का उद्घाटन कर देते हैं। यही प्रेमचन्द के चरित्र-चित्रण की विशेषता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि प्रेमचन्द के पात्र आदर्शवादी हैं, या यथार्थ-वादी। प्रेमचन्द के पिछले उपन्यासों को लेकर उन्हें आदर्शोंमुख यथार्थवादी कहा जाता है। परन्तु 'गोदान' के कुछ पात्रों में जैसे महता आदि में आदर्शवाद की झलक अवश्य मिलती है परन्तु अन्य सभी पात्र यथार्थवादी ही रहते हैं।

आदर्शवादी विचारधारा 'गोदान' में सफल होती हुई नहीं दिखाई देती। रायसाहब की सुधार भावना, मिर्जा खुर्शेद द्वारा वारांगनाओं का उद्धार करने की योजना, मालती द्वारा स्त्रियों के लिए व्यायामशाला बनाने की योजना आदि सफल होती हुई दिखाई नहीं पड़तीं क्योंकि प्रेमचन्द का मन 'गोदान' तक आते-आते ऐसे खिलवाड़ों से ऊब उठा था। इसीलिए उन्होंने 'गोदान' में समाज के कटु यथार्थ को होरी जैसे चरित्रों की सहायता से उघाड़ कर रख दिया। जहाँ कहीं प्रेमचन्द का मन आदर्शवाद की ओर लपका है वहीं उनके सजग कलाकार ने उसे मार्ग में ही रोक लिया है। अपने इसी यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण ही 'गोदान' भारतीय किसान जीवन का महाकाव्य कहलाने का अधिकारी बन सका है।

प्रश्न ९—"होरी का चरित्र भारतीय किसान का वास्तविक चरित्र है।" उपर्युक्त कथन को ध्यान में रखकर होरी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—होरी प्रेमचन्द द्वारा निर्मित अमर पात्रों में सर्वोच्च पद का अधिकारी है, इस विषय में लगभग सभी आलोचक एकमत हैं। कुछ उसे भारतीय कृषकों का प्रतिनिधि चरित्र मानते हैं तथा कुछ का कहना है कि प्रेमचन्द ने होरी को निजी आत्मीय स्वरूप में उपस्थित किया है। होरी को भारतीय कृषक जीवन का प्रतिनिधि इस रूप में माना जा सकता है कि भारत के लगभग सभी किसानों को उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ा है जो होरी के जीवन को निरन्तर संघर्षमय बनाये रही हैं और उनका अन्त भी वैसा ही हुआ है जैसा कि हमारे यहाँ के साधारण किसान का होता चला आया है। परन्तु यह कहना पूर्ण रूप से संगत प्रतीत नहीं होता कि होरी के रूप में प्रेमचन्द ने स्वयं अपना चित्रण किया है। यहाँ तक जीवन-व्यापी संघर्ष का प्रश्न है वहाँ तक तो उपरोक्त कथन संगत है परन्तु जब हम गहराई से देखते हैं तो होरी में निर्माण की उस कुशल कल्पना एवं शक्ति का अभाव मिलता है जो कलाकार प्रेमचन्द की अपनी विशेषता है। डाक्टर रामविलास शर्मा का मत है कि—"गोदान के किसी एक पात्र को प्रेमचन्द का प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता, लेकिन अगर

मेहता से होरी को जोड़ा जा सके तो जो व्यक्ति बनेगा वह बहुत कुछ प्रेमचन्द से मिलता जुलता होगा। मेहता में यदि उन्होंने अपने विचार डाले हैं तो होरी में बराबर परिश्रम करते रहने की दृढ़ शक्ति। लेकिन और बातों में होरी प्रेम-चन्द से बहुत भिन्न है।" अतः हम होरी को प्रेमचन्द का प्रतिनिधि पात्र नहीं मान सकते।

होरी पाँच बीघे खेत का मालिक भारत का एक साधारण किसान है। उसका बड़ा परिवार है। थोड़ी सी आय और बड़ा परिवार—यह भारतीय किसान की जीवन व्यापी समस्या रही है। इस विषमता का परिणाम यह होता है कि हमारा किसान जी-तोड़ मेंहनत करते रहने पर भी दो जून भरपेट भोजन नहीं प्राप्त कर पाता और कि आय से अधिक होने वाले व्यय की पूर्ति के लिए उसे कर्ज का सहारा लेना पड़ता है और वह जब एक बार कर्ज की इन प्राणान्तक कष्ट देने वाली भूल-भूलैयों में फँस जाता है तो अन्त में दीवालों से टकरा-टकरा कर उसका वहीं अन्त हो जाता है, वह उनसे बाहर नहीं निकल पाता। होरी की सम्पूर्ण जीवन-गाथा कर्ज की इन्हीं प्राणघातक भूल-भुलैयों की सीमित परिधि में ही सिमट कर समाप्त हो जाती है।

होरी रायसाहब जैसे-धूर्त जमींदार का एक साधारण सा किसान है। अन्य किसानों के समान वह भी परिश्रम करता है, कर्ज कर लेता है, भाग्यवादी है, थोथी मर्यादा को बचाये रखना चाहता है। निहायत ईमानदार और साथ ही बेईमान हैं, दीन दुखियों को उसके यहाँ आश्रय मिलता है, अपनी गाय को जहर देने वाले भाई हीरा के भाग जाने पर उसके सम्मान को अपना सम्मान-समझकर उसके घर की रक्षा करता है, जीवन में कभी दूध-घी मयस्सर न होने पर भी निर्भीकता-पूर्वक मेहता जैसे शक्तिशाली पुरुष को पछाड़ देता है, गाय झपटने के लिए भोला को झाँसा देता है, आदि किसान जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करता हुआ वह हमारे सम्मुख आता है। उसके जीवन में अच्छाइयों और बुराइयों का स्वाभाविक सम्मिश्रण है। उसमें दानवीय अवगुण भी हैं और दैवी सद्गुण भी। एक शब्द में वह पूर्ण मानव है परन्तु तथाकथित महामानव नहीं। उसके जीवन की एक ही विशेषता है कि वह जीवन-पर्यन्त परिश्रम से मुँह नहीं मोड़ता। अपने पाँच बीघे खेत की रक्षा करने में वह

अपने प्राणों की बाजी लगा देता है परन्तु अपनी जायदाद को हाथ से नहीं निकलने देता। इसी कारण गोदान उसके "भागीरथ परिश्रम की गाथा" तथा "किसान जीवन का महाकाव्य" माना जाता है।

होरी **एक अत्यन्त साधारण सीधा सादा** किसान है। उसका स्वभाव भोला और सीधा-सादा है। छल-छन्दों से दूर रहता है। उसकी कथनी और करनी में प्रायः एकता रहती है परन्तु समय पड़ने पर वह अपने स्वल्प स्वार्थ लाभ के लिए झूँठ बोल लेना भी पाप नहीं समझता। मानव-मात्र के प्रति उसके हृदय में ममत्त्व और सहानुभूति है, गिरे हुए पर वह कभी ठोकर नहीं लगाता। हीरा के भाग जाने पर उसके घर की रक्षा करता है, गोबर और झुनियाँ के कारण उसे भयङ्कर कष्ट झेलने पड़ते हैं। परन्तु वह झुनियाँ से कभी कड़ी बात तक नहीं कहता।

उसका जीवन और उसकी दृष्टि सीमित है। अपने घर, कुनवे और गांव से बाहर उसकी दृष्टि नहीं जा पाती। इस सीमित क्षेत्र में परिश्रम करते हुए वह स्वार्थी बन गया है परन्तु ऐसा स्वार्थी नहीं जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का गला काट डाले। उसके स्वार्थ की परिधि भी सीमित रहती है। वह भोला का विवाह करा देने की बात कहकर उससे गाय झटक लेता है परन्तु उसके मन में बेईमानी नहीं है। समय आने पर वह उसकी कीमत चुका देने की बात सोचता है। बाँस बेचने में भाई के साथ पाँच रुपयों की बेईमानी करता है परन्तु इस कृत्य से भी उसे ग्लानि होती है। रूपा के विवाह के बदले में वह दो सौ रुपये वर-पक्ष से लेता है परन्तु उसे ऋण समझ कर ही लेता है और उसे लेते समय उसे अत्यन्त मानसिक वेदना सहन करनी पड़ती है। उसकी आत्मा हाहाकार कर उठती है परन्तु और कोई उपाय भी तो नहीं था। मानव तब तक पाप को करते समय इस बात के प्रति सचेत रहता है कि वह सचमुच पाप कर रहा है तो भविष्य में उसके उद्धार की आशा बनी रहती है। होरी की आर्थिक समस्या यदि विषम न होती तो वह उक्त निन्दनीय कार्य कभी भी नहीं करता, इसमें सन्देह नहीं।

होरी **व्यवहार कुशल है**। वह सहानुभूति तथा प्रशंसा के महत्त्व को

पहचानता है और समय-समय पर उनका प्रयोग कर अपना काम निकाल लेता है। वह रायसाहब के यहाँ प्रायः इसीलिए हाजिरी देने जाता रहता है क्योंकि उसी के शब्दों में—"यह मिलने-जुलने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है। नहीं, कहीं पता न लगता कि किधर गए। गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई। जब दूसरों के पाँवों तले अपनी गर्दन दबी है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।" सहानुभूति दिखलाकर वह भोला से गाय प्राप्त कर लेता है। गाय मिलने से पूर्व वह भोला को भूसा देने का भी वायदा कर लेता है परन्तु धनिया के बिगड़ने पर यह कहकर उसे शान्त कर देता है कि भोला धनिया की बहुत प्रशंसा कर रहा था। धनिया अपनी प्रशंसा सुनकर भोला को मनचाहा भूसा देने के लिए तयार हो जाती है। दुलारी सहुयाइन से ठिठोली कर वह उसका हृदय कोमल बना देता है और उससे कर्ज प्राप्त कर लेने का वायदा करा लेता है। इसी प्रकार नोहरी की आवभगत एवं प्रशंसा कर वह उससे सोना के विवाह के लिये रुपये ले लेता है। होरी की यह व्यवहार-कुशलता उसके जीवन को क्षण भर के लिए झंझटों से उबार लेती है।

होरी एक साधारण हिन्दू गृहस्थ है। अपने दरवाजे पर एक सुन्दर सी गाय बँधी देखने की उसकी साध जीवन की सबसे बड़ी साध बन गई है। गाय प्राप्त करने के लिए वह भोला को झाँसा देता है। परन्तु यह गाय उसके सर्वनाश का कारण बन जाती है। गोबर और झुनियाँ का प्रसंग इसी के कारण उठता है, और फिर तो यह गाय उसके जीवन को सदैव के लिए संकट में डाल कर मर जाती है। और होरी का अन्त भी गोबर के बच्चे के लिए गाय प्राप्त करने के प्रयत्न में जी-तोड़ मेहनत करते हुए ही होता है परन्तु फिर भी उसे 'गोदान' का पुण्य नहीं मिल पाता। उसके भाग्य की यही विडम्बना रही है।

होरी परिवार की मर्यादा का रक्षक है। उसका परिवार बड़ा है। सबका मर्यादा की रक्षा करना वह अपना कर्त्तव्य समझता है। उसके भाई उससे अलग हो जाते हैं और उससे द्वेष रखने लगते हैं–परन्तु दमड़ी बंसोड़ और हीरा की स्त्री पुनिया के झगड़े में वह दमड़ी बंसोड़ को लात जमाता है—उसी

दमड़ी के जिससे उसने पाँच रुपये की बेईमानी करने के लिए कहा था। हीरा होरी की गाय को जहर देकर भाग जाता है। दारोगा जब हीरा के घर की तलाशी लेने की बात कहता है तो होरी इसे अपना अपमान समझता है और रिश्वत देकर इस संकट को टाल देना चाहता है। उसे अपने वंश की मर्यादा धनिया से भी अधिक प्रिय है। धनिया जब विरोध करती है तो वह उससे भी सम्बन्ध तोड़ने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। वह सोचता है—"धनिया से अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, जहाँ चाहे जाय। जब वह इज्जत बिगाड़ने पर आ गई है तो इस घर में कैसे रह सकती है।" वह हीरा की अनाथ पत्नी पुनिया की रक्षा करता है। अपनी हानि कर उसकी खेती-बाड़ी सम्हालता है। बदले में उसे केवल बदनामी मिलती है कि वह पुनिया को लूटे ले रहा है!

पैतृक सम्पत्ति का रक्षक है। होरी जायदाद वाला है। जायदाद को जीवन का सर्वस्व और आधार मानता है। जीवन से संघर्ष करता हुआ वह अपनी जायदाद की—जो केवल पांच बीघा खेत है—अन्त तक रक्षा करने का प्रयत्न करता रहता है। इस खेती से उसका गुजारा नहीं होता मगर वह मजूरी करना अपमान समझता है। उसका कहना है कि—"खेती में जो मरजाद है वह नौकरी में तो नहीं है।" मर्यादा की यही भावना उसे निरन्तर संकटों में उलझाती चली जाती है।

वह बिरादरी को मान्यता देता है। जायदाद की मर्यादा, परिवार की मर्यादा आदि के उपरान्त वह बिरादरी की मर्यादा को भी निभाना चाहता है। बिरादरी का सबसे कठोर दण्ड किसी का हुक्का पानी बन्द कर देना होता है। झुनियाँ के कारण होरी को भी यही दण्ड मिलता है। दण्ड को सहने की उसमें शक्ति नहीं है। तीस मन अनाज और सौ रुपया देने पर ही उसका हुक्का पानी खुल सकता है। होरी जैसा व्यक्ति इतना कहाँ से दे। परन्तु मर्यादा-प्रिय होरी अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर हुक्का-पानी खुलवा लेता है और स्वयं भूखों मरने लगता है। मर्यादा-पालन के इस मोह में प्राचीन काल से चले आते हुए संस्कारों का प्रभाव है, जिसका उल्लंघन करना उसके बस से बाहर की बात है। वह जानता है कि इन मर्यादाओं का पालन करने वाले ही समाज में इज्जत

पाते हैं और इज्जत पाने की लालसा होरी के मन भी है। परन्तु मर्यादा-रक्षा के प्रयत्न उसे बराबर इतनी ठोकरें लगाते रहते हैं कि अन्त में इस पर से उसका विश्वास हट जाता है। ध्यानसिंह ठाकुर के यहाँ कथा की आरती लेने जाने के समय उसका हाथ खाली है। बिना कुछ चढ़ाये आरती कैसे ले? परन्तु विचार करते-करते वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है—"क्यों मर्यादा की गुलामी करे। मर्यादा के पीछे आरती का पुण्य क्यों छोड़े? लोग हँसेंगे, हँस लें उसे परवा नहीं, भगवान् उसे कुकर्म से बचाये रखें, और वह कुछ नहीं चाहता।" काश कि होरी में यह सद्बुद्धि पहले ही उत्पन्न हो जाती तो उसे इतनी ठोकरें न खानी पड़ती परन्तु दुनियाँ में ठोकरें खाने के बाद ही तो हमारी आँखें खुलती हैं।

धार्मिक विश्वास में पूर्ण आस्थावान है। भारत का साधारण अपढ़ व्यक्ति होने के कारण वह समाज के कर्णधारों द्वारा प्रचारित धार्मिक विश्वासों में पूर्ण आस्था रखता है। भाग्यवाद और कर्मवाद में उसका अमिट विश्वास है। उसे दरिद्रता का अभिशाप पूर्व जन्म के किसी कर्म के कारण झेलना पड़ रहा है। ब्राह्मण उसके लिए पूज्य है चाहे वह ब्राह्मण दातादीन जैसा गुण्डा क्यों न हो। बूढ़े सूखे की विपदायें उसके मन को भीरु बनाये रहती हैं और ईश्वर के रुद्र रूप से वह सदैव आशंकित रहता है। बिना लिखा-पढ़ी किए हुए उधार लिए रुपयों को चुकाना वह अपना धर्म समझता है चाहे उसे तीस के दो सौ ही क्यों न देने पड़ें। अगर उसने ब्राह्मण की एक पाई भी दबा ली तो वह उसकी हड्डी तोड़ कर निकलेगी। ब्राह्मण के कोप से उसका वंश नाश हो जायेगा। इसीलिए वह दातादीन की पाई पाई चुकाने की प्रतिज्ञा करता है। होरी प्राचीन परम्परा और विश्वास को धर्म का सच्चा स्वरूप समझता है। कर्मवाद की वह प्रायः दुहाई देता रहता है। वह इसे भगवान की लीला समझ कर उसकी आलोचना करने से घबड़ाता है। वह एक स्थान पर गोबर से कहता है—

"यह बात नहीं है, बेटा, छोटे बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किए थे, उसका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ संचा नहीं तो भोगें क्या?"

होरी ईमानदार है। उसके कर्ज की लिखा पढ़ी हुई है अथवा नहीं, इस बात का होरी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह दातादीन की पाई-पाई चुकाना चाहता है, गाय के बदले में भोला को अपने बैल खोल लेने देता है, रूपा के विवाह में लिए गए दो सौ की रकम को कर्ज मानकर स्वीकार करता है, बिरादरी के हुक्म को सिर आँखों पर चढ़ाकर खलिहान से ही सारा अनाज ढो ढोकर पंचों के यहाँ पहुँचा देता है और धनिया के विरोध करने पर कि बच्चे क्या खायेंगे, उसे डाट देता है। उसने जिस किसी से भी लिया है उसे अपनी शक्ति भर चुका देने की भावना सदैव उसके मन में रहती है। इतना ईमानदार होते हुए भी उसका सारा जीवन उधेड़बुन में बीतता जाता है कि परिवार के छकड़े को चलाने के लिए वह कैसे नया कर्ज ले सके और अन्त में इसी कर्ज के पंखे में छटपटाता हुआ वह दम तोड़ देता है।

वह मानवता प्रेमी है। होरी का सबसे बड़ा गुण उसकी मानवता है। भयकंर संकटों का सामना करता हुआ भी वह मानव-मात्र के प्रति अपनी सहृदयता एवं सहानुभूति को नहीं छोड़ पाता। उसके भाई उसका विरोध करते हैं परन्तु वह सदैव उनकी सहायता करने के लिए उद्यत रहता है। उनके व्यवहार से उसे दुख होता है परन्तु बदले में वह दोषी नहीं बन पाता। हीरा के भाग जाने पर वह उसके घरबार को सम्हालता है। शोभा के बीमार होने पर वह उसकी सहायता करने का प्रयत्न करता है। वह प्रत्येक संकटग्रस्त प्राणी की सहायता एवं रक्षा करने में अपने भले-बुरे की चिन्ता नहीं करता। राय-साहब उसके मालिक हैं। पठान वेशी मेहता को उन पर वन्दूक ताने खड़ा-देखकर पुलिस के भय से थरथर काँपने वाला होरी अपने प्राणों की बाजी लगा-कर उनसे भिड़ जाता है और सबकी रक्षा कर लेता है। झुनियाँ जब उसके घर आती है तो उसे भी आश्रय देता है। झुनियाँ के कारण उसे अनेक संकट झेलने पड़ते हैं। परन्तु वह किसी भी दशा में उसे घर में से निकाल बाहर करने के लिए प्रस्तुत नहीं होता क्योंकि झुनियाँ गर्भवती है और साथ ही उसके बेटे ने उसकी बाँह पकड़ी है। इस अवसर पर वह बिरादरी की भी चिन्ता नहीं करता। बिरादरी के डर से वह हत्यारा नहीं बन सकता। झुनियाँ की तो उसके बेटे ने बाँह पकड़ी थी परन्तु सिलिया से उसका क्या सम्बन्ध

था ? परन्तु जब सिलिया चारों ओर से निराश्रित हो जाती है तो उसे होरी के घर में ही शरण मिलती है। दातादीन का यह रोयाँ भी नहीं दुखाना चाहता। शोषण की चक्की में निरन्तर पिसता हुआ भी वह अपनी मानवता को नहीं छोड़ता। सब उसका अनैतिकता से शोषण करते हैं और भूख एवं अत्यधिक निर्धनता से तंग आकर कभी-कभी उसे अनैतिक बनाने के लिये भी मजबूर करते हैं किन्तु उसकी मानवता सदैव विरोधी कर्मों का विरोध करती रहती है। विषम परिस्थितियों के जाल में वह निरन्तर फँसा चला जाता है और अन्त में वह इस जाल में फँसकर अपने प्राण भी गँवा देता है लेकिन फिर भी वह मानवता से डिग नहीं पाता। इसीलिये होरी परिस्थितियों से हार कर भी, मृत्यु को प्राप्त करके भी अजेय बना रहता है। मानवता के गुणों से विभूषित होने पर ही होरी एक अमर पात्र बन गया है।

आर्थिक अभावों से ग्रस्त है। होरी का सम्पूर्ण जीवन आर्थिक अभाव की एक करुण कहानी है। अन्तिम समय तक परिश्रम करता है परन्तु उसके जीवन की कोई भी साध पूरी नहीं हो पाती। उसके अपने तन पर फटे कपड़े हैं, बच्चे नंगे-उघाड़े फिरते रहते हैं, दूध घी की तो कौन कहे उन्हें भरपेट अनाज भी खाने को नहीं मिलता। समाज का सम्पूर्ण शोषण चक्र उसे सदैव मुँह बाये निगल जाने के लिए खड़ा रहता है। होरी सबकी चोट सहता है, विनती चिरौरी कर काम निकलता है। गालियाँ, घुड़की आदि सहने का वह आदि हो चुका है- किसान से मजदूर बन जाता है परन्तु जीवन-क्षेत्र के इस अप्रतिम योद्धा को हम कभी भी निष्क्रिय अथवा हताश होते हुए नहीं देखते। वह निरन्तर परिस्थितियों से जूझता हुआ उन पर काबू पाने का प्रयत्न करता रहता है। अपने पाँच बीघे खेत की रक्षा करने में वह अपनी जान लड़ा देता है क्योंकि ये ही खेत उसकी मर्यादा के रक्षक हैं। परन्तु जब उन खेतों पर भी बेदखली की नौबत आ जाती है तो होरी की आँखों तले अँधेरा छा जाता है और इस सँकट से निस्तार पाने के लिए उसे एक-ऐसा कुकर्म करना पड़ता है जिससे उसकी आत्मा टूट जाती है। वह रूपा के विवाह के बदले में दो सौ रुपया लेता है और वह भी कर्ज समझकर। परन्तु उसकी अन्तरात्मा तड़प उठती है। आज वह अपने को हारा हुआ समझता है। प्रेमचन्द के शब्दों में—

"आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के वाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानों उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है।"

इस घटना से होरी को प्राणान्तक वेदना होती है परन्तु वह हिम्मत नहीं हारता। यह भयानक चोट भी उसे जीवन-संघर्ष से विरक्त नहीं कर पाती। वह नवीन उत्साह के साथ पुनः रणक्षेत्र में उतर आता है। उसे चिन्ता है कि किसी तरह इस कलंक से उद्धार पा सके। और इसके लिए वह लू से तपती हुई दोपहरी में कंकड़ खोदने का काम शुरू कर देता है। वह अपनी शक्ति से बाहर परिश्रम करने लगता है जो उसके प्राण लेकर समाप्त होता है। उसके जीवन का यह नवीन अध्याय उसे इतना अवकाश नहीं देता कि वह अपनी अन्तरात्मा की उस वेदना को दूर कर सके। एक दिन उसे लू लग जाती है। वह मरणासन्न है। प्रेमचन्द उसकी मानसिक दशा का चित्रण करते हैं—
"जीवन के सारे संकट, सारी निराशायें मायों उसके चरणों पर लोट रहीं थीं। कौन कहता है, जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं। इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय-पताकायें हैं।"

प्रश्न १०—मेहता का चरित्र चित्रण कीजिये।

या

सिद्ध कीजिये कि मेहता बौद्धिक और आदर्शवादी होते हुए भी कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होने वाले कर्मठ व्यक्ति भी हैं।

उत्तर— **शिक्षित एवं बौद्धिक व्यक्ति**—मेहता हमारे बुद्धिजीवी वर्ग के उस अंश का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसके हृदय में दीन दलित जनता के प्रति सच्ची सहानुभूति है, मानवता है और व्यक्तियों को परखने की सच्ची दृष्टि और परख कर अपना मत स्पष्ट रूप से व्यक्त कर देने का नैतिक साहस। मेहता "गोदान" के पात्रों में सबसे अधिक सुलझे हुए, शिक्षित और सौम्य व्यक्तित्व वाले हैं। वे दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर हैं परन्तु उन्होंने दर्शन शास्त्र के अध्ययन के साथ-साथ अपने भौतिक अस्तित्त्व की रक्षा का भी पूरा प्रयत्न किया है।

हमारे अधिकांश फिलॉसफर दुबले-पतले, संसार से उदासीन, किसी कल्पना लोक में खोये-खोये से रहने वाले तथा सांसारिक व्यवहार में निरे बुद्धू रहते हैं। मेहता में फिलासफरों का एक ही गुण आ पाया है और वह है—सांसारिक व्यवहार में उनकी असफलता। उन्हें एक हजार रुपया वेतन मिलता है परन्तु सबका सब न जाने कैसे उड़ जाता है। वे नये कपड़े नहीं सिलवा पाते, मकान का किराया नहीं दे पाते। सच्चे महान् पुरुषों का यह अवगुण सदैव उनका गुण माना जाकर ही प्रशंसित हुआ है।

मेहता बुद्धिजीवी वर्ग के एक ऐसे सदस्य हैं जिन्हें जनता से प्रेम तथा शोषकों से घृणा है। दोनों ही समाजों में उनका सम्मान और आदर है। राय-साहब, खन्ना आदि उच्चवर्गीय व्यक्तियों से उनकी घनिष्टता है तथा मजदूरों और किसानों में भी वे पर्याप्त लोकप्रिय हैं। मेहता के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे निर्भीक आलोचक हैं और साथ ही मानव-चरित्र के सफल पारखी भी। उनका आकर्षक व्यक्तित्व उन्हें और भी अधिक लोकप्रिय बनाता है। "गोरा चिट्टा रंग, स्वास्थ्य की लालिमा गालों पर चमकती हुई, नीची अचकन, चूड़ीदार पाजामा, सुनहली ऐनक। सौम्यता के देवता से लगते हैं।" उनका यह वस्त्रालंकृत व्यक्तित्व जितना आकर्षक है उतना ही उनका निर्वस्त्र व्यक्तित्व भी। शिकार के समय जब वह उस काली जंगली लड़की के यहाँ नंगे बदन पानी के मटके भर कर लाते हैं, उस समय उनका स्वास्थ्य दर्शनीय प्रतीत होता है। प्रेमचन्द के शब्दों में—"दर्शन के गहरे अध्ययन में भी उन्होंने अपने स्वास्थ्य की रक्षा की थी और मटके लेकर चलते हुए उनकी माँसल भुजायें, चौड़ी छाती और मछलीदार जाँघें किसी यूनानी प्रतिमा के सुगठित अंगों की भाँति उनके पुरुषार्थ का परिचय दे रहीं थीं।" ऐसे सशक्त व्यक्तित्व वाले मेहता एक निर्भीक और खरे आलोचक हैं और अपनी इस निर्भीकता के कारण ही वे लोकप्रिय हैं।

परिश्रमी—मेहता कुंवारे हैं। उन्होंने दर्शनशास्त्र के अध्ययन में निमग्न रहते हुए कभी अपनी व्यक्तिगत सुविधाओं एवं असुविधाओं की ओर ध्यान ही नहीं दे पाया। वे अथक परिश्रमी हैं और समय के दुरुपयोग को पाप समझते हैं। उन्हें काम करने का नशा है। उपन्यासकार के शब्दों में वे—"आधी रात

को सोते थे और घड़ी रात रहे उठ जाते थे। कैसा भी काम हो, उसके लिए वे कहीं न कहीं से समय निकाल लेते थे। हाकी खेलना हो या यूनीवर्सिटी डिबेट, ग्राम्य-संगठन हो या किसी शादी का नैवेद्य, सभी कामों के लिए उनके पास लगन थी और समय था।" ऐसे व्यस्त रहने वाले मेहता कबड्डी खेलते हैं, पठान का रूप धरते हैं, स्त्रियों की सभा में भाषण देते हैं, मजदूर आन्दोलन में भाग लेते हैं, किसानों की सहायता करते हैं, शिकार खेलते हैं, रात-रात भर अध्ययन करते हैं, बागवानी का शौक रखते हैं, पढ़ाते हैं, अनेक विद्यार्थी उन्हीं के पैसों से शिक्षा पाते हैं, प्रेम करते हैं परन्तु उनके पास इतना समय और धन नहीं रहता कि कभी अपनी तरफ, अपने कपड़े-लत्तों की तरफ या अपनी अन्य सुविधाओं की तरफ ध्यान दे सकें। संक्षेप में अपने में वह सीमित न रहकर समाज के कल्याण के लिए जीवित रहने वाले व्यक्तियों में हैं।

दृढ़ चरित्र—उनका व्यक्तित्व दृढ़ चरित्र का प्रतीक है वे अनीश्वरवादी एवं जड़वादी होते हुए भी सेवा-धर्म में विश्वास रखते हैं। इसी कारण 'गोदान' के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पात्र उनके व्यक्तित्व से प्रभावित रहते हैं। उनके संसर्ग में आकर मालती का जीवन बदल जाता है, गोविन्दी और खन्ना में सम-झौता हो जाता है, सम्पादक औंकारनाथ एवं रायसाहब अपनी असलियत को छिपा नहीं पाते।

मेहता **कथनी और करनी की एकरूपता के प्रबल समर्थक हैं**। इनमें अन्तर रखने वालों को वे धूर्त और मक्कार समझते हैं। सिद्धान्त और कर्म का पालन न करने वाले व्यक्ति उनकी आलोचना के शिकार बनते हैं मेहता रायसाहब से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—"मैं चाहता हूँ हमारा जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल हो। आप कृषकों के शुभेच्छु हैं, उन्हें तरह-तरह की रियायतें देना चाहते हैं, जमींदारों के अधिकार छीन लेना चाहते हैं, बल्कि उन्हें आप समाज का शाप कहते हैं; फिर भी आप जमींदार हैं, वैसे ही जमीदार जैसे हजारों और जमींदार हैं।" मेहता समाज से छिपकर किसी भी कार्य को करना धूर्तता और कायरता मानते हैं। उनका कहना है—"अगर माँस खाना अच्छा समझते हो तो खुलकर खाओ। बुरा समझते हो तो मत खाओ। यह तो मेरी समझ में आता है, लेकिन अच्छा समझना और छिपाकर खाना, यह मेरी समझ में

नहीं आता। मैं इसे कायरता भी कहता हूँ और धूर्तता भी, जो वास्तव में एक हैं।" अर्थात् हमें वही काम करना चाहिए जिसमें हमारा पूर्ण विश्वास हो और उसे खुल कर करना चाहिए।

मालती मेहता के उपरोक्त गुणों से परिचित है। वह जानती है कि मेहता जैसे व्यक्तियों को जनसेवा के क्रियात्मक क्षेत्र में उतरना चाहिए और ऐसा होने पर ही जनता का वास्तविक कल्याण हो सकेगा। वह इसीलिए मेहता से आग्रह करती हुई कहती है—संसार में अन्याय की, आतङ्क की, भय की दुहाई मची हुई है। अन्ध-विश्वास का, कपट-धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त्त पुकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे, तो सुनने वाले कहाँ से आयेंगे। और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान बन्द नहीं कर सकते।" मालती के द्वारा प्रेमचन्द बुद्धिजीवी वर्ग को अन्याय और अत्याचार से पीड़ित जनता का उद्धार करने के लिए आह्वान कर रहे हैं।

धन के पीछे पागल नहीं हैं—मेहता धन को अधिक महत्त्व नहीं देते। वे धन को जीवन-निर्वाह करने का साधन-मात्र समझते हैं। इसलिए उनका यह विश्वास है कि सामाजिक विषमता का केवल धन के समान वितरण से ही हल नहीं किया जा सकता। समाज में असमानता का रहना स्वाभाविक है। संसार के बड़े-बड़े दार्शनिक समाज की समता के समर्थक रहे परन्तु उन्हें अन्त में असफल होना पड़ा। मेहता का तर्क है "धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं; लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, रूप को, प्रतिभा को, और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से ही नहीं होता। मैंने धन-कुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है, और आपने भी देखा होगा। रूप की चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नहीं है? आप रूस की मिसाल देंगे। वहाँ इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राज-कर्मचारी का रूप ले लिया है। बुद्धि तब भी राज करती थी, अब भी करती है और हमेशा करेगी।"

जिन्दा-दिल—मेहता कुँवारे है। पुरुषों के समाज में खूब चहकते हैं

परन्तु स्त्रियों के सामने आते ही उनकी जवान बन्द हो जाती है। "नवयुग की रमणियों से पनाह माँगते थे। परन्तु छेड़े जाने पर खूब बोलते थे। वे विवाह के विरोधी हैं और उनका मत है कि—"मुक्त भोग आत्मा के विकास में बाधक नहीं होता। विवाह तो आत्मा को और जीवन को पिंजरे में बन्द कर देता है।" विवाह को वे सामाजिक समझौता मानते हैं। आपका कहना है—"विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है, न स्त्री को। समझौता करने के पहिले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।" और इसी कारण मेहता तलाक के विरोधी हैं। जब उनसे यह पूछा जाता है कि वे विवाहित जीवन को श्रेष्ठ मानते हैं या अविवाहित जीवन को तो वे स्पष्ट उत्तर देते हैं—"समाज की दृष्टि से विवाहित जीवन को, व्यक्ति की दृष्टि से अविवाहित जीवन को।" मेहता के उपरोक्त वक्तव्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि मेहता समाज और व्यक्ति दोनों को ही समान महत्त्व देते हैं। वे इस बात के विरोधी हैं कि समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान कर दिया जाय। वे दोनों की स्वतन्त्र सत्ता मानते हुए भी उन्हें अन्योन्याश्रित समझते हैं। सिद्धान्त और कर्म में विश्वास रखने वाला व्यक्ति कभी भी समाज के लिए अनिष्टकारी नहीं हो सकता क्योंकि उसका निर्माण समाज में ही होता है इसलिए वह सदैव समाज के प्रति सच्चा और एकनिष्ट रहता है।

नारी-जाति के प्रति श्रद्धालु—मेहता के नारी-विषयक विचार बड़े ऊँचे आदर्शों के पोषक हैं। वे स्त्रियों में समानाधिकार की भावना को यूरोप की कलुषित देन सिद्ध कर भारतीय नारियों के लिए क्षमा, दया और त्याग को आदर्श बताते हैं। उनके अनुसार नारी को विलासिनी न होकर गृह-स्वामिनी बनना चाहिए। वे नारी का सम्मान करते हैं और उसके मतृत्व की इज्जत करते हैं। नारी का तितली होना उन्हें पसन्द नहीं। मालती तितली है, इसी कारण मेहता प्रारम्भ में उसे अपने पास नहीं आने देते। परन्तु उनके सम्पर्क में आकर जब मालती के अवगुण दूर हो जाते हैं और वह सेवा और दया की देवी बन जाती है तब मेहता उसके प्रति आकर्षित हो उठते हैं। वे स्त्री की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए कहते हैं—'मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग

और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इन आदर्शों को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूँ, उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।"

मेहता को खन्ना पत्नी गोविन्दी में नारी के उपरोक्त सभी गुण मिल जाते हैं, इसी कारण वे उसके प्रति श्रद्धालु हैं। उनकी दृष्टि में गोविन्दी—"विलास को तुच्छ समझती है, जो उपेक्षा और अनादर सह कर भी अपने कर्त्तव्यों से विचलित नहीं होती, जो मातृत्व की वेदी पर अपने को बलिदान करती है, जिसके लिए त्याग ही सबसे बड़ा है, अधिकार है, और जो इस योग्य है कि उसकी प्रतिमा बनाकर पूजी जाय।" नारी का रूप सौन्दर्य मेहता को आकर्षित नहीं कर पाता। वे उसके कर्म सौन्दर्य पर ही मुग्ध होते हैं। वह काली जंगली लड़की अपने कर्म सौन्दर्य द्वारा ही मेहता को आकर्षित कर पाती है। वे मालती से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—"मेरे लिए रंग-रूप, हाव-भाव और नाजोअन्दाज का मूल्य उतना ही है जितना होना चाहिए। मैं वह भोजन चाहता हूँ जिससे आत्मा की तृप्ति हो; उत्तेजक और शोषक पदार्थों की मुझे जरूरत नहीं।" नारी विषयक उनका आदर्श उच्च है। वे उससे सभी प्रकार के त्याग की आशा करते हैं परन्तु स्वयं पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्ण भी रखना चाहते हैं। वे मिर्जा खुर्शेद से कहते हैं—'मैं आपसे किन शब्दों में कहूँ कि स्त्री मेरी नजरों में क्या है, संसार में जो कुछ सुन्दर है उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ। मैं उससे यह आशा रखा हूँ कि मैं उसे मार भी डालूँ तो प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आए, अगर मैं उसकी आँखों के सामने किसी स्त्री को प्यार करूँ तो भी उसको ईर्ष्या न जागे। ऐसी नारी को पाकर में उसके चरणों में गिर पड़ूँगा और उस पर अपने को अपर्ण कर दूँगा।"

मेहता नारी से सर्वस्व-त्याग की आशा इसलिए करते हैं क्योंकि प्रेम को वे सीधी-सादी गऊ न समझकर खूँखार शेर मानते हैं जो अपने शिकार पर किसी की आँख भी नहीं पड़ने देता है। आध्यात्मिक प्रेम, त्यागमय प्रेम और निस्वार्थ प्रेम को मेहता श्रद्धा और सेवा की भावना मान सकते हैं परन्तु प्रेम

की नहीं। उनकी प्रेम की इस व्याख्या को सुन्दर मालती चौंक उठती है और परिणाम यह निकलता है कि मेहता प्रयत्न करने पर भी मालती को पत्नी रूप में प्राप्त नहीं कर पाते। जैसे मेहता प्रेम के क्षेत्र में अपने एकाधिकार और व्यक्तित्व को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं, न्याय की दृष्टि से वही अधिकार मालती को भी मिलना चाहिए था। इस तरह मेहता की प्रेम की व्याख्या अव्यावहारिक और असफल प्रेम की व्याख्या बनकर रह जाती है। मालती उन्हें उनकी भूल बता देती है।

विनोद प्रिय—मेहता विनोदी भी हैं। वे कभी-कभी शराब पीकर मस्त हो जाते हैं और "उस मस्ती में उनका दर्शन उड़ जाता है और विनोद सजीव हो जाता है।" धनुष-यज्ञ के अवसर पर पठान का रूप भर कर वे सभ्य कहलाने वाले समाज के व्यक्तियों की अच्छी खासी परीक्षा लेते हैं। पठान के अभिनय में उन्होंने आश्चर्यजनक सफलता पाई क्योंकि "रूप भरने में वे अच्छे-अच्छे को चकित कर देते थे।" मिर्ज़ा खुर्दश के साथ खुलेआम कबड्डी खेलने में उन्हें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ था। शिकार के भी काफी शौकीन थे।

प्रकृति-प्रेमी—प्रकृति का सुन्दर रूप मेहता को मुग्ध कर लेता है। उसके अपने अहाते में एक अच्छा खासा बाग लगा हुआ है जिसमें देशी-विदेशी पौधों का सुन्दर संग्रह है। प्रकृति के संसर्ग में आते ही उनका उल्लास बिखरने लगता है। उनका कहना है—"प्रकृति से स्पर्श होते ही जैसे मुझ में एक नया जीवन आ जाता है। नस-नस में स्फूर्ति दौड़ने लगती है। एक-एक पक्षी, एक-एक पशु, जैसे मुझे आनन्द का निमन्त्रण देता हुआ जान पड़ता है, मानों भूले हुए सुखों की याद दिला रहा हो।....प्रकृति के बीच में आकर मैं जैसे अपने-आपको पा जाता हूँ जैसे पक्षी अपने घोंसले में आ जाय।"

प्रेमचन्द मेहता के रूप में एक ऐसे व्यक्ति का आदर्श उपस्थित करना चाहते थे जिनके द्वारा ही जनता की सच्ची सेवा सम्भव हो सकती है। मालती इसीलिए मेहता को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है और मेहता मालती के साथ कर्मक्षेत्र में उतर आते हैं। यदि हमारा बुद्धिजीवी वर्ग, कोरे आदर्श की बातें करना छोड़कर कर्मक्षेत्र में क्रियाशील हो उठे तो देश की सभी समस्यायें सुलझ सकती हैं। मेहता का यही सन्देश है।

प्रश्न ११—खन्ना का चरित्र-चित्रण अपने शब्दों में करिये ।

उत्तर—खन्ना पूँजीपतियों के प्रतिनिधि—रायसाहब यदि जमीदारों के प्रतिनिधि हैं तो मिस्टर खन्ना पूँजीपतियों के । प्रेमचन्द के शब्दों में वे—"ठिगने, इकहरे, रूपवान आदमी, गेहूँआ रंग, बड़ी बड़ी आँखें, मुँह पर चेचक के दाग, बातचीत में बड़े कुशल" व्यक्ति हैं । वे एक बैंक के मैनेजर और एक शक्कर मिल के मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं । इसके अतिरिक्त रायसाहब की तरह खन्ना भी "दो बार जेल हो आए थे ।" किसी से दबना न जानते थे । खद्दर पहनते थे और फ्रांस की शराब पीते थे ।" संक्षेप में खन्ना ऐसे ही राष्ट्रवादी और कांग्रेसी हैं जैसों का आज कांग्रेस में बहुमत दिखाई पड़ता है । ऐसे लोग जमाने की हवा के अनुकूल अपना रुख बना लेने का गिरगिट की तरह रंग पलटने में बड़े पटु होते हैं । बैंक की पूँजी के बल पर वे उद्योग-धन्धों पर कब्जा कर लेते हैं और रात दिन इसी उधेड़ बुन में लगे रहते हैं कि किस प्रकार अधिक से अधिक रुपया प्राप्त कर सकें । इसी कारण उनकी मित्रता का आधार सदैव स्वार्थ बुद्धि ही रहती है । रायसाहब से उनकी मित्रता इसीलिए है कि वे चाहते हैं कि रायसाहब उनकी शक्कर मिल के कुछ शेयर खरीद लें ।

व्यवसायी बुद्धिवाला—यहाँ जब शिकार खेलने का प्रोग्राम बनता है तो मेहता और खन्ना को भिन्न प्रकार की प्रसन्नता होती है । मेहता तो स्वच्छन्द जीवन के उपासक हैं इसलिए प्रसन्न हो उठते हैं तथा खन्ना इसलिए प्रसन्न होते हैं कि उन्हें रायसाहब से शेयरों के विषय में वार्तालाप करने का अवसर मिलेगा और इसीलिए जब तीन दल बनाये जाते हैं तो खन्ना रायसाहब के साथ रहना ही पसन्द करते हैं । प्रेमचन्द के शब्दों में उनका उस समय का चित्र देखिए—"खन्ना ने शिकारी सूट डाटा था, जो आज के ही लिए बनवाया गया था, क्योंकि खन्ना को आसामियों के शिकार से इतनी फुरसत कहाँ थी कि जानवरों का शिकार करते ।" और खन्ना रायसाहब का शिकार करने का जोड़-तोड़ भिड़ाते हैं । वे रायसाहब को सुझाव देते हैं कि वे उनकी शक्कर मिल के शेयर खरीद लें और वह भी कम से कम पचास हजार के । रायसाहब

जब रुपयों का अभाव बताते हैं तो खन्ना तुरन्त उनको अपने बैंक से रुपये उधार लेने की सलाह देते हैं। और साथ ही उनसे अपनी बीमा कम्पनी में बीमा करा लेने के लिए भी आग्रह करते हैं। इसके अरिरिक्त सट्टेबाजी द्वारा रुपये पैदा करने का उपदेश भी देते हैं। वे केवल इन बातों के लिए ही राय-साहब के साथ आये थे इसीलिए जब एकाएक तेन्दुए का नाम सुन लेते हैं, तो उनकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती है। रायसाहब जब उन्हें डरपोक कहते हैं तो खन्ना तुरन्त उत्तर देते हैं कि—"मैं अहिंसावादी होना लज्जा की बात नहीं समझता।"

कूटनीतिज्ञ—खन्ना स्वयं को जनता का आदमी समझते हैं क्योंकि—"पिछले कौमी आन्दोलन में उन्होंने बड़ा जोश दिखाया था। जिले के प्रमुख नेता रहे थे, दो बार जेल गए थे।" रायसाहब भी इसी तरह अपने किसानों के सच्चे शुभेच्छु बनने का दम्भ करते हैं। जब खन्ना के मिल में हड़ताल होती है तो खन्ना को सबसे बड़ी शिकायत यही है कि जब वे जनता के अपने आदमी हैं तो उनके खिलाफ यह विद्रोह क्यों होना चाहिए। परन्तु मजदूरों की यह नालायकी और असभ्यता है कि वे खन्ना को अपना आदमी नहीं समझते क्योंकि डाक्टर मेहता के शब्दों में—'आपके मजदूर बिलों में रहते हैं—गन्दे बदबूदार बिलों में, जहाँ आप एक मिनट भी रह जायँ तो आपको कै हो जाय। कपड़े जो वे पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोंछेंगे। खाना जो वह खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खायगा। मैंने उनके जीवन में भाग लिया है। आप उनकी रोटीयाँ छीन कर अपने हिस्सेदारों का पेट भरना चहाते हैं।" अफसोस कि इतने पर भी मजदूर उनको अपना आदमी नहीं समझते और हड़ताल कर देते हैं। खन्ना के हथकण्डों से हड़ताल असफल रहती है और पुराने मजदूरों के स्थान पर कम वेतन पर नए मजदूर भरती कर लिए जाते हैं। खन्ना के जनता-प्रेम और राष्ट्रवाद का यह एक नमूना है।

कर्मठ व्यक्ति—इसमें सन्देह नहीं कि खन्ना कर्मठ व्यक्ति हैं। एक साधारण क्लर्क से उन्नति करते-करते बैंक के मैनेजिंग डाइरेक्टर बन जाते हैं। इस उन्नति के मूल में उनकी व्यवहार-कुशलता, कर्मठता, अवसरवादिता

एवं सर्वोपरि धूर्तता जैसे गुण ही प्रधान सहायक रहे हैं। वे पक्के स्वार्थी हैं। रायसाहब के बचपन के मित्र और हमदर्द हैं परन्तु वहीं तक जब तक कि उनके अपने स्वार्थ पर चोट नहीं आती। रायसाहब से इधर उधर की बातें करते हुए अन्त में इस शर्त पर राजी हो जाते हैं कि वे बैंक से जो रुपया उन्हें कर्ज दिलवायेंगे उसमें उनका अपना कमीशन सुरक्षित रहेगा क्योंकि उनकी मित्रता का यही आदर्श है।

विलासी व्यक्ति—खन्ना विवाहित हैं। उन्हें गोविन्दी जैसी पत्नी मिली है जिसे मेहता देवी मानते हैं। परन्तु 'खन्ना मिस मालती के उपासकों में थे। जहाँ मिस मालती जाय, वहाँ खन्ना का पहुँचना लाजिमी था। उसके आसपास भौंरे की तरह मंड़राते रहते थे। हर समय उनकी यही इच्छा रहती थी कि मालत से अधिक से अधिक वही बोलें, उसकी निगाह अधिक से अधिक उन्हीं पर रहे।" गोविन्दी इस बात को जानती है और इसी को लेकर पति पत्नी में प्रायः कलह होती रहती है। नौबत यहाँ तक पहुँचती है कि खन्ना एक दिन मालती के प्रश्न को लेकर गोविन्दी को मार बैठते हैं। तेंदुए के भय को अपनी अहिंसावादी नीति के जाल में उलझा कर सफाई देने वाला खन्ना घर में शेर बनकर पत्नी पर हाथ उठा बैठता है। धनुषयज्ञ के अवसर पर मेहता जब पठान का वेश धारण कर सबको धमकाते हैं तो खन्ना पहिले तो चुपचाप खिसक जाने का प्रयत्न करते हैं और बाद में रोना मुँह बनाकर कहते हैं कि—"कुछ रुपये देकर किसी तरह इस बला को टालिए।" और वे यह रुपया मालती द्वारा ही दिलाना चाहते हैं जो उसने शर्त में जीता था। अपनी जेब पर चोट नहीं आने देना चहाते। आखिर मालती से उन्हें अमिट प्रेम जो ठहरा। खन्ना की कंजूसी और कायरता के अनेक उदाहरण 'गोदान' में भरे पड़े हैं।

मालती के प्रति खन्ना की आसक्ति एक पूँजीपति विलासी व्यक्ति की आसक्ति है। वह मालती को केवल खिलौना समझते हैं। उनका कहना है कि "अगर एक लोटा जल चढ़ा देने से वरदान मिल जाय तो क्या बुरा है।" इस प्रकार खन्ना जीवन के हर क्षेत्र में धूर्तता से काम लेते हैं। उनकी मिल जल जाने पर उन्हें मार्मिक सन्ताप होता है और वे पागल से हो उठते हैं।

ऐसे गाढ़े समय पर गोविन्दी ही उनकी सहायता करती और सान्त्वना देती है। परन्तु खन्ना फिर भी अपनी बदमाशियों से बाज नहीं आते। मिल में उनकी उखाड़-पछाड़ पूर्ववत चलती रहती है।

संक्षेप में खन्ना धूर्त पूँजीपतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो राष्ट्रवाद का चोगा पहन कर जनता को मूर्ख बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति किसी के भी सगे नहीं हो सकते। उनका अपना स्वार्थ उनकी दृष्टि में सर्वोपरि रहता है।

प्रश्न १२—रायसाहब का चरित्र-चित्रण कीजिए।

प्रेमचन्द ने रायसाहब का व्यक्तित्व द्विमुखी चित्रित किया है और इसमें वे सफल भी हुए हैं। सिद्धि कीजिये।

उत्तर—रायसाहब अमरपालसिंह होरी को छोड़कर 'गोदान' के सबसे अधिक सशक्त पात्र हैं। यहाँ 'सशक्त' शब्द से अभिप्राय सदगुणों से नहीं है। रायसाहब का व्यक्तित्व द्विमुखी है। वे सत्याग्रह-संग्राम में बड़ा यश कमा चुके हैं परन्तु अंग्रेज अधिकारियों के साथ उनके सम्बन्ध बड़े मधुर हैं। वे अपने आसामियों से बड़े प्रेम से मिलते हैं, उनसे अपने दुख-दर्द की बातें कहते हैं परन्तु उन्हीं आसामियों का शोषण करने में जरा भी ढील नहीं आने देते। वे बड़े ऊँचे आदर्शवादी हैं, रिश्वत, अत्याचार, अनैतिकता आदि के विरुद्ध बड़ी लम्बी चौड़ी बातें करते हैं परन्तु स्वयं ओंकारनाथ को रिश्वत देते हैं, अपने उत्सवों के खर्च के लिए किसानों से नजराना लेते हैं, मजदूरों से बेगार कराते हैं, मालती जैसी स्वच्छन्द प्रकृति की नारी से उनके अच्छे सम्बन्ध रहते हैं, कर्ज लेने के लिए खन्ना के दरवाजे पर नाक रगड़ते हैं और जहर खा लेने की धमकी देते हैं, अपने तथाकथित सम्मान की रक्षा के लिए कर्ज लेकर चुनाव लड़ते हैं, आदि विभिन्न प्रकार के दुष्कर्म उनके जीवन के अङ्ग बन गए हैं और फिर भी वे साम्यवाद की लम्बी चौड़ी बातें करते हैं। मेहता का यह वाक्य रायसाहब के ऊपर पूर्ण रूप से ठीक बैठता है—"आपकी जबान में जितनी बुद्धि है, काश उसकी आधी भी मस्तिष्क में होती।" संक्षेप में रायसाहब रंगे सियार हैं।

प्रेमचन्द ने उनकी इस धूर्तता का पर्दाफाश करते हुए लिखा है—"राय-साहब रा'ट्रवादी होने पर हुक्काम से मेल-जोल बनाये रखते थे। उनकी नजरें और डालियाँ और कर्मचारियों की दस्तूरियाँ जैसी की तैसी चली आती थीं।" डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में—"यह ऐसा राष्ट्रवाद था, जो किसानों से भर-मुट्ठी रुपया भी वसूल करता था, अपने ऊपर उसके लिए बदनामी न आने देता था, अँग्रेजी राज से अपने सम्बन्ध भी बनाये रखता था। अर्थात् "रायसाहब उन हिंसक पशुओं में से हैं जो गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोलना सीख गए हैं।"

रायसाहब ने सत्याग्रह-संग्राम में आगे बढ़कर हिस्सा लिया था। उन्होंने कौंसिल की मेम्बरी से त्यागपत्र देकर जेल जाने का साहस दिखाया था और प्रतिदान में जनता के श्रद्धा-भाजन बन गए थे। वे जमींदारी प्रथा को मानवता का अभिशाप समझते हैं और उस दिन की व्याकुलता के साथ प्रतीक्षा करने का दिखावा करते हैं जब उन्हें जमींदारी से मुक्ति मिल सकेगी। क्योंकि उन्हीं के शब्दों में—"जब तक सम्पत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी तब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मँडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुँचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।" और राय-साहब अपने इस अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति करने के प्रयत्न में किस तरह जी-जान से लगे हुए हैं, इसे प्रेमचन्द के ही मुँह से सुनिए—

"यह बात नहीं कि उनके इलाके में आसामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो, या डाँड और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्त्ति पर कोई कलंक न लगा सकता था।" रायसाहब सम्पत्ति की इस बेड़ी से मुक्ति पाने के लिए छट-पटाते रहते हैं और अपनी ससुराल की जायदाद को प्राप्त करने के लिए कर्ज लेकर मुकद्दमा लड़ते हैं और उसे प्राप्त करके ही दम लेते हैं। वह जमींदारी तो लाखों की सम्पत्ति थी परन्तु यह सम्पत्ति-द्रोही पंचों से जुर्माने के वे सौ रुपए भी वसूल कर अपनी जेब में डाल लेना चाहता है जो पंचों ने होरी से जुर्माने के रूप में वसूल किए थे। बेगार और नजराना तो बहुत ही मामूली-सी बात है। इसी कारण तो रायसाहब को रंगा सियार कहना पड़ता है।

इनके इसी रूप का एक और चित्र देखिए। रायसाहब बैठे हुये भोले-भाले होरी को अपने दुःख दर्द की गाथा सुना रहे हैं। इनका कहना है कि जमींदारों में एकमात्र वे ही नेक और प्रजा के सच्चे हितैषी हैं। उनके ऊपर अनेक उत्तर-दायित्व हैं। प्रजा की दीन दशा से वे बड़े दुखी रहते हैं। बड़े ऊँचे आदर्शों के पालन पर जोर देते हैं कि इसी समय चपरासी आकर सूचना देता है कि बेगारों ने बेगार करने से इन्कार कर दिया है क्योंकि वे खाने को माँगते हैं। राय-साहब की अधिकार भावना तुरन्त उद्बुद्ध हो उठती है। वे फैसला देते हैं कि अन्याय है। बेगार लेना तो उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। किसमें इतना साहस है जो इसका विरोध कर सके और वे तुरन्त उन 'दुष्टों' को ठीक करने चल पड़ते हैं क्योंकि—'जब कभी खाने को नहीं दिया तो आज यह नई बात क्यों ? एक आने के रोज के हिसाब से मजदूरी मिलेगी जो हमेशा मिलती रही है और इसी मजदूरी पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।" अपने अधिकारों पर जब क्रियात्मक चोट पड़ते हुए देखते हैं तो रायसाहब अपने उन जन्मसिद्ध अधिकारों को किसी दशा में छोड़ने को प्रस्तुत नहीं होते। रायसाहब का यह दोष क्षम्य है क्योंकि आदर्शवादी व्यक्ति प्रायः अपने अधिकारों पर आक्रमण सहन नहीं कर पाते। उनके आदर्श सदैव दूसरों के लिए ही होते हैं। स्वयं अपने लिए नहीं।

रायसाहब मानव-स्वभाव के पारखी हैं। वे जानते हैं कि मनुष्य से कैसे काम निकालना चाहिए। मनुष्य अपने ही समाज के व्यक्ति की बात अधिक मानता है। बड़ों की बातों में प्रायः मनुण्य विश्वास नहीं करता। रायसाहब को धनुषयज्ञ के उत्सव के लिए बीस हजार रुपयों का प्रबन्ध करना है और वह भी किसानों से नजराने के रूप में। इसके लिए वे होरी जैसे भोले किसान को पकड़ते हैं। पहले उसे जनक का माली बनाने का प्रलोभन देकर अपने अनुकूल कर लेते हैं और फिर उसे अपना आदमी कहकर उससे अपना दुखड़ा रोते हैं और ऐसा करके होरी की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त कर लेते हैं। वे यह नाटक इसीलिए रचते हैं कि होरी उनका अपना आदमी बनकर किसानों से रुपये वसूल करवाने के लिए किसानों पर अपना प्रभाव डाले और रायसाहब का काम बन जाय। जब होरी प्रभावित होकर चलने लगता है तो रायसाहब इस तरह

उससे कहते हैं मानो कोई भूली हुई बात एकाएक याद आ गई हो—"और देख, असामियों से ताकीद कर देना कि सब के सब शगुन करने आएँ।" उनके कारकुन को जो कुछ करना है वह तो करेगा ही, लेकिन आसामी जितने मन से आसामी की बात सुनता है; कारकुन की नहीं।" भोला होरी समझ लेता है कि रायसाहब बड़े भले आदमी हैं। उस जैसे व्यक्ति से भी कितनी आत्मीयता के साथ अपनी घरेलू बातें कर लेते हैं और यह भी कि वे सुखी न होकर दुखी हैं।

परन्तु यह बात नहीं कि अन्य लोग रायसाहब की असलियत को जान नहीं पाते। होरी का लड़का गोबर रायसाहब की असलियत को जानता है। जब होरी रायसाहब के यहाँ से लौटकर धनिया से कहता है—"हम लोग समझते हैं, बड़े आदमी बहुत सुखी होंगे, लेकिन सच पूछो तो वह हमसे भी ज्यादा दुखी हैं। हमें अपने पेट की ही चिन्ता है, उन्हें हजारों चिन्ताएँ घेरे रहती हैं।" इसे सुनकर गोबर के आग लग जाती है। वह रायसाहब की कटु आलोचना करता हुआ कहता है—'तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते? हम अपने खेत हल, बैल, कुदाल, सब उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे बदला? यह सब धूर्तता है, निरी मोटमर्दी। जिसे दुख होता है, वह दर्जनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूड़ी नहीं खाता, और न नाच-रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज के सुख भोग रहे हैं; उस पर दुखी हैं।"

होरी कहता है कि रायसाहब बड़े धर्मात्मा और भक्त हैं; पूरे चार घण्टे भजन पूजा करते हैं। परन्तु गोबर का कहना है कि रायसाहब का वह भजन-पूजन किसानों और मजदूरों के बल पर होता है। क्योंकि—"यह पाप का धन पचे कैसे? इसलिए दान धर्म करना पड़ता है।....एक दिन खेत ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जायँ।" गोबर नई रोशनी का युवक है उसे भाग्यवाद या कर्मवाद की दुहाई देकर होरी की तरह बहकाया नहीं जा सकता। वह राय-साहब जैसे धूर्त अत्याचारियों एवं शोषकों की असलियत जानता है।

रायसाहब साम्यवाद की बातें करते हैं, जमींदारी प्रथा और सम्पत्ति को गर्हित सिद्ध कर स्वयं को किसानों का शुभेच्छु घोषित कर देते हैं; क्योंकि वे

किसानों के शुभेच्छु हैं इसलिए उन्हें किसानों का शोषण करने का भी अधिकार है। देखिए वे औंकारनाथ के सम्मुख अपने इस शोषण को किस प्रकार न्यायोचित सिद्ध करते हैं, वे कहते हैं—"मुझे किसानों के साथ जलना-मरना है, मुझसे बढ़कर दूसरा उनका हितेच्छु नहीं हो सकता, लेकिन मेरी गुजर कैसे हो। अफसरों को दावतें कहाँ से दूँ, सरकारी चन्दे कहाँ से दूँ, खानदान के सैकड़ों आदमियों की जरूरतें कहाँ से पूरी करूँ। मेरे घर का खर्च क्या है, यह शायद आप जानते हैं। तो क्या मेरे घर में रुपये फलते हैं? आयेगा तो असामियों के घर से।" कितनी सुन्दर दलील है। अगर आसामी न होते तो रायसाहब सम्भवतः अपने घर के उस खर्च को जुटाने के लिए डाका भी डालने लगते। ऐसे ही लोग गरीबों के शोषण को अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझ कर दिन-रात उसी में लगे रहते हैं! परन्तु रायसाहब के इस शोषण चक्र की अपनी विशेषता है। वे बल का प्रयोग नहीं करते क्योंकि जागरूक और राजनीति के खिलाड़ी होने के कारण जमाने की बदलती हुई हवा का रुख पहचानते हैं। अगर अँग्रेज बने रहे तो उनके भी भले और अगर चले गए तो राष्ट्रवादी होने के नाते जनता के भी भले। प्रेमचन्द जैसा जनता के लेखक जमीदार वर्ग के ऐसे धूर्त सदस्यों की चालों को पहिले ही भाँप गये थे इसलिए उन्होंने रायसाहब जैसे जमींदारों के इस द्विमुखी रूप को उघाड़ कर रख दिया था जिससे जनता भ्रम में न रहे।

रायसाहब का एक आलोचक है जो उनकी असलियत को पहचानता है—वह है डाक्टर मेहता। ये बुद्धिजीवी वर्ग के जनता से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति हैं इसलिए रायसाहब की असलियत को और भी गहराई के साथ स्पष्ट कर सामने रख देते हैं। रायसाहब इनके सामने भी किसानों के शुभेच्छु बनने का दम्भ करते हैं। डाक्टर मेहता इन्हें लताड़ते हुये कहते हैं कि अगर आप किसानों के शुभेच्छु हैं तो—'कास्तकारों को वगैर नजराने लिये पट्टे लिख दें, बेगार बन्द कर दें, इजाफा लगान को तिलांजलि दे दें, चरावर जमीन छोड़ दें। मुझे उन लोगों से जरा भी हमदर्दी नहीं है, जो बातें तो करते हैं कम्युनिस्टों की सी, मगर जीवन है रईसों का सा, उतना ही विलासमय, उतना ही स्वार्थ से भरा हुआ।" मेहता रायसाहब द्वारा किसानों के साथ अच्छा बर्ताव करने

के पीछे छिपी हुई उनकी स्वार्थ भावना का भी पर्दाफाश कर देते हैं। वे कहते हैं—'मानता हूँ, आपका आपके असामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है मगर प्रश्न यह है कि उसमें स्वार्थ है या नहीं। इसका एक कारण क्या यह नहीं हो सकता कि मद्यम आँच में भोजन स्वादिष्ट पकता है। गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा नहीं अधिक सफल हो सकता है। मैं तो केवल इतना जानता हूँ, कि हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं तो बकना छोड़ दें।" इससे सिद्ध होता है कि रायसाहब ऐसे व्यक्ति हैं, जिनकी कथनी और करनी में आकाश और पाताल का अन्तर है।

रायसाहब उस जर्जर सामन्ती व्यवस्था के एक ऐसे प्रतिनिधि हैं जो अपने वर्ग की पतनशील अवस्था को पहचान कर युगानुरूप नवीन हथकण्डों से काम लेते हैं। शोषण करने में वे अपने वर्ग के अन्य व्यक्तियों से किसी भी बात में कम नहीं हैं परन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि ये किसान को गुड़ से मारना जानते हैं जबकि उनके अन्य भाई बन्द सामन्तशाही के उन्हीं पुराने बर्बर तरीकों से काम लेते हैं। इसलिए रायसाहब जैसे व्यक्ति किसानों के लिए अधिक खतरनाक सिद्ध होते हैं। वे मन्दिर के उस महन्त के समान हैं जो रामनामी चादर ओढ़कर शराब पीता है, वेश्यागमन करता है और दिन-रात विलास में गर्क रहता है। रायसाहब के पास नवीन युग के अनुरूप राष्ट्रवाद की चादर है। आज देश के शासन में ऐसे ही धूर्त व्यक्तियों का बहुमत है, इसी कारण आज भारत की जनता पहिले के अधिक दुखी है। लूट-खसोट को सांस्कृतिक रूप दे देना इस वर्ग की विशेषता है।

जहाँ तक व्यक्ति रायसहाय का प्रश्न है उनमें कुछ गुण भी हैं। वे क्षत्रिय हैं इसलिए जाति के स्वभावानुसार वीर हैं। पठान के बन्दूक तानने पर वे विचलित नहीं होते और मालती की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। अपने वर्ग के अन्य व्यक्तियों के समान वे विलासी और कामुक भी नहीं हैं। इस रूप में हम उनकी प्रशंसा कर सकते हैं परन्तु जब हम उनका वह रूप देखते हैं जिसका सम्बन्ध उनका ग्रामीण जनता से है तो अनायास ही हमारे मन में उनके प्रति घृणा उत्पन्न होने लगती है। उन्हें अपने वर्ग का झूँठा दम्भ और

अहंकार है यद्यपि उनका ही लड़का रुद्रपाल मालती की बहिन सरोज से शादी कर उनकी मान्यताओं एवं दम्भ को समाप्त कर देता है। परिस्थितियों पर विजय पाने वाले रायसाहब को अपनी ही संतान से हारना पड़ता है।

प्रश्न १३—गोबर का चरित्र चित्रण अपने शब्दों में कीजिये।

उत्तर—**विद्रोही स्वभाव का है**—गोबर यद्यपि होरी का पुत्र है लेकिन यह अपने पिता से भिन्न स्वभाव का है। होरी की कर्मवादिता एवं भाग्यवादिता को गोबर पसंद नहीं करता। वह बचपन से ही अपने पिता को खून-पसीने से महनत करते देखता है और उस पर भी उन्हें छोटी से छोटी चीजों के अभाव से दुःखी होते भी देखता है। उसका हृदय जमींदार, महाजन आदि के अन्याय को देखकर विद्रोह करना चाहता है लेकिन होरी उसे दबाता रहता है। वह अपने समाज में देखता है कि धन से ही व्यक्ति का सम्मान होता है। यदि किसी व्यक्ति के पास धन है फिर चाहे वह चरित्र-भ्रष्ट और शोषक क्यों न हो समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता है। यदि किसी व्यक्ति के पास धन है तो उसके सारे कुकर्मों पर परदा डाल दिया जाता है। उसके गाँव के ब्राह्मण मातादीन ने चमारिन बैठाली है, झिंगुरीसिंह ने ब्राह्मणी को घर में डाल रखा है परन्तु उनसे कोई भी कुछ नहीं कहता। दूसरी तरफ जमींदार और उसके कारिन्दे निरन्तर किसानों को लूटते रहते हैं परन्तु उनका कोई बाल-बाँका नहीं कर पाता। होरी तो ऐसी स्थिति को भाग्याधीन मानकर सन्तोष कर लेता है परन्तु गोबर इस स्थिति के रहस्य को समझने का प्रयत्न करता रहता है।

वह किसान का बेटा है, खेत में हल चलाकर लगान देता है। उसके साथ किसी भी प्रकार की रियायत नहीं की जाती फिर होरी बार बार रायसाहब के यहाँ क्यों जाता है। वह स्पष्ट शब्दों में होरी से कहता है—"यह तुम रोज-मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियां सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर नजराना सभी तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी को क्यों सलामी करो?"

गोबर का यह दृढ़ विश्वास है कि—'यहाँ जिसके हाथ लाठी है, वह

गरीबों को कुचल कर बड़ा आदमी बन जाता है।" इसलिए गोबर किसी का भी अन्याय बर्दास्त करने को सहमत नहीं होता, चाहे वह गांव में रह कर खेती करे, चाहे शहर में मजदूरी। वह हर जगह अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता रहता है। वह कर्मकाण्ड और भाग्यवाद पर विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार भगवान ने सबको बराबर बनाया है। यह भेद-भाव इन्हीं अत्याचारियों का आविष्कार है। समाज के ठेकेदारों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ऊँच नीच और भाग्यवाद के ये सड़े-गले नियम बना रखे हैं। वह रायसाहब जैसे जमींदारों की असलियत को जानता है। होरी जब रायसाहब के दुखों का उल्लेख करता है तो गोबर उनकी असलियत का पर्दाफाश कर देता है। उसका कहना है कि अगर रायसाहब को हजारों चिन्तायें सताती हैं– "तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते। हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे बदला ? यह सब धूर्तता है, मोटमरदी। जिसे दु:ख होता है वह दर्जनों मोटरे नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता और न नाच-रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे हैं, उस पर दुखी हैं।" तथा "हम लोग दाने-दाने को मुहताज हैं, देह पर साबित कपड़े नहीं हैं, चोटी का पसीना ऐड़ी तक आता है, तब भी गुजर नहीं होती। उन्हें क्या, मजे से गद्दी मसनद लगाये बैठे हैं, सैकड़ों नौकर चाकर हैं, हजारों आदमियों पर हुकूमत है। रुपए न जमा होते हों, पर सुख तो सभी तरह का भोगते हैं। धन लेकर आदमी और करता क्या है !"

जागरुक है—गोबर जानता है कि रायसाहब जैसे व्यक्ति होरी और गोबर जैसे किसानों की कमाई पर ही भजन-पूजन करते हैं, दान-धर्म करते हैं और ऐसा उन्हें इसलिए करना पड़ता है कि—"यह पाप का धन पचे कैसे ? इसलिये दान-धर्म करना पड़ता है, भगवान का भजन भी इसीलिए होता है। भूखे नंगे रहकर भगवान का भजन करें तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे दे तो हम आठों पहर भगवान का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े, तो सारी भक्ति भूल जायँ।" गोबर ने ये सब बातें किसी व्याख्यान को सुन, पाठशाला में पढ़ या किसी साम्यवादी दर्शन का अध्ययन

कर नहीं सीखी हैं। यह अन्याय का ज्ञान उसे जीवन की पाठशाला से प्राप्त हुआ है। इसीलिए उसकी उक्ति में इतनी सच्चाई और बल है। जिस बात को डाक्टर मेहता आलोचकों की भाषा में कहते है उसी को गोबर एक सीधे-सादे व्यक्ति की सीधी सादी भाषा में कह देता है। निष्कर्ष दोनों के एक ही हैं।

गोबर की उपरोक्त बातें यह सिद्ध कर देती हैं कि गोबर की पीढ़ी वाला किसान अत्याचारियों की वास्तविकता को समझने लगा था और उसका विरोध भी करना चाहता था परन्तु उसे यह नहीं मालूम था कि विरोध कैसे करे। इसके लिए प्रेमचन्द चाहते थे कि मेहता जैसे बुद्धिजीवी आगे आयें और इस पीढ़ी का नेतृत्व कर उसे अत्याचारों से मुक्ति दिलायें।

रूढ़िवादिता से विवश है—गोबर गाँव के साहूकारों की असलियत को भी जानता है। ये लोग भी तरह-तरह के कुकर्म करते है, किसानों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं। गोबर यह सब देखता है परन्तु वह अभी बालक है। उसकी समझ में नहीं आता कि इस अन्याय का प्रतिकार कैसे करे। होरी की चापलूसी करने की आदत को वह पसन्द नहीं करता। दिनरात खेती में खटने पर भी वह देखता है कि उसे भर पेट भोजन नहीं मिल पाता। गाँव में रहते हुए जो बात गोबर की समझ में पूरी तरह नहीं आती वह नगर में जाकर उसकी समझ में आ जाती है। नगर में जाकर उसने—' राजनैतिक जलसों के पीछे खड़े होकर भाषण सुने हैं और उनसे अंग-अंग में विधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा।" परन्तु जब वह नगर से गाँव लौटकर आता है तो होरी आदि की स्थिति को देखकर हताश हो जाता है। वह जानता है कि होरी की रूढ़िवादी मान्यताओं को तोड़ने की शक्ति उसमें नहीं है। इसलिए वह चुपचाप नगर लौट जाता है।

गोबर के इस मानसिक विकास को प्रेमचन्द ने बड़े कलात्मक ढङ्ग से दिखाया है।

प्रेम भावनाओं से पूर्ण है—गोबर अभी किशोर है। प्रेम या प्रणय की भावना से अछूता है। भाभियाँ उससे ठिठोली करती हैं। परन्तु—"उनकी दृष्टि में अभी उसके यौवन में केवल फूल लगे थे। जब तक फल न लग जायँ उस पर

ढेले फेंकना व्यर्थ की बात थी। और किसी ओर से प्रोत्साहन न पाकर उसका कौमार्य उसके गले से चिपटा हुआ था।" ऐसे अवसर पर झुनियाँ से उसकी जान पहचान होती है और—"झुनियाँ का वंचित मन जिसे भाभियों के व्यंग्य और हास-विलास ने और भी लोलुप बना दिया था, उसके कौमार्य पर ही ललचा उठा और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोए हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा।" और इस घटना ने गोबर के जीवन-प्रवाह को बदल दिया।

गोबर अल्हड़ है—दुनियादारी तथा प्रेम की प्रेचीदगियों से अनभिज्ञ। इसीलिए बिना सोचे समझे झुनियाँ के आकर्षण में फँस जाता है। उस पर जान न्यौछावर करने को उद्यत हो उठता है। एक विचित्र भय-मिश्रित आनन्द से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठता है। फिर सोचता है कि झुनियाँ को अपना लेने पर सारा गाँव दुश्मन हो उठेगा, बिरादरी झंझट पैदा करेगी, अम्मा डाटेंगी। ऐसा होने पर वह गाँव छोड़ देगा। फिर सोचता है कि गाँव क्यों छोड़े ? मातादीन चमारिन रखे हुए है, झिंगुरीसिंह ने ब्राह्मणी घर में डाल रखी है। फिर भी समाज में इन लोगों का सम्मान होता है। इस विचार मन्थन के उपरान्त उसकी समझ में यह सत्य आ जाता है कि समाज में धनवालों का ही सम्मान होता है। इसलिए वह धन कमायेगा और झुनियाँ के साथ बढ़ता हुआ उसका प्रणय-व्यापार अन्त में उसे शहर भाग कर धन कमाने के लिए बाध्य कर देता है। वह झुनियाँ को छोड़कर भागता है। इसका उसे दुख है परन्तु यह कहकर मन को समझा लेता है कि—"झुनियाँ उसे दगाबाज समझती है, तो समझे। वह तो अब तभी घर आवेगा, जब वह पैसे के बल से सारे गाँव का मुँह बन्द कर सके और दादा, अम्मा उसे कुल-कलंक न समझ कर कुल का तिलक समझें।"

धनी बनने का आकांक्षी है—समाज की परिस्थितियों का अध्ययन करने के पश्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि धनी व्यक्ति ही समाज में प्रतिष्ठा एवं यश प्राप्त करता है। समाज में श्रम, सद्चरित आदि का धन के समक्ष कुछ महत्त्व नहीं है। धना-भाव से ग्रस्त अपने बाप को देखकर वह भी पैसा कमाने की ओर प्रवृत होता है। वह रुपया कमाना चाहता है और इसके लिये

वह उन हथकंडों को अपनाने से भी नहीं चूकता जो उसके गांव के महाजन आदि अपनाते रहे हैं। वह खोमचा लगाकर पैसे पैदा करता है और जो रुपया बचता है उसे सूद पर उठा देता है। दातादीन आदि की सूदखोरी का तो विरोध करता है और कहता है कि बैंक की ब्याज की दर से ही सूद देना परन्तु स्वयं अल्लादीन को एक आना रुपया सूद पर उधार दे देता है। ऐसा करते समय वह इस कार्य को अत्याचार नहीं समझता। सूदखोरों की भांति वह शहर में आकर पक्का स्वार्थी बन जाता है। मिर्जा खुर्शेद, जिन्होंने उसे नौकरी दी, रहने को कोठरी दी, जब उससे पाँच रुपए उधार माँगते हैं तो गोबर रुपए न होने की बात कहकर उन्हें साफ टाल देता है परन्तु क्षण भर बाद ही अल्लादीन को रुपए उधार दे देता है क्योंकि वह जानता है कि मिर्जा रुपए नहीं लौटायेंगे। ऐसे समय वह मिर्जा के सम्पूर्ण अहसानों को भुला देता है।

गोबर के इस रूप को देखकर दुख और क्रोध होता है कि सूदखोरी, धूर्तता और अत्याचारों का विरोध करने वाला गोबर स्वयं इन्हीं कार्यों में लिप्त हो जाता है अन्य कोई अधकचरा उपन्यासकार सम्भवतः गोबर को इन बुराइयों से मुक्त दिखाता परन्तु गोबर तो प्रेमचन्द जैसे कलाकार की सृष्टि है। प्रेमचन्द ने गोबर का निर्माण किसी आदर्शवाद को सामने रख कर नहीं किया था। वे तो समाज के उस गठन का सच्चा रूप दिखाना चाहते थे जिसमें धन की महत्ता सर्वोपरि मानी जाती है और व्यक्ति मजबूर होकर धन प्राप्त करने के लिये उचित अनुचित हथकंडे अपनाने लगता है। उसे धन प्राप्त करने का और कोई तरीका ही नहीं मालूम। आखिर वह करे तो क्या। गोबर अपढ़ किसान है। उसका किसी राजनीतिक अथवा आर्थिक सिद्धांत से परिचय नहीं है। इसलिये वह उन्हीं उपायों से धन प्राप्त करना चाहता है जिसके द्वारा दूसरों को करते हुए देखता आया है। यदि वह शिक्षित होता, राजनीति से परिचय होता तो सम्भवतः इस विषमता का ही समूल नाश कर समता प्राप्त करने का मार्ग अपनाता।

गोबर किसानों की उस उगती हुई पीढ़ी का प्रतीक है जो धीरे-धीरे प्राचीन रूढ़ियों के जाल से निकलने का प्रयत्न कर रही है। उसे भाग्यवाद का नाम लेकर नहीं बहलाया जा सकता। होरी की पीढ़ी बीत चुकी है।

उसके मरने के बाद गोबर मानों अपने पिता के हत्यारों के लिए चुनौती बन कर जीवित रहता है। गोबर ने केवल यह काम किया है कि अत्याचारों को समझ ले। गोबर के आगे वाली पीढ़ी यह जानने के प्रयत्न में है कि इस शोषण का समूल नाश कैसे किया जाये। और जब उसे इस "कैसे" का उत्तर मिल जायेगा, उसी दिन शोषण का अन्त हो जायेगा और किसान-मजदूरों का जीवन सुखमय बन सकेगा।

गोबर निर्भीक है—गोबर का चरित्र निर्भीक युवक के रूप में अंकित किया गया है। शहर में रहकर उसने जीवन के विभिन्न अनुभव प्राप्त किए हैं और ग्रामीण समाज में हौआ समझे जाने वाले रायसाहब को उसने नजदीक से देखा है इसलिए उनसे आतङ्कित नहीं होता। फिर रायसाहब के कारकुनों की वह क्यों चिन्ता करने लगा। इसलिए होरी को सताने लिए कारकुन नोखेराम जब होरी से दुबारा लगान वसूल करने की बात कहते हैं तो गोबर उनसे भिड़ जाता है और कहता है कि वह गाँव वालों की गवाही दिलवा कर यह साबित कर देगा कि नोखेराम बिना रसीद दिए लगान वसूली करते हैं। साथ ही वह धमकी देता है कि रायसाहब से रत्ती-रत्ती हाल कहकर नोखेराम की पोल खोल देगा। नोखेराम सहम जाते हैं और होरी की जान बच जाती है।

प्रेमचन्द गोबर की इस दृढ़ता में सत्य का बल प्रधान दिखाते हुए कहते है—"उसकी वाणी में सत्य का बल था। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूँगा हो जाता है। वही सीमेंट जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाय तो मिट्टी हो जायगा। गोबर की निर्भीक स्पष्टवादिता ने उस अनीति के बख्तर को वेध डाला, जिससे सज्जित होकर नोखेराम की दुर्बल आत्मा अपने को शक्तिमान समझ रही थी।" गोवर की पीढ़ी ने अपनी इसी निर्भीकता से रायसाहब जैसे जमींदरों और नोकेखेराम जैसे कारकुनों के अत्याचारों से तो मुक्ति प्राप्त करली है परन्तु वह अभी तक साहूकारों से अपना गला नहीं छुड़ा सकी है। साहूकार अब भी किसानों को उसी भाँति चूस रहे हैं जैसे कि पहले चूसा करते थे। भारतीय किसानों को पूर्ण मुक्ति तब प्राप्त होगी जब वह सरकारी कर्मचारियों तथा साहूकारों द्वारा किये जाने वाले शोषण से अपने को मुक्त कर लेगा। संक्षेप में गोबर किसानों की उस

पीढ़ी का प्रतीक है जो अन्याय का प्रतिरोध करती हुई उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है।

प्रश्न १४—प्रेमचन्द ने ग्रामीण महाजनों का गोदान में बड़ा सजीव चित्रण किया है। इस कथन की पुष्टि कीजिये।

उत्तर—'गोदान' में ग्रामीण महाजनों का एक पूरा दल है। झिंगुरीसिंह, मंगरूशाह, दुलारी सहुआइन, लाला पटेश्वरी, दातादीन आदि सभी महाजन हैं। इकन्नी सूद पर रुपया उठाते हैं और किसानों के अपढ़ होने के कारण उनसे मनमाना वसूल करते हैं। दातादीन होरी को ३०) उधार देकर उससे २००) वसूल करना चाहते हैं। झिंगुरीसिंह की निगाह होरी की नई गाय पर है, इसलिए उसे हथियाना चाहते हैं। दातादीन होरी से साझेदारी कर उसे गुलाम बनाकर रखना चाहते हैं। मंगरूशाह होरी पर डिग्री कराकर उसकी ऊख नीलाम करवा लेते हैं। कारकुन नोखेराम होरी से दुबारा लगान वसूल करना चाहते हैं। अकेला होरी इन दुष्टों के चंगुल से कभी भी मुक्ति नहीं पाता।

ये सब लोग एक ही वर्ग के व्यक्ति हैं—धन बटोरने वाले। इसलिए किसानों के शाश्वत शत्रु हैं। इन सब का लक्ष्य एक होते हुए भी प्रत्येक का अपना पृथक व्यक्तित्त्व है। दातादीन ब्राह्मण हैं—ब्याह शादी कराने वाले, साहूकारी से रुपए जुटाने वाले। उन्हें अपने ब्राह्मणत्त्व का गर्व है। उन्हीं का लड़का मातादीन सिलिया चमारिन को रखे हुए हैं और इस बात को सारा गाँव जानता है। पर मातादीन—"तिलक लगाता था, पोथी पत्रे बाँचता था, कथा-भागवत कहता था, धर्म-संस्कार कराता था। उसकी प्रतिष्ठा में जरा भी कमी न थी। वह नित्य स्नान-पूजा करके अपने पापों का प्रायश्चित कर लेता था।" इसीलिए वाह्याडम्बरों को ही धर्म की संज्ञा देने वाला समाज उससे कुछ भी नहीं कहता। झिंगुरीसिंह के दो स्त्रियाँ थीं। उस पर उन्होंने एक ब्राह्मणी और रख छोड़ी थी। सारा गाँव जानता था कि उनकी स्त्रियों का चरित्र कैसा है। लाला पटेश्वरी थे। वह गाँव में पुण्यात्मा मशहूर थे। "पूर्णमासी को नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते, पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक

दूसरे से लड़ा कर रकमें मारते थे। सारा गाँव उनसे काँपता था। गरीबों को दस दस पाँच-पांच कर्ज देकर उन्होंने कई हजार की सम्पत्ति बनाली थी।

पण्डित नोखेराम कारकुन बड़े कुलीन ब्राह्मण थे। प्रातःकाल पूजा पर बैठ जाते थे और दस बजे तक बैठे राम-नाम लिखा करते थे, मगर भगवान के सामने से उठते ही उनकी मानवता इस अवरोध से विकृत होकर उनके मन वचन, और कर्म सभी को विषाक्त कर देती थी।" इन्हीं नोखेराम ने भोला और उसकी नई स्त्री नोहरी को अपने यहाँ शरण दे रखी थी और सारा गाँव जानता था कि नोहरी नोखेराम की रखैल बनकर रह रही है। दूसरी सहुयाइन भी अपनी जवानी में काफी रंगीली रह चुकी है।

ग्रामीण समाज के उपरोक्त सभी सच्चरित्र सज्जन होरी से इस कारण नाराज हो उठे हैं कि उसमें झुनियाँ को अपने घर में आश्रय देकर जघन्य पाप किया है क्योंकि ऐसा करने से उन्हें सारे गाँव के भ्रष्ट हो जाने का डर है जब कि इन सभी के नौजवान छोकरे सोना पर डोरे डालने के लिए होरी के घर के चक्कर काटा करते हैं। झुनियाँ वाले पाप का शमन करने के लिए ये पंच लोग होरी पर एक स्वर से बिरादरी का दण्ड लगा देते हैं जिससे होरी की कमर टूट जाती है। ऐसे जघन्य चरित्र वाले प्राणी ही हमारे धर्म और नैतिकता के ठेकेदार बने बैठे हैं। सब लोग मिलकर धनिया को इसके लिए छेड़ते हैं और धनिया सभी को करारी फटकार बताती है। वह दातादीन से स्पष्ट शब्दों में कह देती है— "वही काम बड़े-बड़े करते हैं, मुदा उनसे कोई नहीं बोलता, उन्हें कलङ्क ही नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं, तो उनकी मरजाद बिगड़ जाती है, नाक कट जाती है। बड़े आदमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी, हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं है।"

ये लोग गाँव के पंच हैं, मुखिया हैं, धर्म के ठेकेदार हैं, किसानों को हर प्रकार चूसने वाले हैं क्योंकि उनके पास पैसा है। ये लोग स्वयं हर प्रकार के कुकर्म करते हैं परन्तु साधारण किसान द्वारा धर्म का कार्य होते हुए भी सहन नहीं कर सकते। जमींदार, थानेदार आदि सभी इनके सहायक हैं फिर इन्हें डर किसका।

इनमें दो ब्राह्मण हैं—नोखेराम और दातादीन। दोनों ही परले सिरे के धूर्त और कुकर्मी हैं, फिर भी सच्चे ब्राह्मण बने रहने का दम्भ करते हैं। तीसरे ब्राह्मण नगर के ओंकारनाथ हैं जो मद्य माँस से परहेज करते हैं परन्तु मालती के हाथ की शराब अमृत समझ कर पी जाते हैं। चौथे ब्राह्मण वे पण्डित हैं जिनके यहाँ झुनियां दूध देने जाया करती थी और जिन्होंने एक दिन अपनी पत्नी की अनुपस्थिति में झुनियाँ के साथ बलात्कार करना चाहा था। जब झुनियाँ ने उन्हें डाँटा तो लगे उसके हाथ जोड़ने और पैरों पड़ने और उससे रूप का दान माँगने। ऐसे दान माँगने वाले ब्राह्मण समाज के अभिशाप होते हैं। तनिक उनके रूप का दान माँगने का ढंग देखिए। झुनियाँ से बोले—"एक प्रेमी का मन रख दोगी, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जायगा झूना रानी! कभी-कभी गरीबों पर दया करो, नहीं भगवान पूछेंगे, मैंने तुम्हें इतना रूप-धन दिया था, तुमने उससे एक ब्राह्मण का उपकार भी नहीं किया, तो क्या जवाब दोगी! बोलो मैं विप्र हूँ, रुपये पैसे का दान तो रोज ही पाता हूँ, आज रूप का दान दो।"

ऐसे ब्राह्मण हमारे धर्म और समाज के ठेकेदार समझे जाते हैं। यदि प्रेमचन्द ने इनके वास्तविक चरित्र को उघाड़ कर रख दिया तो क्या बुराई की? फिर प्रेमचन्द को ब्राह्मणों का दोषी क्यों कहा जाता है? सत्य का उद्-घाटन करना तो द्वेष नहीं कहलाता। प्रेमचन्द ने समाज के ऐसे धूर्तों की खूब कलई खोली है जो समाज का शोषण करते हैं, दुराचारी तथा कायर होते हैं फिर चाहे वे ब्राह्मण हों या इतर जाति वाले। 'गोदान' में ऐसे चरित्रों का सुन्दर उद्घाटन हुआ है। ऐसे चरित्र छोटे होते हुए भी काफी सशक्त और प्रभावशाली हैं।

प्रश्न १५—सिद्ध कीजिये कि धनिया का चरित्र "अन्याय के विरुद्ध पाठक और लेखक की भावनाओं को व्यक्त करने का एक माध्यम है।"

उत्तर—धनिया का चरित्र होरी से भिन्न है। होरी अन्याय को सिर झुकाकर स्वीकार कर लेता है परन्तु धनिया अन्याय की आशङ्का मात्र से ही कमर कस कर उसका विरोध करने को तत्पर हो जाती है। वह होरी की पत्नी है। उसने होरी के साथ संघर्ष झेले हैं और इन जीवन-व्यापी संघर्षों ने उसे

असमय में ही बुढ़िया बना दिया है। उसकी अवस्था छत्तीस वर्ष की है। "पर सारे बाल पक गये थे, चेहर पर झुरियाँ पड़ गईं थीं, सारी देह ढल गई थी, सुन्दर गेहुँआं रंग साँवला हो गया और आँखों से कम सूझने लगा।.......इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था।"

धनिया भारतीय नारी के समान दुख और विपदा में सदैव अपने पति की संगिनी रही है। होरी के सीधेपन पर क्रोध आता है और उसे समय-असमय फटकार भी देती है परन्तु उसमें एक कमी है। वह व्यवहार-कुशल नहीं है। इसी कारण उसकी औरों से प्रायः खटक जाती है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में वह—"ऊपर से कठोर है लेकिन हृदय बहुत कोमल है। प्रेमचन्द के नारी पात्रों में वह अन्यतम है। उसके बराबर न और कोई परिश्रम करने वाली है, न और किसी पर सरस्वती की ऐसी कृपा है।" धनिया गाँव भर में अपने लड़ाकू स्वभाव के लिये प्रसिद्ध है इसीलिये गाँव के साहूकार उसका सामना करने से कतराते रहते हैं। परन्तु ऐसी लड़का धनियाँ हृदय की अत्यन्त कोमल हैं। दीन और दुखी उसी के यहाँ आश्रय पाते हैं। जब झुनियाँ पाँच महीने का गर्भ लिये उसके यहाँ आ जाती है तो पहले धनिया खूब बिगड़ती है और होरी से साफ कह देती है—

"मैं तुम से कहे देती हूँ, मैं अपने घर में न रखूँगी।......मेरे घर में ऐसी छत्तीसियों के लिये जगह नहीं है और अगर तुम बीच में बोले, तो फिर या तो तुम्हीं रहोगे या मैं रहूँगी।" इस पर होरी जब यह कहता है कि वह झुनिया को झोटा पकड़ कर घर से बाहर निकाल देगा तो धनिया का मातृत्व जाग्रत हो उठता है और वह सहसा होरी के गले में हाथ डालकर प्रार्थना करती है—'देखो तुम्हें मेरी सौंह, उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोटी न होती तो यह दिन ही क्यों आता ?" प्रेमचन्द के शब्दों में—"धनिया का मातृ-स्नेह उस अन्धेरे में भी जैसे दीपक के समान उसकी चिन्ता जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा।......होरी को इस बीत-यौवन में भी वही कोमल-हृदय बालिका नजर आई, जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंगन में कितना अथाह वात्सल्य था,

जो सारे कलंक, सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परम्पराओं को अपने अन्दर समेटे लेता था।

घर आकार पति-पत्नी ने झुनियाँ को सान्त्वना दी। इससे पूर्व धनिया ने उसे खूब गालियाँ सुनाई थीं और अब झुनियाँ ने धनिया के मुँह से आश्वासन और क्षमा के शब्द सुने तो वह धनिया के पैरों से लिपट गई और—"वही साध्वी जिसने होरी के सिवा किसी पुरुष को आँख भर कर देखा भी न था, इस पापिष्ठा को गले लगाये उसके आँसू पोंछ रही थी, और उसके त्रस्त हृदय को अपने कोमल शब्दों से शान्त कर रही थी, जैसे कोई चिड़िया अपने बच्चे को परों में छिपाय बैठी हो।"

धनिया की यही मातृत्व भावना बराबर झुनियाँ की रक्षा करती रहती है। झुनियाँ को लेकर सारे गाँव में ऊधम उठ खड़ा होता है। सभी उसे टोकते हैं कि उसने झुनियाँ को शरण क्यों दे रखी है। उसे निकाल बाहर कर। मगर धनिया सबसे टक्कर लेती है और मुँह-तोड़ उत्तर देती है। दातादीन उसे टोकते हैं। कहते हैं 'तुम्हें इस दुष्ट को घर में नहीं रखना चाहिए था" आदि। धनिया तुरन्त तमक कर उत्तर देती है—"हमको कुल परतिसठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज, कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालते। व्याहता न सही; पर उसकी बाँह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। किस मुँह से निकाल देती।"

झुनियाँ के प्रसंग को लेकर उसके ऊपर आफत आ जाती है। होरी का हुक्का-पानी बन्द होता है और फिर उस पर जुर्माना किया जाता है। होरी सिर झुकाकर समाज और पंचों के इस अन्याय को स्वीकार कर लेता है परन्तु धनिया प्रतिरोध करती हुई कहती है—"पंचों, गरीब को सताकर सुख न पाओगे। इतना समझ लेना। हम तो मिट जायँगे, कौन जाने, इस गाँव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा सराप तुमको जरूर से जरूर लगेगा। मुझसे इतना बड़ा जरीमाना इसलिए लिया जा रहा है, कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों उसको घर से निकाल कर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया। यही न्याय है, एं ?"

झुनियाँ तो उसके बेटे की बहू और उसके नाती की माँ थी परन्तु सिलिया से उसका क्या नाता था ? परन्तु धनिया का मातृत्व अपने और पराये सभी को अपनी सुखद छाया में आश्रय देने को तत्पर रहता है । जब सिलिया मातादीन, तथा स्वयं अपने माँ-बाप आदि से ठुकराई जाकर निराश्रित होकर भटकने को होती है तो धनिया करुणा से आर्द्र होकर उससे कहती है—'जगह की कौन कमी है बेटी ! तू चल मेरे घर रह ।" होरी के यह कहने पर कि कहीं पण्डित दातादीन न बिगड़ें, वह तुरन्त जबाब देती है—"बिगड़ेंगे, तो एक रोटी वेसी खा लेंगे और क्या करेंगे । कोई उनकी दबैल हूँ । उसकी इज्जत ली, बिरादरी से निकलवाया, अब कहते हैं मेरा तुझसे कोई वास्ता नहीं । आदमी है कि कसाई·····।" इसी प्रकार भोला जब झुनियाँ को अपने घर लिवा ले जाने के लिये आता है तो धनिया उसे भी फटकार देती है । वह अन्याय को किसी भी रूप में सहन करने को प्रस्तुत नहीं ।

जब होरी हीरा के घर की तलाशी बचाने के लिये तीस रुपये उधार लेकर दरोगा को रिश्वत देने जाता है तो धनिया किसी की भी परवाह न कर उससे आकर रुपये छीन लेती है और उसे फटकारती हुई कहती है—"घर के प्रानी रात-दिन मरें, दाने-दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अंजुरी भर रुपये लेकर चला है, इज्जत बचाने । ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत ।" दारोगा के बोलने पर वह उसे भी डाट बताती है—"देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारी अक्ल की दौड़ । गरीबों का गला काटना दूसरी बात है, दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात ।" इसके बाद वह गाँव के साहूकारों को आड़े हाथों लेती है—"ये हमारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले । सूद, ब्याज, ड्योढ़ी सवाई, नजर नजराना, घूस-घास, जैसे भी हो गरीबों को लूटो । उस पर सुराज चाहिए । जेल जाने से सुराज न मिलेगा । सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से ।"

बुरे दिन आने पर धनिया और होरी मातादीन के यहाँ काम करने लगते हैं । परन्तु धनिया के तेज में तनिक भी कमी नहीं आती । एक दिन दातादीन उसे हाँफती हुई देखकर डाँटते हैं—"अगर यही हाल है तो भीख भी माँगोगी ।" परन्तु धनिया तुरन्त उत्तर देती है—"भीख माँगो तुम, जो भिखमंगों की जात

हो। हम तो मजूर ठहरे, जहाँ काम करेंगे, वहीं चार पैसे पायेंगे।" ऐसा उत्तर ऐसी विषम परिस्थिति में धनिया जैसी तेजस्विनी एवं दृढ़ चरित्र वाली नारी ही दे सकती थी।

धनिया सत्यवादिनी नारी है। झूठ और दम्भ से उसे घृणा है। थोथी मर्यादा को वह निस्सार समझती है। मानवता उसकी दृष्टि में सबसे बड़ा गुण है। उसका सम्पूर्ण चरित्र सत्य और यथार्थ की आधार शिला पर गढ़ा गया है। वह सत्य और करुणा की मूर्त्ति है। वह होरी के समान छल-फरेब से काम नहीं लेती, किसी की चापलूसी नहीं करती, दूसरों के थोथे दम्भ को सहन नहीं करती और कभी झूठ नहीं बोलती। दुखी के लिये उसका घर सदैव खुला रहता है।

धनिया के जीवन में निरन्तर संघर्ष आते रहते हैं। ब्याह के बाद जवानी उसकी देवरों के पालने-पोसने में निकल गई, बाद में होरी जैसे बुद्धू पति और भरे सन्तानों वाले घर की चिन्ता में उसका शरीर घुल गया। एक के बाद एक संकट आए परन्तु इस वीर एवं कर्मठ नारी को झुका न पाए। उसने प्राणपण से दूसरों की सहायता की लेकिन सबने उसे सताने और बर्बाद करने में कसर न छोड़ी। यहाँ तक झुनियाँ भी उसे उल्टी सीधी सुनाकर गोबर के साथ लखनऊ चली गई। झुनियाँ के इस व्यवहार से उसे अवश्य मर्मान्तक वेदना हुई। उसका माता का हृदय गोबर के बच्चे के लिए बिलख कर रह गया है।

धनिया अपनी निर्भीकता और स्पष्टवादिता के ही कारण स्वाभिमानिनी नारी है। उसके सामने पुत्री सोना के विवाह की समस्या है। होरी कर्ज से गले तक डूबा हुआ है। गाँव के लगभग सभी महाजनों का वह कर्जदार है। और कर्ज किस मुँह से और किस बूते पर माँगे ? इसलिए धनिया पति से और कर्ज न लेने का आग्रह करती है। सोना की चतुरता से उसके समधी गौरी महतो होरी को लिख भेजते हैं—"तुम दान दहेज की कोई फिकर मत करना, हम तुमको सौगन्ध देते हैं।" यह सुनकर धनिया का स्वाभिमान जाग्रत हो उठता है। उसने अपनी बात सदैव ऊँची रखी है, कन्या के विवाह में कैसे नीची हो जाने दे। उसे अपनी 'मरजाद' की रक्षा करनी ही पड़ेगी। लेकिन हमें भी

तो अपने मरजाद का निवाह करना है। संसार क्या कहेगा। रुपया हाथ का मैल है। उसके लिये कुल-मरजाद नहीं छोड़ा जाता। जो कुछ हमसे हो सकेगा देंगे और गौरी महतो को लेना पड़ेगा।" और इस 'कुल-मरजाद' को निभाने के लिये उसे नोहरी जैसी कुलटा स्त्री का अहसान लेना पड़ता है। 'कुल-मरजाद' की यह भावना धनिया में भी होरी के ही समान है परन्तु दोनों के प्रकार में अन्तर है। होरी सबसे दब कर इसे निभाना चाहता है परन्तु धनिया इसके प्रति तभी जागरूक होती है जब कोई उसे निर्धन समझ कर उस पर दया दिखाना चाह रहा हो। समधी के इस गर्व को वह कैसे सहन कर ले, भले ही उसे इसके कारण मुसीबत उठानी पड़े।

धनिया होरी की जीवन संगिनी है। पतिव्रता है—"कभी किसी ने उसे किसी ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़-छाड़ की थी। उसका ऐसा मुँह तोड़ जबाब दिया कि आज तक नहीं भूले।" वह होरी के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर संघर्षों से जूझती हुई जीवन के पच्चीस साल गुजार आई है। परन्तु जब होरी हीरा के प्रसंग को लेकर सारे गाँव के सामने धनिया को मारता है तो धनिया इसे सहन नहीं कर पाती। वह उसी दिन से पति से बोलना छोड़ देती है। परन्तु कुछ समय बाद जब होरी बीमार पड़ता है तो धनिया अपने सारे मान-अपमान को भूलकर प्राणपण से पति की सेवा में जुट जाती है—"पति जब मर रहा है तो उससे कैसा बैर। ऐसी दशा में तो बैरियों से भी बैर नहीं रहता, वह तो अपना पति है। लाख बुरा हो, पर उसी के साथ जीवन के पच्चीस साल कटे हैं। सुख लिया है तो उसी के साथ, दुख भोगा है तो उसी के साथ। अब तो चाहे अच्छा हो या बुरा, अपना है।"

ऐसी धनिया सेवा और त्याग की देवी है। जबान की तेज पर मोम जैसा हृदय। पैसे-पैसे के पीछे प्राण देने वाली, पर मर्यादा-रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार। उसने जीवन में किसी से हार नहीं मानी परन्तु उसका वात्सल्य उसे अपने बच्चों को भूख से बिलखता देखकर पुनिया का अहसान लेने को बाध्य कर देता है। उससे थोड़ा सा अनाज पाकर उसकी आँखों में प्रेम और कृतज्ञता के मोती झलक उठते हैं परन्तु "मन में वह अप-

मानित और लज्जित हो रही थी। यह दिनों का फेर है कि आज उसे इस प्रकार नीचा देखना पड़ा।''

धनिया का सम्पूर्ण चरित्र उपन्यासकार द्वारा कठपुतली के समान गढ़ा गया प्रतीत न होकर अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है। वह ग्रामीण नारी समाज का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। और इस समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने सतीत्व की रक्षा करता है, अपने स्वाभिमान को अक्षुण्ण बनाये हुए जीवन भर दरिद्रता और शोषण के खिलाफ संघर्ष करता रहता है। उसने जीवन में कभी हार नहीं मानी है। उसमें नारी सुलभ अन्य गुण भी हैं जैसे अपनी प्रशंसा सुनकर कोमल हो उठना, अपनों का ही विरोध देखकर चुप रह जाना जैसा कि गोबर और झुनियाँ उसके साथ करते हैं। परन्तु इन सब के रहते हुए भी यह नारी फौलाद के से स्वभाव की नारी है। जिस प्रकार होरी जीवन भर संघर्ष से जूझता हुआ मर जाता है उसी प्रकार धनिया भी कभी पैर पीछे नहीं हटाती। वह साहस, धैर्य, अध्यवसाय के साथ पति की गृहस्थी की गाड़ी को आगे चलाती रहती है और अन्त में होरी के मर जाने पर जीवन भर हार न मानने वाली यह नारी असहाय हो पछाड़ खाकर गिर जाती है। उसकी सहन शक्ति की सीमा जैसे टूट जाती है।

प्रश्न १६—"मालती बाहर से तितली है और भीतर से मधुमक्खी" इस कथन को ध्यान में रखकर मिस मालती का चरित्र-चित्रण कीजिये।

उत्तर—'गोदान' में मालती का चरित्र न केवल स्त्री पात्रों में अपितु पुरुष पात्रों के बीच भी सबसे अधिक सतत् विकासवान् है। उसका चरित्र इतना आकर्षक और रहस्यमय है कि पाठक उसको उपन्यास में आरम्भ से अन्त तक कौतूहल और जिज्ञासा की दृष्टि से देखता रहता है। प्रारम्भ में उसके व्यक्तित्व को पाठक किंचित् घृणा की दृष्टि से देखता है लेकिन बाद में उसी के चरित्र प्रति श्रद्धालु हो उठता है।

मालती—"कमल की भाँति खिली, दीपक की भाँति दमकती, स्फूर्ति और उल्लास की प्रतिमा सी निश्शंक, निर्द्वन्द्व—मानों उसे विश्वास है कि संसार में

उसके लिये आदर और सुख का द्वार खुला हुआ है।" ऐसी मालती इङ्गलैंड से डाक्टरी पढ़कर आई है और लखनऊ में प्रेक्टिस करती है। वह विचारशील है इसलिये संस्कारों से भारती है परन्तु विदेशी शिक्षा ने उस पर तड़क भड़क का मुलम्मा चढ़ा रखा है। प्रेमचन्द के अनुसार मालती का वाह्य रूप ऐसा ही है जो आधुनिक 'सुसाइटी गर्ल' से बहुत मिलता-जुलता है और इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्त्री किसी की भी अङ्कशायनी बनने के लिये प्रस्तुत रहती होगी परन्तु जब हम गहराई के साथ उसके जीवन का अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि यह नारी चरित्र की दृढ़ है। उसे ये सारे प्रदर्शन अपनी विषम परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न समस्याओं को सुलझाने के लिये ही करने पड़ते हैं। मालती के चरित्र की इसी गहनता को स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं कि—"मालती बाहर से तितली है भीतर से मधुमक्खी।"

मालती अपनी सीमित आय से सारे परिवार का खर्चा चलाती है। अपाहिज वृद्ध पिता हैं जिन्हें मांस और शराब के बिना भोजन नही रुचता, उनकी आदतें बिगड़े हुए रईसों की सी हैं। दो बहिने हैं—सरोज और वरदा जिनकी शिक्षा का भार उसे ही सहन करना पड़ता है। यदि वह अपना, विवाह कर अपने ही में सीमित होकर रह जाय तो इन सबका जीवन कैसे आगे बढ़ेगा। मालती यही सोचकर तन, मन, धन से अपने परिवार की मर्यादा की रक्षा करती हुई क्षण भर के लिये अपना मन भी बहला लेती है। महता के संपर्क में आकर उसके जिन गुणों का विकास होता है उनके बीज उसके इस पारिवारिक जीवन में पहले से ही विद्यमान हैं। वह अपने इस भारिल जीवन में क्षणिक आनन्द प्राप्त करने के लिये ही अपनी मित्र मण्डली में चंचल और रसिक बनी रहती है। उसके मित्र मण्डल में खन्ना, मेहता, रायसाहब, मिर्जा खुर्शेद, तंखा आदि सभी लोग हैं। खन्ना उस पर बुरी तरह लट्टू है। मगर मालती खन्ना जैसे व्यक्तियों की असलियत को जानती है कि ऐसे लोग केवल उसके रूप का ही उपभोग करने की लालसा रखने वाले हैं। ऐसे लोग अपने धन के बल से उसे फांसना चाहते हैं।

मालती के चरित्र में एक स्थल पर कमजोरी दिखाई पड़ती है जब पठान वेशी मेहता उसे उठा ले जाने की धमकी देते हैं तो सभ्य समाज के इन कायरों

के रूप को देखकर मालती तिलमिला उठती है। खन्ना आदि एक पठान से उसकी रक्षा करने में असमर्थ रहते हैं। नारी पुरुष की कायरता को कभी क्षमा नहीं कर पाती। वीरता की उसने सदैव उपासना की है। इसलिये जब पठान उसे उठा ले जाने की धमकी देता है तो मालती आतङ्कित नहीं होती।

मालती पौरुष के प्रति आकर्षित हो उठने वाली नारी है—उस नारी का आधुनिक संस्करण, जिसका जीवन पौरुष के खेलों में ही व्यतीत होता था। पौरुष के प्रति उसका यह आकर्षण उसे मेहता के प्रति आकर्षित कर देता है। वह अपने अन्य पुरुष मित्रों के खोखलेपन को जानती थी इसीलिये उन्हें उल्लू बनाया करती थी। परन्तु उसमें उसे संतोष और तृप्ति नहीं प्राप्त हो पाती। उसका नारीत्व एक ऐसा आश्रय चाहता है जो दृढ़ हो, स्थायी हो। मेहता में उसने अपना वह आश्रय देखा और वह उनके प्रति झुकी परन्तु मेहता ने उसके बाह्य रूप को उसका वास्तविक रूप समझा था इसीलिये उन्होंने उसकी अव-हेलना की। मेहता मालती के प्रेम में पूर्ण आत्म-समर्पण की भावना चाहते हैं क्योंकि उनका पुरुष बर्बर प्रेम का आकांक्षी है जो बिना शर्त नारी से आत्म समर्पण चाहता है उन्हें विश्वास है कि वे अपनी जीवन-संगिनी में जो देखना चाहते हैं वह न तो मालती में है और न कभी हो सकता है। इसी कारण मेहता मालती की उपेक्षा करते है, उसकी अयोग्यता का सबसे बखान करते फिरते हैं। अंत में मेहता खन्ना-पत्नी गोविन्दी का जीवन सफल बनाने के लिये मालती की ओर इसलिये ध्यान दे उठते हैं जिससे खन्ना पर से मालती का मोह दूर हो जाय। इसमें उन्हें सफलता मिल जाती है। मालती के घनिष्ट सम्पर्क में आने के उपरान्त ही मेहता उसकी उदार वृत्ति एवं वास्तविक गुणों को समझ पाते हैं और उनका मन मालती की ओर खिंचने लगता है। इधर मालती में भी परिवर्तन हो रहा है। मेहता के प्रभाव से वह सेवा-वृत्ति को अपनाने लगी है। अब गरीबी की उपेक्षा नहीं करती। मालती मेहता से प्रेम करती है परन्तु जब उनके प्रेम को भौतिक धरातल की निम्नकोटि तक उतरते हुए देखती है तो उसके मन को धक्का लगता है। मेहता को आदर्श मानकर मालती ने त्याग और सेवा का जीवन अपना लिया था। उसे विलास से विरक्ति हो उठी थी। वह झुनियाँ के बच्चे की माँ के समान सेवा करती है। होरी के गाँव में

जाने पर यहां की स्त्रियों के सम्मुख अपना विलासी जीवन उसे तुच्छ लगने लगता है। उन त्याग और श्रद्धा की देवियों के सम्मुख वह स्वयं को अपनी ही दृष्टि में नीचा समझने लगती है। मालती अब भी मेहता से उसी प्रकार व्यवहार करती है परन्तु सेवा भाव ने उसमें पर्याप्त गम्भीरता ला दी है। वह मेहता की अनियमिताओं को देखकर उन्हें अपने बंगले पर ले आती है और उनकी पूरी देखभाल करती है परन्तु एकान्त में अधिक मिलने का अवसर नहीं देती। अब पासा पलट चुका है। पहले मालती मेहता के पीछे पागल थी, अब मेहता उसके पीछे पागल हैं।

अब मेहता उपास्य से उपासक की परिस्थिति में आ गये हैं। वे अपनी देवी से वरदान मांगते हैं और कहते हैं कि वरदान प्राप्त हो जाने पर उपासक उपास्य में लीन हो जायगा। परन्तु मालती जानती है कि मन के मोह में आसक्त होते ही उनकी मानवता का क्षेत्र संकुचित हो जायगा। उनकी सम्पूर्ण शक्ति नई-नई जिम्मेदारियों को पूरा करने में लगने लगेगी। फिर यह सेवा और त्याग का कार्य कैसे हो सकेगा। इसलिये वह स्पष्ट शब्दों में मेहता से कहती है "तुम्हारे जैसे विचारवान, प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में बन्द नहीं करना चाहती।" और मेहता का एक नया जन्म होता है। वे मालती के चरण पड़कर काँपते हुए स्वर में कहते हैं—"तुम्हारा आदेश स्वीकार है मालती।"

यह मालती की दृढ़ता की मेहता की भौतिकता पर आत्मिक विजय है। प्रेमचन्द ने मालती के इस चरित्र में इतने कौशल का परिचय दिया है कि उनकी इस कला-कृति को देखकर मुग्ध रह जाना पड़ता है। मालती के चरित्र का यह विकास आरम्भ से अन्त तक गुप्त रूप से होता रहता है। ऊपर से तितली के समान रंगी दिखाई देने वाली नारी हृदय से संस्कारी है और मेहता जैसे व्यक्ति का संस्पर्श पाकर उसके ये जन्मजात संस्कार उसके वाह्य रूप को दबाकर ऊपर आ जाते हैं और उसके मधुमक्खी वाले गुण को स्पष्ट कर देते हैं। खन्ना आदि के कलुषित संसर्ग में रहती हुई भी वह अछूती रहती है, केवल अपनी इसी दृढ़ता के कारण। यदि वह विलासिनी होती तो मेहता को पाकर भी क्यों दूर हटा देती। यही संयम, दृढ़ता एवं मानशीलता उसके चरित्र की

आधार-शिला है। इसी कारण प्रेमचन्द ने उसे बाहर से तितली और भीतर से मधुमक्खी कहा है।

प्रश्न १७—सिद्ध कीजिये कि 'गोदान' के पात्र व्यष्टिपरक न होकर वर्ग के प्रतिनिधि रूप में आते हैं।

उत्तर—'कथाकार प्रेमचन्द' के लेखक मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है कि "प्रेमचन्द के चरित्र अक्सर टायप न कि व्यक्ति," बनकर रह जाते हैं, "इसलिए प्राणों की कमी" रहती है। गुप्त जी का कथन है कि यह इस कारण होता है कि प्रेमचन्द प्रायः अपने चरित्रों में एक आकस्मिक परिवर्तन कर देते हैं जो मनोविज्ञान के आधार पर संगत नहीं प्रतीत होता। गुप्त जी का उक्त कथन 'गोदान' से पूर्व लिखे गए उपन्यासों में चित्रित कुछ पात्रों के विषय में ठीक कहा जा सकता है, जहाँ प्रेमचन्द आदर्शवाद की धुन में अपने पात्रों में एकाएक परिवर्तन ला देते हैं जैसे कि 'प्रेमाश्रम' का मायाशंकर अपनी सम्पूर्ण सम्पति का दान कर देता है। परन्तु 'गोदान' में हमें एक भी ऐसा पात्र नहीं मिलता जिसके चरित्र में एकाएक परिवर्तन हुआ हो।

'गोदान' में केवल दो पात्रों के चरित्रों में परिवर्तन दिखाया गया है—मालती और मातादीन। मालती का प्रारम्भिक रूप एक 'नवयुग की प्रतिमा' का रूप है। यह उसका बाह्य रूप है। वह बाहर से तितली और भीतर से मधुमक्खी है। जब वह मेहता जैसे कर्मठ व्यक्ति के सम्पर्क में आती है तो उनके प्रभाव से उसका तितली का रूप शनैः शनैः धुँधला पड़ता जाता है और मधुमक्खी वाला रूप ऊपर उभरता चला आता है। मालती में यह परिवर्तन उपन्यास के अन्तिम भाग में जाकर होता है। प्रेमचन्द ने मालती के चरित्र की विभिन्न दिशाओं का धीरे-धीरे चित्रण कर उसे ऊपर उभारा है। दूसरा चरित्र मातादीन का है। वह प्रारम्भ में एक विलासी, लम्पट और ढोंगी व्यक्ति के रूप में सामने आता है। सिलिया से बाद में किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहता परन्तु जब सिलिया के पुत्र उत्पन्न होता है तो मातादीन का पितृ हृदय अपने पुत्र को देखने के लिए ललक उठता है। और इसी पुत्र की मृत्यु उसे अन्त में, सम्पूर्ण बंधनों को तोड़कर सिलिया से मिला देती है। यह मिलन स्वाभाविक प्रतीत होता है यद्यपि प्रायः ऐसा नहीं होता।

समाज-भीरु व्यक्ति ऐसा साहस कभी-कभी ही कर पाते हैं। इसलिए यह कहना कि प्रेमचन्द के पात्र केवल टाइप बनकर ही रह जाते हैं तथा उनमें अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता, गलत है।

मालती जैसी नारियाँ समाज में खूब होती हैं इसलिए मालती को टायप माना जा सकता है परन्तु मालती के चरित्र में मधुमक्खी की सी जो विशेषता है वह प्रायः ऐसी नारियों में नहीं पाई जाती। यह विशेषता ही मालती को टाइप से ऊपर उठाकर विशिष्ट चरित्र बना देती है। यही बात मातादीन के विषय में भी सत्य है। समाज में मातादीन जैसे लम्पट अनेक होते हैं, इसलिए मातादीन प्रारम्भ में इसी वर्ग के चरित्रों का प्रतिधित्व करने के कारण टाइप के रूप में आता है। परन्तु अन्त में पुत्र की मृत्यु से आन्दोलित होने पर वह टाइप से उठकर विशिष्ट बन जाता है।

प्रेमचन्द के पात्र प्रायः टायप बन कर ही सामने आते हैं परन्तु साथ ही उनका अपना व्यक्तित्व भी स्पष्ट रहता है। उनकी सबकी अपनी-अपनी कमजोरियाँ होती हैं, अपने-अपने गुण होते हैं—इन चरित्रों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि ये टाइप होते हुए भी अपने व्यक्तित्व की विशिष्टता के कारण भिन्न प्रतीत होते हैं। वे अपने युग के प्रतीक होते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों के विभिन्न पात्रों को उनके विभिन्न टाइपों में विभाजित किया जा सकता है। इनके धर्मवादी ढोंगी, अत्याचारी पुलिस के अफसर, लुटेरे जमींदार तथा उनके गुन्डे कारिन्दे आदि एक ही टाइप के चरित्र होते हैं परन्तु फिर भी अपनी पृथक् चरित्रगत विशेषताएँ लिये हुए ही।

'गोदान' के प्रायः सभी पात्र अपने-अपने वर्ग के टाइप बनकर सामने आते हैं। इनमें जमींदार, कारिन्दे, थानेदार, साहूकार, निरीह परन्तु कर्मठ किसान, मिल-मालिक, स्वार्थी पत्रकार, मनमौजी बिगड़े हुए रईस, दलाल, तेजस्वी नारियाँ, नवीन सभ्यता से प्रभावित तथा प्राचीन परम्परा की उपासक स्त्रियाँ, मिल मजदूर पुराने ढर्रे के भाग्यवादी किसान तथा नई रोशनी के जागरुक किसान के बेटे आदि समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं। वे अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व तो करते हैं परन्तु उनकी अपनी चरित्रगत विशेषतायें भी हैं।

होरी एक अपढ़, परिश्रयी, भाग्यवादी एवं कर्मवादी, ईमानदार परन्तु बेईमान, पीड़ितों का सहायक परन्तु स्वयं पीड़ित, पुराने ढर्रे का किसान है। वह धर्म, ईश्वर, बिरादरी आदि सभी का अनुगामी है। निहायत ईमानदार परन्तु झांसेबाज और बेईमान भी है। कर्ज में गले तक डूबा हुआ है फिर भी नया कर्ज लेने की फिराक में रहता है। पाँच बीघे का किसान है। उसे भर-पेट रोटी भी मयस्सर नहीं होती परन्तु मजबूरी से किसानी को अधिक सम्मान-जनक समझता है इस रूप में वह अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। क्योंकि औसत भारतीय किसान के चरित्र में उपरोक्त सारे गुण-अवगुण स्वाभाविक रूप से पाये जाते हैं। परन्तु होरी के चरित्र में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो उसे औसत किसान चरित्र से ऊपर उठा देती हैं। वह हीरा के घर से भाग जाने पर अपने परिवार की चिन्ता छोड़कर उसके काम को पहले सम्हालता है। झुनियाँ को अपने यहाँ आश्रय देता है और सिलिया भी उसी के घर में शरण पाती है। अपने स्वार्थ में डूबा हुआ किसान पहले अपनी चिन्ता करता है उरके बाद परायी। गाँव का अन्य कोई भी किसान कम से कम सिलिया को अपने यहाँ शरण देने का साहस नहीं कर सकता था। उसके यही गुण उसको सामान्य किसान की स्थिति से ऊपर उठा देते हैं। इसी कारण होरी अमर पात्र माना जाता है और सबकी सहानुभूति प्राप्त कर लेता है।

गाँव के साहूकारों का अपना एक अलग वर्ग है और समष्टि रूप से सब उसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। परन्तु जब हम गौर से उसके चरित्रों का अध्ययन करते हैं तो उनमें से प्रत्येक का अपना पृथक् व्यक्तित्व पाते हैं। किसान को सभी चूसते हैं परन्तु उनकी प्रणालियाँ भिन्न हैं। दातादीन ब्राह्मण हैं इसलिए बिना लिखा-पढ़ी के उधार दिए हुए हुए रुपयों को ब्रह्मबल से वसूल करने की धमकी देते हैं। साझेदारी का जाल फैलाकर होरी और उसके परिवार से दिन-रात परिश्रम करवाते हैं। झिंगुरीसिंह नगर के किसी साहूकार के एजेण्ट हैं। इसलिए लिखा-पढ़ी कर रुपया देते हैं और वसूल कर लेते हैं। पटवारी पटेश्वरी पटवारी हैं इसलिए किसानों से बेगार करवाते हैं, रिश्वत लेते हैं और इस तरह हजारों रुपए डकार जाते हैं। नोखेराम जमींदार के कारिन्दा हैं इसलिए बिना रसीद दिए लगान वसूल करते हैं और फिर बकाया लगान की धमकी देकर

किसानों पर आतंक जमाये रहते हैं और उन्हें खूब चूसते हैं। ये सारे साहूकार चरित्रहीन और बेईमान हैं, अन्यायी हैं, बेरहम हैं तथा अपने से शक्तिशाली के सम्मुख दब जाने वाले हैं। किसानों का शोषण करने में सदैव एकमत रहते हैं इसलिए टाइप हैं परन्तु उनके शोषण की तथा दुराचार की प्रणालियाँ भिन्न हैं इसलिए उनका व्यक्तित्व भी भिन्न है।

जमींदार अमरपालसिंह उस वर्ग के जमींदारों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्होंने जमाने की हवा को पहचान कर अपना पुराना सामन्तवादी रूप बदल दिया है परन्तु किसानों के शोषण करने में जरा भी कमी नहीं आने दी है। वे उन जमींदारों में से हैं जो जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए एक तरफ कांग्रेस आन्दोलन में भाग लेकर जेल जाते हैं और दूसरी तरफ सरकार की नजरों में भी स्वामिभक्त बने रहते हैं। वे 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशङ्कर की भाँति किसानों पर अत्याचार नहीं करते परन्तु फिर भी बेगार, नजर-नजराने आदि के रूप में, किसानों के हमदर्द बन कर उन्हें ही सदैव लूटते रहते हैं। इस रूप में वे उन नवीन अवसरवादी जमींदारों के वर्ग के व्यक्ति प्रतीत होते हैं जो समझदार, चालाक, धूर्त और मिठबोले होते थे। परन्तु उनकी अपनी चरित्रगत विशेषतायें भी हैं। वे अन्य जमींदारों के समान विलासी और कामुक नहीं हैं, बुजदिल भी नहीं हैं, अवसर को देखकर झुककर अपना काम निकाल लेने की योग्यता रखते हैं। पढ़े-लिखे हैं, राजनीति में आगे बढ़कर भाग लेते हैं, सम्पत्ति और जमींदारी को अभिशाप घोषित करते हुए भी निरन्तर उसी की अभिवृद्धि के प्रयत्नों में संलग्न रहते हैं। यही विशेषता उन्हें साधारण वर्ग से भिन्न बना देती है।

खन्ना जैसे मिल मालिक आधुनिक समझदार एवं अवसरवादी मिल मालिकों के प्रतीक हैं। उनमें मिल मालिकों के सभी दुर्गुण हैं। गुण एक भी नहीं मिलता। ऐसे नई फैशन अथवा नई रोशनी के मिल-मालिकों के हाथ में ही आज जनता का भाग्य लटक रहा है। खन्ना पूर्णरूपेण टाइप हैं। उनमें कोई विशेषता नहीं।

डाक्टर मेहता उस बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो जनता की समस्याओं को समझते हैं और उन्हें दूर करने का प्रयत्न भी करते हैं। वे प्रगतिशील भी

हैं और प्रतिक्रियावादी भी । उनके प्रेम, विवाह, तलाक आदि सम्बन्धी विचार बड़े विचित्र हैं । कहना तो यही चाहिए कि मेहता वास्तविक पात्र न होकर प्रेमचन्द की आदर्शात्मक कल्पना की उपज हैं । परन्तु मेहता जैसे व्यक्ति जीवन में कम ही मिलते हैं । इसलिए उन्हें हम शुद्ध रूप से टाइप नहीं मान सकते ।

इसी प्रकार का चरित्र मालती का भी है । मालती जैसी नारियाँ समाज में यदा-कदा ही देखने को मिल पाती हैं । मालती न तो शुद्ध रूप में 'नवयुग की प्रतिमा' ही रहती है और न सेवा और त्याग की देवी है । इसलिए उसका चरित्र किसी भी वर्ग की नारियों का प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता । इसका कारण यह है कि प्रेमचन्द ने मालती का चरित्र अपनी कल्पना द्वारा प्रेषित किया है और शुद्ध रूप से कल्पित चरित्र कभी भी टाइप नहीं बन सकता । यदि मालती के चरित्र को दो खण्डों में विभाजित कर दिया जाय तो उसे दो विभिन्न वर्गों का टाइप माना जा सकता है । विलासिनी, चंचल नारी तथा सेवा और त्याग की देवी । परन्तु ऐसा करना असम्भव है । ये दोनों चित्र एक दूसरे के पूरक हैं ।

गोविन्दी सती साध्वी, प्राचीन परम्परा एवं संस्कृति की अनुगामिनी नारी का प्रतिनिधित्व करती है । उसका चरित्र साधारण है अतः केवल टाइप बन कर रह गया है । उसमें प्राणों का स्पन्दन नहीं मिलता । धनिया एक ग्रामीण परिश्रमी अक्खड़ नारी का प्रतीक है जिसमें कठोरता के आवरण में स्नेह एवं करुणा की स्त्रोतस्विनी प्रवाहित होती रहती है । उसके चरित्र की अपनी विशेषतायें हैं जो उसे अन्य ग्रामीण नारियों से ऊपर उठा देती हैं । झुनियाँ और सिलिया को शरण देना उसके व्यक्तित्व को गौरव प्रदान करने वाले कार्य हैं । वह बेईमानी को बुरा समझती है । संकट पड़ने पर भी किसी से नहीं दबाती । दरोगा आदि से भी उसे भय नहीं लगता । पंचों को भी वह खूब खरी-खोटी सुनाती है । उसका स्वाभिमान उसे सदैव कर्मशील बनाये रखता है । संक्षेप में धनिया भारत की उन कतिपय श्रेष्ठ नारियों का प्रतीक है जो मानवता के सम्पूर्ण गुणों को अपने में समेटे हुए जीवन संग्राम में अन्त तक डटी रहती हैं ।

गोबर किसानों की उस नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है जो अत्याचारियों

की असलियत को समझने लगा है। भाग्यवाद, कर्मवाद आदि के ढकोसलों से बहलाया नहीं जा सकता। वह उसी पीढ़ी का प्रतीक है जिसका प्रतिनिधित्व 'प्रेमाश्रम' का बलराज करता है। परन्तु वह बलराज के समान हिंसा द्वारा दमन का प्रतिरोध न कर भाग खड़ा होता है। नगर का आकर्षण उसे खींच ले जाता है और नगर जाकर वह एक साधारण मिल-मजदूर बनकर अनैतिकता के उसी गर्त में गिर पड़ता है जिसमें मजदूरों को जानबूझ कर गिराया जाता है। इसीलिए गोबर को हम उस वर्ग का प्रतिनिधि या टाइप मान सकते हैं जो जागरूक है परन्तु प्रतिकार करने के साधनों से परिचित नहीं है।

इस प्रकार 'गोदन' के अधिकांश पात्र टाइप हैं। वे व्यक्ति-परक नहीं हैं। उनकी अपनी विशेषतायें हैं जो उन्हें टाइप का रूप देते हुए भी उनके व्यक्तित्व को अलग उभार कर रख देती हैं। इसी विशेषता के कारण होरी, रायसाहब, मेहता आदि पात्र पाठक का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। इन विशे-षता-विहीन पात्रों में, जैसे गोविन्दी में, चरित्र का वह उठान नहीं आ पाया है जो अपेक्षित था।

प्रश्न १८—**'गोदान' के देशकाल चित्रण में प्रेमचन्द को कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है ? क्या आलोचकों का यह कथन सत्य है कि उन्होंने इस उपन्यास में अपने युग के ग्राम्य और नागरिक जीवन का समग्रता-पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।**

उत्तर—हम 'गोदान' की कथावस्तु की विवेचना करते हुए पहले कह आए हैं कि इस उपन्यास में ग्रामीण और नागरिक दोनों ही क्षेत्रों की कथा मिले-जुले रूप में आगे बढ़ती है। इन दोनों कथाओं का परस्पर घनिष्ठ संबंध है जो ऊपर देखने पर साधारणतः स्पष्ट रूप में दिखाई नहीं पड़ता। 'गोदान' की रचना १९३६ के लगभग हुई थी, इसलिये इसमें सन् १९३० और ३६ के बीच के युग का चित्रण है। इस समय तक जमींदारी प्रथा अपने अन्याय एवं अत्याचारों के कारण लड़खड़ाने लगी थी। जागरूक विचारक इसे देश का अभिशाप समझने लगे थे। जमींदार अपनी अनैतिक प्रवृत्तियों के कारण देश

भर में अप्रिय हो उठे थे। दूसरी तरफ भारतीय पूँजीवाद पनप रहा था। सन् १९२९–३० की विश्वव्यापी मन्दी ने अँग्रेज पूँजीपतियों की कमर तोड़ दी थी। इसलिए भारतीय पूँजीपति उनका स्थान लेने का प्रयत्न करने लगे थे। देश में कांग्रेस का आन्दोलन सर्वाधिक लोकप्रिय बन चुका था। जमींदार और पूँजीपति, जमाने की बदली हुई हवा को देखकर कांग्रेस के इस आन्दोलन में भाग लेकर अपना हित साध रहे थे। ऐसा करने से उन्हें जनता में सम्मान मिलता था और साथ ही ये अपनी दुरंगी नीति के कारण शासक वर्ग से भी मिले रहते थे। उस समय देश में रायसाहब और खन्ना जैसे दुरंगे राष्ट्रवादियों की कमी नहीं थी। इन जमींदारों और पूँजीपतियों द्वारा किसानों और मजदूरों का समान रूप से शोषण किया जा रहा था। परन्तु शोषण के प्रकार बदल चुके थे। अब किसान डण्डे के बल न दबाया जाकर छल द्वारा दबाया जाता था।

उस समय पनपते हुए भारतीय पूँजीवाद के विकास में योग देने के लिए ग्रामीण साहूकारों से त्रस्त भारतीय किसान धन कमाने की लालसा से शहर जाकर मजदूर बनने लगा था और मिलों के घुटन-भरे वातावरण में दिन भर काम करने के बाद क्षणिक मनोरंजन की लालसा में अपनी सारी कमाई शराब, जुआ आदि में फूँक देता था। नगर का स्वार्थ भरा कलुषित वातावरण उसकी भोली मानवता को नष्ट कर उसे गुण्डा बना देता था।

गाँव के किसानों का कोई भी पुरसा हाल न था। साहूकार, पटवारी, थानेदार, जमींदार के कारिन्दे, पण्डे-पुजारी, स्वयंभू पंच दिनरात उसे सताने और लूटने में लगे रहते थे। पैसे वाला समाज खुलकर दुराचार करता था। किसान की खड़ी खेती नीलाम करवा ली जाती थी, शहर की मिलें मनमाने दामों पर उसकी फसल खरीद लेती थीं, जमींदार बेदखली और बकाया लगान की धमकी देता रहता था। बेगार करवाता था और नजर-नजराने के रूप में भूखे नंगे किसानों के मुँह का अन्तिम ग्राम तक छीन लेने की ताक में लगा रहता था।

नागरिक समाज में भी अनैतिकता का बोलबाला था। खन्ना, तंखा, ओंकारनाथ जैसे धूर्त व्यक्ति सदैव दुराचार में डूबे रहते थे। पैसा ही उनका इष्ट था। रायसाहब जैसे व्यक्ति किसानों की गाढ़ी कमाई को उत्सवों, शादियों

चुनावों आदि में बेरहम होकर लुटाते थे। ऊपर से आदर्श का दिखावा करते थे परन्तु भीतर ही भीतर उनका जीवन खोखला बनता जा रहा था। वे लोग आपस में भी एक दूसरे को लूटने और गला काटने के लिए मतवाले बने रहते थे। वहाँ कोई किसी का मित्र नहीं था, हमदर्दी का जैसे-नाम निशान मिटा दिया गया था। वे लोग पैसे के लिए अपना सम्मान, अपनी गैरत आदि सब कुछ दाँव पर लगा देते थे। यह था उस समय का भारत का असली चित्र जो निराशा और अन्धकार से परिपूर्ण था। जिसमें मेहता जैसे व्यक्तियों को देखकर ही कभी-कभी राहत मिल जाती थी। प्रेमचन्द ने इसी भारत की जीती-जागती तस्वीर 'गोदान' में खींची है। जब हम गोदान के एक-एक पात्र को, उसकी एक-एक घटना को उठाकर देखते हैं तो हमें यह स्वीकार करने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि प्रेमचन्द ने अपने युग की वास्तविक दशा को बड़ी गहराई और सूक्ष्मदर्शिता के साथ समझा था और गोदान के रूप में उसका सवाक चित्र अङ्कित किया था।

अब हम 'गोदान' के आधार पर यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि प्रेमचन्द को शोषण की उस मशीन की कार्य प्रणाली और उसके प्रभाव का अंकन करने में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है। 'गोदान' में ग्रामीण एवं नागरिक समाज परस्पर अन्योन्याश्रित होकर चलते हैं इसलिए उनका पृथक् विश्लेषण करना पड़ेगा।

'गोदान' में चित्रित **ग्रामीण समाज की दशा अत्यन्त दयनीय है**। प्रत्येक किसान परिवार की कथा आर्थिक अभावों की कभी न समाप्त होने वाली एक लम्बी कथा है। उनकी दुर्दशा के मूल में आर्थिक अभाव ही प्रधान कारण है। पैसा पास न होने से किसानों के बच्चे अशिक्षित रह जाते हैं। अशिक्षित रहने के कारण उनमें परस्पर विद्वेष, असहनशीलता, अन्ध-रूढ़ियों के प्रति दृढ़ आस्था भाग्यवाद और कर्मवाद पर अमिट विश्वास, लड़ाई-झगड़े, स्त्रियों की दीन दशा अशिष्टता आदि दुर्गुण अपना प्रभाव जमाये रहते हैं। सम्मिलित परिवार की प्रथा टूट सी चुकी है। गाँव में एक भी घर ऐसा नहीं मिलता जिसमें दो भाई मिलकर एक साथ रहते हों। सम्मिलित शक्ति की उपयोगिता को गाँव वाले भूल चुके हैं। उनमें परस्पर एकता का अभाव है। होरी पर जब-जब संकट

आते हैं तो वह अपने को निन्तात एकांकी अनुभव करता है। गाँव वाले तो दूर रहे, उसके अपने सगे भाई भी उसकी सहायता को नहीं आते। पुरुष नारी को अपनी सम्पत्ति समझता है। मार-पीट और गाली-गलौज उनके दैनिक जीवन का एक स्वाभाविक कर्म बन गया है। बड़े छोटे से प्रेम नहीं करते और छोटे बड़ों का सम्मान करना भूल गए हैं। मथुरा का बाप मथुरा को जूतों से मारता है और उधर भोला का पुत्र कामता भोला को मारपीट कर घर से निकाल बाहर करता है। संक्षेप में पारस्परिक सौहार्द्र का पूर्ण अभाव है।

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने लखनपुर गाँव के रूप में ग्रामीणों की एकता का एक कल्पित चित्र अंकित किया था और 'गोदान' तक आते-आते वे यह अनुभव करने लगे थे कि वह केवल कल्पित चित्र ही था। वास्तविकता इसके विपरीत थी। भारत का किसान एके और प्रेम को भूल चुका है। वह समाज में रहते हुये भी अपने को नितान्त एकांकी अनुभव करता है। इसी कारण 'गोदान' का होरी अकेला है। सब उसे लूटते हैं परन्तु कोई सहायता का हाथ नहीं बढ़ाता। इसी कारण कहा जाता है कि 'गोदान' 'प्रेमाश्रम' का प्रायश्चित है। 'गोदान' में भी कभी-कभी एके का रूप दिखाई पड़ता है परन्तु उसमें भी व्यक्तियों के निहित स्वार्थों की भावना ही प्रधान रहती है। जब भोला होरी के बैल खोलकर ले जाने लगता है तो दातादीन आदि गाँव वाले इसे गाँव की इज्जत का सवाल बनाकर बैलों को भोला से छीन लेने के लिये इकट्ठे हो जाते हैं। साहूकारों को ही इसकी चिन्ता सबसे अधिक है क्योंकि यदि होरी के बैल चले गये तो होरी खेती कैसे करेगा और यदि खेती न करेगा तो उनके रुपये कैसे पटेंगे।

गाँव के पंच स्वयं दुराचार में लिप्त हैं। मातादीन चमारिन को रखे हुये हैं, झिंगुरीसिंह ने ब्राह्मणी घर में डाल ली है, नोखेराम अहीरन को रखे हुए हैं परन्तु गाँव का कोई भी व्यक्ति उनसे कुछ नहीं कह पाता क्योंकि उनके पास पैसा है और उस पैसे के बल पर वे पंच बने बैठे हैं तथा जमींदार और पुलिस का उनकी पीठ पर हाथ रहता है। परन्तु होरी जब झुनियाँ को अपनी पुत्रवधू मानकर घर में शरण देता है तो नैतिकता के ये ठेकेदार चौंक उठते हैं। क्योंकि

इससे गाँव की बहू-बेटियों की इज्जत खतरे में पड़ गई है। होरी गरीब है, अकेला है इसलिए उससे जुर्माने की लम्बी रकम वसूल की जाती है और होरी के बच्चे भूख से तड़पने लगते हैं। यह है हमारे पंचों का आदर्श न्याय।

गाँव में कोई भी किसान ऐसा नहीं है जिस पर बेदखली न आई हो, बकाया लगान की डिग्री न हुई हो। बेदखली और लगान की डिग्री करवाने वाले पटवारी और कारिन्दा गाँव के साहूकार हैं, और लोग भी हैं। संकट-ग्रस्त किसान अन्ततः इन्हीं की शरण में जाता है और इन्हीं से रुपया उधार लेकर इन्हीं को दे देता है। उसे लगान की रसीद नहीं दी जाती परन्तु जब वह रुपया उधार लेता है तो उससे कागज लिखवा लिया जाता है। और जो लोग कागज बिना लिखवाये ही रुपये उधार देते हैं उनके पास दूसरे हथियार हैं जिनके बल पर वे ३०) देकर २००) वसूल करने का साहस दिखाते हैं जैसे पण्डित दातादीन। वे ब्राह्मण हैं इसलिए होरी को धमकी देते हैं कि यदि उसने रुपए न दिए तो वे मरने के बाद ब्रह्मराक्षस बनकर उसके कुटुम्ब का सत्यानाश कर देंगे। होरी में भला इतना साहस कहाँ कि इस भयंकर धमकी पर अविश्वास कर सके। अशिक्षित, अपढ़ किसान जो ठहरा।

गाँव में धर्म की रूढ़ियाँ अपना विशेष महत्व रखती हैं। भाग्यवाद, कर्मवाद, ब्राह्मण पूजा आदि रूढ़ियों का प्रचार धर्म की ही आड़ में किया जाता है। जो इन रूढ़ियों को एकनिष्ठ होकर पालन करता है वही धर्मात्मा है। दातादीन और उनके सुपुत्र मातादीन धर्मात्मा ब्राह्मणों के लिए निर्धारित सभी बाह्य कर्मों का पालन करते हैं। दातादीन कस कर सूद लेते हैं, किसानों को चूसते हैं फिर भी पूज्य बने रहते हैं। मातादीन चमारिन को रखे हुए हैं परन्तु उसके हाथ का नहीं खाते और कथा-भागवत बाँचते हैं इसलिए पूज्य हैं। चमार उन्हें पकड़कर उनके मुँह में गाय की हड्डी ठूँस देते हैं परन्तु वे तीन सौ रुपए बिगाड़ कर काशी के पण्डितों द्वारा प्रायश्चित करवा कर पुनः शुद्ध हो जाते हैं। भाग्यवाद होरी जैसे किसानों की विद्रोह भावना को दबाये रखता है। होरी को यह विश्वास है कि उसे संकट इसलिए झेलने पड़ते हैं क्योंकि उसके भाग्य में ऐसा ही लिखा है। रायसाहब इसलिए मौज करते हैं क्योंकि उन्होंने पूर्वजन्म में पुण्य कर्म किए होंगे। जब होरी ने पूर्वजन्म में कुछ संचा ही नहीं तो भोगे कहाँ से।

परन्तु गाँव में गोबर के रूप में एक ऐसी पीढ़ी का उदय भी हो रहा है जो इन सब बातों को मक्कारी समझता है और उनका खुलकर विरोध करता है कि—"यह सब कहने की बातें हैं।" मगर उसे यह नहीं मालूम कि उनका प्रतिकार कैसे करे।

किसानों का सारा जीवन आर्थिक अभाव की इस भयङ्कर चक्की में पिसते हुए असमय में ही मुरझा जाता है। धनिया छत्तीसवें वर्ष में बुढ़िया हो जाती है। घी दूध इन्हें अंजन लगाने तक को भी मयस्सर नहीं होता। ऐसी स्थिति को देख-देख कर धनिया सोचती है कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा; किसके द्वार पर भीख माँगेंगे और होरी को विश्वास हो जाता है कि—"साठे तक पहुँचने की नौबत नहीं आने पायेगी। इससे पहले ही चल देंगे।" और सचमुच वह उससे पहले ही चल देता है। उसने जीवन-पर्यन्त कठोर परिश्रम किया, जमींदार को लगान के अलावा नजर-नजराने दिए, साहूकारों से ३०) लेकर २००) चुकाए। अपने इस अभाव को पूरा करने के लिए वह सदैव कर्ज लेने के नए-नए ढङ्ग सोचता रहा, भाइयों के साथ पाँच रुपये की बेईमानी करने की कोशिश की परन्तु इस समस्या को अन्त तक न सुलझा सका। क्योंकि यदि उसकी आर्थिक समस्या ही सुलझ जाती तो जमींदार और उसके कारिन्दों, गाँव के साहूकारों, पटवारियों- धर्म के ठेकेदारों, पुलिस, नगर के मिल मालिकों और इन सब के ऊपर रहने वाले उस अंग्रेज का पेट कैसे भरता ? हम अत्याचार तभी सह लेते हैं जब हम निर्बल होते हैं और हम निर्बल तभी होते हैं जब हमारे पास पैसा नहीं होता। अगर हमारे पास पैसा हो तो हम किसी के अत्याचार को क्यों सहन करने लगे। अंग्रेज इस बात को जानते थे। इसीलिये उन्होंने सदैव यही प्रयत्न किया कि किसान सदैव अन्धकार में रहे, उसे अपनी शक्ति, एकता और वास्तविक स्थिति का ज्ञान न होने पावे और इसके लिए उन्होंने जनता में शिक्षा का प्रचार होने से रोका। क्योंकि शिक्षा ही एकमात्र ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति सत्य का, वस्तु-स्थिति का ज्ञान प्राप्त करता है और ऐसी स्थिति आ जाने पर अत्याचारियों का शोषण का चक्र छिन्न-भिन्न हो जाता है। फिर अंग्रेज अपने ही पैरों में अपने हाथों कुल्हाड़ी क्यों मारते।

ग्रामीण समाज की उपरोक्त मजबूरियों (हम इन्हें दोष नहीं कह सकते) ने उनमें और भी ऐसी खराबियाँ पैदा कर दी थीं जिनके कारण उनका जीवन विषम बन गया था। थोथी मरजाद की रक्षा-भावना ऐसी ही बुराई थी। धनिया जैसी जागरूक नारी भी इसके चंगुल में फँसी हुई थी। इन गाँव वालों का नीति-शास्त्र विचित्र था। वे हाथी को तो निगल जाते थे परन्तु मक्खी को निगलने में हिचकिचाते थे।

इन बुराइयों के अतिरिक्त **ग्रामीण समाज में कुछ ऐसी विशेषताएँ** भी हैं जो बरबस हमारा ध्यान खींच लेती हैं। होली पर सब मिलकर उत्सव मनाते हैं, नकलें उतारते हैं उस समय सारा भेदभाव भूल जाते हैं। किसानों में एक दूसरे के प्रति हमदर्दी है। बुराई को बुराई ही कहना उनका स्वभाव है। नोहरी के कारण भोला की दुर्दशा को देखकर होरी उससे अपने गाँव लौट जाने की बात कहता है। नोहरी की दुश्चरित्रता को गाँव में कोई भी अच्छा नहीं समझता इसीलिए सब उससे कतराते रहते हैं। गाँव के युवकों का चरित्र पतित नहीं है। गाँव में सब एक दूसरे की खुशी में शामिल होते हैं। होरी की गाय को देखने सारा गाँव उमड़ पड़ता है। भोला द्वारा होरी के बैल खोल लेने की खबर पाकर गांव के अनेक किसान उसकी सहायता करने आ जाते हैं। होरी निर्धन है परन्तु उसकी नीयत साफ रहती है। वह सबका रुपया चुकाना चाहता है, चाहे उसकी लिखा-पढ़ी हुई हो अथवा न हुई हो वह बेईमानी नहीं करना चाहता। इसी कारण जब गोबर दातादीन को बैंक की दर से ब्याज देने की बात कहता है तो होरी उसे समझाता है—"नीति हाथ से न छोड़नी चाहिए बेटा, अपनी-अपनी करनी अपने-अपने साथ है।" ऐसे ईमानदार आदमी को भी जीवन में सुख-चैन नसीब नहीं हो पाता। होरी इसे कर्मफल मानता है परन्तु प्रेमचन्द उसकी इस दुर्दशा के लिए समाज के संगठन को दोषी ठहराते हैं जो वास्तविकता है।

यह तो है हमारे ग्रामीण समाज की स्थिति जिसमें मानवता है, ईमानदारी है, सच्चरित्रता है परन्तु साथ ही इन सारे गुणों को नष्ट कर डालने का प्रयत्न करने वाले शोषकों की दानवता भी है। यही हमारे ग्रामीण समाज का यथार्थ चित्र है।

इसकी तुलना में नागरिक जीवन अधिक जटिल और विषम है। 'गोदान' में नागरिक जीवन का केवल वही अंश दिखाया गया है जिसका ग्रामीण जीवन से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इसमें केवल दो वर्गों का चित्रण है—उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। नगर जीवन की रीढ़-मध्यम-वर्ग—का चित्रण किंचित भी नहीं मिलता। क्योंकि इस वर्ग का जीवन केवल नगर से ही सम्बन्धित रहता हैं। उच्च वर्ग में रायसाहब, खन्ना जैसे ताल्लुकेदार एवं धनपति हैं। मिर्जा खुर्शेद भी कभी लखपति रह चुके हैं। औंकारनाथ, तंखा आदि ऐसे मक्कार और ढोंगी लोग हैं जिनका गुजारा उच्चवर्ग की चापलूसी एवं अपनी मक्कारी द्वारा ही होता है। मेहता और मालती भी प्रायः इसी उच्चवर्गीय समाज में उठते-बैठते हैं। निम्नवर्ग में गोबर और उसके साथ या पड़ोस में रहने वाले मजदूर लोग हैं या इक्केवाले या खोंचा लगाने वाले लोग हैं जिनमें से अधिकाँश गाँव से आए हुए किसान ही हैं। इस प्रकार 'गोदान' में नागरिक जीवन का समग्र चित्र नहीं मिलता।

नगर में बड़े-बड़े आदमी रहते हैं। ऐसे लोग भी रहते हैं जो इन बड़े आदमियों को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। प्रेमचन्द का कथन है कि धन और मनुष्यता में शाश्वत शत्रुता है। नगर के बड़े आदमियों के पास जो धन आता है वह मानवता की हत्या कर, गरीब बेकसों को चूसकर ही आता है और इस रक्त में सने धन के साथ आती है उन बेकसों की गहरी आह और अभिशाप। इसलिए यह धन नगर में आकर अपना चमत्कार दिखाता है। इस धन को हड़पने के लिए सबसे पहले परिवार वाले दाँत लगाते हैं। "यहाँ तक कि चचेरे, मौसेरे, फुफेरे भाई ही घी के चिराग जलाते हैं। ये लोग अपने सम-व्यवसायियों की दुर्दशा, विपत्ति, पतन को देखकर खुलकर हँसते हैं। इसलिए नहीं कि इससे उन्हें कोई लाभ होता है। "बड़े आदमियों की यह ईर्ष्या केवल आनन्द के लिए है। बड़ों को नीचता और कुटिलता में ही निस्वार्थ और परम आनन्द मिलाता है।"

उपरोक्त नीचता और कुटिलता के कारण ही इस नागरिक उच्चवर्ग से पारस्परिक सहानुभूति और समवेदना का जैसे लोप सा हो गया है। इस वर्ग का प्रत्येक प्राणी हरदम केवल अपनी ही स्वार्थ-साधना की फिराक में लगा

रहता है । जब ये लोग परस्पर किसी उत्सव आदि के अवसर पर मिलते हैं तो उस उत्सव में योग देने के स्थान पर अपनी तिकड़म भिड़ाने में लगे रहते हैं । रायसाहब के यहाँ हुए धनुष यज्ञ के उत्सव पर नगर के उपरोक्त सभी लोग एकत्रित होते हैं, परन्तु उस उत्सव का आनन्द उठाने की उपेक्षा खन्ना रायसाहब से अपनी शुगर मिल के शेयर खरीदने और बीमा की पालिसी लेने का अनुरोध करते हैं । मिर्जा खुर्शेद द्वारा आयोजित कबड्डी मैच के अवसर पर सम्पादक ओंकारनाथ गोविन्दी की खूब प्रशंसा कर अन्त में उनसे अपने पत्र की संरक्षिका बन जाने का प्रस्ताव रखते हैं । रायसाहब की कमजोरी को पकड़ कर उनसे डेढ़ हजार रुपए चन्दे के रूप में वसूल कर लेते हैं ।

गाँव वाले अपनी 'मरजाद' की रक्षा अपनी शक्ति भर करते हैं परन्तु नगर वालों की 'मर्यादा' बहुत भारी होती है । वे उसकी रक्षा के लिए अपना सर्वस्व दाँव पर लगा देते हैं । रायसाहब खन्ना जैसे धूर्त मित्र से रुपया उधार लेकर राजा साहब के खिलाफ मर्यादा की रक्षार्थ ही चुनाव लड़ते हैं । राय-साहब आर्थिक संकट में ग्रस्त हैं । अपनी अनेक समस्याओं को सुलझाने के लिए कर्ज लेने की फिराक में है कि इसी समय मेहता व्यायामशाला के लिए चन्दा लेने आ पहुँचते हैं । रायसाहब राजासाहब के नाम के आगे पाँच हजार की रकम लिखी देखकर स्वयं भी अपने नाम के आगे पाँच हजार लिख देते हैं क्योंकि ऐसा न करने से उसकी मर्यादा की रक्षा नहीं हो सकेगी ।

इन तथाकथित बड़े आदमियों का कुलगर्व भी देखने लायक है । रायसाहब स्वयं मालती के साथ मिलते-जुलते रहते हैं और इसमें कोई बुराई नहीं समझते । यह तो उनकी दृष्टि में मनोरंजन है । ऐसा करने से उनका कुलगर्व आहत नहीं होता । यह काय तो उनके पुरखों के जमाने से होता चला आया है । परन्तु अब उनका लड़का रुद्रपाल मालती की छोटी बहन से विवाह करने की बात कहता है तो रायसाहब का कुलगर्व जाग्रत हो उठता है और वे प्राणपण से इस सम्बन्ध का विरोध करते हैं । कुल एवं स्थिति में रायसाहब उन्हें सदैव हेय दृष्टि से देखते आए हैं । परन्तु रायसाहब के चुनाव मे विजयी हो जाने ओर प्रान्त का होम मेम्बर बन जाने के उपरान्त जब राजासाहब रायसाहब के लड़के के साथ अपनी लड़की की सगाई की बात चलाते हैं तो रायसाहब फूले नहीं

समाते। आज उनका जीवन सार्थक हुआ है। आज उन्हें स्वर्ग की नियामत प्राप्त हुई। किसानों की गाढ़ी कमाई इन धूर्त, छली, मक्कार, नैतिकता से हीन व्यक्तियों के हाथों में पड़कर इसी तरह पानी की तरह बहाई जाती है। अगर किसान न होते तो इन लोगों के ये गुलछर्रे, ये एशोआराम, यह कुलगर्व किस आधार पर टिक सकता था।

हमारा जमींदार वर्ग कितना निर्बल, कितना पतित, कितना मक्कार और कमीना हो गया है, रायसाहब अमरपालसिंह इसके सबसे ज्वलन्त प्रतीक हैं। वे किसानों के शुभेच्छु बनते हैं, जमींदारी प्रथा और सम्पत्ति की मानवता का अभिशाप कहते हैं परन्तु साथ ही यह दलील भी देते हैं कि अगर वे किसानों को न लूटें तो उनका लाखों का खर्च कैसे चले। उनका तर्क यह है कि वे किसानों के शुभेच्छु हैं इसलिए किसानों को लूटने का उन्हें एकमात्र और पूर्ण अधिकार है। प्रेमचन्द इन लोगों के हथकन्डों को खूब समझते थे इसलिए उन्होंने ऐसे लोगों की कलई खोलना अपना कर्त्तव्य समझा था। आज भी कांग्रेस में इन लोगों का महत्वपूर्ण स्थान है। जमींदारियाँ चली गईं मगर इन लोगों के ऐशोआराम में कोई कमी नहीं आने पाई। उधर नगर में जमींदारों की भाँति शोषकों तथा पूँजीपतियों के प्रतिनिधि खन्ना हैं। वे भी दो बार कांग्रेस के लिए जेल हो आये हैं। खद्दर पहनते हैं और फ्रांस की शराब पीते हैं। इस प्रकार जमींदार और पूँजीपति मिलकर जनता का शोषण कर रहे थे। प्रेमचन्द ने इस रहस्य को समझ लिया था इसलिए इनके वास्तविक रूप का उद्घाटन कर जनता को यह समझाने का प्रयत्न किया कि इनसे सावधान रहो।

पूँजीवाद विदेशी वस्तु था इसलिए अपने साथ विदेशी सभ्यता की वे सब विकृतियाँ भी ले आया था जिसने हमारे नागरिक जीवन को कलुषित बना रखा था। जमींदारी प्रथा भी एक तरह से विदेशी ही थी। इन लोगों को कम परिश्रम कर बहुत अधिक लाभ होता था इसलिए हराम का पैसा उन्हें जीवन के कलुषित मनोरंजनों की ओर वलात् खींच ले जाता था। खन्ना की अनैतिकता इसी का परिणाम थी। उच्चवर्ग इसलिए अनैतिक था क्योंकि उसके पास जरूरत से ज्यादा पैसा आता था। निम्नवर्ग एवं मध्यवर्ग इसलिए दुराचारी था

क्योंकि उसके पास अपनी जरूरतों के लिए भी पूरा पैसा नहीं जुट पाता था। इसलिये नैतिक दृष्टि से नगर गाँवों से अधिक पतित थे।

झुनियाँ ने एक पण्डित जी की तथा गवड़ू नामक एक कश्मीरी सज्जन की तीन जवान लड़कियों के मनचलेपन के किस्से सुनाये। नगर की पढ़ी लिखी स्त्रियाँ अधिकांशतः मुक्त भोग की समर्थक बनती जा रहू थीं। क्योंकि विवाह उनकी दृष्टि में वन्धन था और इसलिए जीवन की सम्पूर्णता के लिये बाधक भी। 'स्वच्छन्द-विहार' को वे अधिक अच्छा समझती थीं। डाक्टर मेहता जैसे व्यक्ति भी मुक्त भोग के कायल थे, यद्यपि पाश्चात्य प्रभाव को हमारे नारी समाज के लिये घातक समझते थे। मेहता का कहना था या तो विवाह करो ही मत और यदि करो तो उसे अन्त तक निबाहने का प्रयत्न करो क्योंकि विवाह एक सामाजिक समझौता है जिसे तोड़ा नहीं जा सकता। मालती भी प्रारम्भ में स्वच्छन्द विहार को अच्छा समझती थीं। मगर शहर में गोविन्दी जैसी स्त्रियाँ भी थीं जो भारतीय नारी की मर्यादाओं का एकनिष्ठ होकर पालन करती थीं। परन्तु बदले में उन्हें सदैव अपमान मिलता था। इस प्रकार नगर में भारतीय एवं पाश्चात्य सभ्यता के मिश्रण से एक नई सभ्यता का उदय हो रहा था जिसमें पश्चात्य सभ्यता के घोर भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण विकृतियों की ही प्रधानता थी।

नगर के निम्नवर्ग में ग्रामीण किसानों की ही भाँति दरिद्रता का साम्राज्य था। परन्तु नैतिक दृष्टि से यह वर्ग उच्चवर्ग में श्रेष्ठ था। इसमें परस्पर सद्-भावना और सौहार्द्र था। झुनियाँ के बच्चा होने के समय चुहिया जैसी नारी ने उसकी निस्वार्थ भाव से सेवा की थी। वैसे भी ये लोग एक दूसरे के सुख दुख में भाग लेते थे। इन लोगों का जीवन बहुत कुछ हमारे किसानों के ही समान था परन्तु मजदूर वर्ग में, मिलों के घुटन-भरे वातावरण ने अनेक विकृ-तियाँ उत्पन्न कर दी थीं जिन्हें मिल-मालिकों की ओर से सदैव बढ़ावा मिलता था। ये लोग शराब पीते थे, जुआ खेलते थे और आपस में झगड़ा कर बैठते थे। इसलिये समाज इन्हें असभ्य, गुण्डा और नीच समझता था। उच्चवर्ग भी काम तो यही करता था परन्तु अपनी शिक्षा और धन के बल से अधिक

कलात्मक और सुसंस्कृत ढंग से करता था। खन्ना मजदूरों की तरह ठर्रा न पीकर फ्रांस की शराब पीते थे और कौड़ियों से जुआ न खेलकर सट्टेबाजी में लम्बे-लम्बे दाँव मारते थे। मगर समाज की दृष्टि में खन्ना जैसे लोग 'बड़े आदमी' और 'सभ्य' थे तथा गोबर और अलादीन जैसे लोग 'असभ्य' और 'नीच' थे। बड़े आदमियों का दान-धर्म सब अपने स्वार्थ के लिये होता था। इसके विपरीत ये छोटे समझे जाने वाले लोग अपने बराबर वालों को नीचा दिखाना चाहते हैं और न उनमें अहंकार ही है क्योंकि उन्हें अपने पेट के लिये रोटी जुटाने से ही अवकास नहीं मिल पाता फिर अहंकार किस बलबूते पर दिखाये।

संक्षेप में नगर और गाँव दोनों ही स्थानों पर दो वर्गों का संघर्ष चल रहा था और आज भी यही स्थिति है। ये दो वर्ग हैं शोषक और शोषितों के। शोषकों में रायसाहब जैसे आदर्शवादी जमींदार और खन्ना जैसे अपने को जनता का आदमी समझने वाले पूँजीपति हैं। ये लोग असली शिकारी हैं जो निरन्तर सिंह के समान निर्बलों का शिकार करते रहते हैं। इनके शिकार पर ग्रामीण साहूकार, कारिन्दे, पटवारी, पुलिस रूपी चील कौवे भी अवसर देखकर झपट्टा मारने में नहीं चूकते। शोषितों में हैं किसान और मजदूर। ये होरी के समान जीवन भर जी-तोड़ मेहनत करते हैं परन्तु फिर भी उन्हें भरपेट रोटी मयस्सर नहीं होती। नैतिक दृष्टि से ये लोग शोषकों से कहीं अधिक और उन्नत हैं। समाज में इन्हीं का बहुमत है। शोषक तो मुट्ठी भर हैं परन्तु फिर भी इस बहुमत को सदैव दबाये रहते हैं और इस दबाये रखने के लिये राज्य, कानून, पुलिस, धर्म, अशिक्षा, अत्याचार आदि की सहायता लेते रहते हैं। धर्म ने शोषितों को भाग्यवादी बना दिया है; निरन्तर होने वाले अत्याचारों ने उनका नैतिक साहस भंग कर दिया है; अशिक्षा ने उन्हें अपने अधिकारों को पहचानने की शक्ति से वंचित कर रखा है। प्रेमचन्द ने उस समय की देश की इस स्थिति को गम्भीरता के साथ समझा उनकी दृष्टि में आजादी का मतलब अँग्रेजी झण्डे के बाहर चले जाने के साथ-साथ इस निर्धन जनता के कष्टों का निराकरण करना भी था। इसलिए उन्होंने 'गोदान' में उन मूल कारणों पर प्रकाश डाला

था जो भारतीय जनता को खाये जा रहे थे, उसे विकास करने का अवसर नहीं देते थे।

प्रश्न १९—'गोदान' की भाषा-शैली पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

उत्तर—भाषा द्वारा ही साहित्यकार अपने भावों को पाठकों तक प्रेषित करता है। भाव पाठकों तक स्पष्ट और शक्तिशाली रूप मे पहुँचे इसके लिए लेखक के लिये भाषा पर अधिकार आवश्यक होता है, भावों को प्रेरित करने का प्रत्येक साहित्यकार का अपना तरीका होता है। यह तरीका उसका अपना होता है और इसे ही 'शैली' नाम से अभिहित किया जाता है। उपन्यास में जहां लेखक के भाषाधिकार को देखा जाता है वहाँ यह भी देखा जाता है कि उसकी शैली कहां भावों को सुन्दर ढंग से व्यक्त करने में सफल हुई है।

प्रेमचन्द ने हिन्दी-कथा साहित्य को जहाँ नये भाव और नये विचार दिये वहाँ भाषा शैली की दृष्टि से भी उनकी देन कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जिस समय प्रेमचन्द ने साहित्यक क्षेत्र में कदम रखा था उस समय हिन्दी लेखकों का झुकाव मुख्यतः दो प्रकार की शैलियों के प्रति अधिक था। लेखकों का एक वर्ग संस्कृत के तत्सम शब्दों का बहुलता से प्रयोग करता था तथा दूसरा वर्ग अरबी-फारसी के तत्सम एवं अप्रचलित शब्दों का। इसी प्रवृति के कारण उस समय भाषा के क्षेत्र में हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी का झगड़ा जोर पकड़ रहा था। लेखकों के उपरोक्त दोनों वर्गों की भाषा जन-साधारण की भाषा के स्तर से दूर थी। अतः प्रेमचन्द ने भाषा का बिना संस्कृतीकरण या फारसी-कारण किये एक ऐसी भाषा-शैली का पुनः प्रणयन किया जो स्वाभाविक, सशक्त और विचार-पूर्ण थी। दूसरे शब्दों में उन्होंने भारतेन्दु युग की लुप्त प्रायः भाषा शैली का पुनरुद्धार कर उसे अधिक शक्ति एवं गम्भीरता प्रदान की। अपनी सरल, प्रभावपूर्ण और सजीव भाषा शैली के कारण वे इतने लोकप्रिय हुए।

प्राचीन संस्कृति के उपासकों के प्रयत्नों के कारण हिन्दी भाषा की स्वाभाविकता और ग्राहिका शक्ति कम होती जा रही थी, जिससे भाषा जनता

से दूर हट गई थी। दूसरी बात यह थी कि उसमें परिष्कार और प्रवाह की गंगा के समान उन्मुक्त प्रवाह की—आवश्यकता थी जिससे वह जनमत के तत्वों को स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती रहे। प्रेमचन्द ने अपनी नवीन शैली द्वारा उपरोक्त दोनों कमियों को दूर किया था। जनता की ही बात जनता की भाषा में कहकर प्रेमचन्द ने जनता का जो स्नेह एवं सौहार्द्र प्राप्त किया उसकी मिसाल हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में मिलनी दुर्लभ है।

प्रेमचन्द जी साहित्य के निर्माण में भाषा को बहुत महत्व देते थे। उन्होंने साहित्य की व्याख्या करते हुए लिखा है—"साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो।" उस समय उच्चवर्गीय लेखक संस्कृत और फारसी के मोह में लिप्त रहने के कारण भेद की खाई को चौड़ा कर रहे और भाषा को जनता से दूर हटाते चले जा रहे थे। एक तीसरा वर्ग उस समय भी था जो भाषा, संस्कृति आदि के क्षेत्र मे पूर्णतः अंग्रेजी का भक्त था और फिर भी भारत की आजादी की मांग उठा रहा था। प्रेमचन्द इस वर्ग के उस घातक रूप को आज से कई शताब्दियों पूर्व ही पहचान गये थे और उन्होंने लिखा था—

"अंग्रेजी राजनीति का, व्यापार का, साम्राज्यवाद का, हमारे ऊपर जैसा आतंक है, उससे कहीं ज्यादा अंग्रेजी भाषा का है। अँग्रेजी राजनीति से, व्यापार से, साम्राज्यवाद से आप बगावत करते हैं, लेकिन अँग्रेजी भाषा को आप गुलामी के तौक की तरह गर्दन में डाले हुए हैं।" प्रेमचन्द इस गुलामी के तौक को हटाकर जन भाषा हिन्दी के हार को उनके गले में पहनना चाहते थे। इसका कारण यह था कि ये अँग्रेजी के भक्त जनता से दूर रहते थे इसलिये जनता की असली समस्याओं को समझने में असमर्थ रहते। अँग्रेजी की गुलामी का यह तौक इन लोगों की गर्दन में इतना कसकर बैठ गया था कि आज भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर भी दूर नहीं हो सका है। इसी के परिणामस्वरूप राष्ट्र के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा हिन्दी को राष्ट्र भाषा घोषित कर देने के उपरान्त भी उसे पन्द्रह वर्ष के लिये निर्वासन का सा दंड दिया गया है। दक्षिण भारत के कुछ अत्यन्त प्रभावशाली नेता उसी अँग्रेजी के कारण अब

भी यह राग अलाप रहे हैं कि भारत की राष्ट्रभाषा अँग्रेजी को ही बनाया जाय। हमारे बंगाली भाई भी पूर्ण मनोयोग के साथ इस आन्दोलन में उनका साथ दे रहे हैं। प्रेमचन्द अँग्रेजी के इस भयंकर प्रभाव से उत्पन्न खतरे को बहुत पहले समझ गये थे और इसीलिए उन्होंने खुलकर उसका विरोध किया था। सच्चे युग द्रष्टा कलाकारों की यही विशेषता होती है।

भाषा-विषयक प्रेमचन्द के उपरोक्त मन्तव्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द ने हिन्दी उर्दू के सम्मिश्रण का प्रयत्न अकारण ही नहीं किया था। इस प्रयत्न में उनका एक जबर्दस्त उद्देश्य था और उसकी पूर्णता के लिये वे आजीवन प्रयत्नशील रहे। इसी कारण बहुत दिनों से हिन्दी क्षेत्र में एक स्वर से यह मांग उठाई जा रही है कि हमारी राष्ट्रभाषा का स्वरूप 'प्रेमचन्दी हिन्दी' होना चाहिये क्योंकि वही ऐकमात्र ऐसी भाषा है जिसे जनता समझती और बोलती है। राष्ट्रीय जागरण के लिये आज इसी भांषा की जरूरत है।

भाषा-विषयक प्रेमचन्द के उपरोक्त दृष्टिकोण का विरोध करते हुए कुछ विद्वानों ने यह आवाज उठाई थी कि बोलचाल की भाषा में और साहित्यिक लिखित भाषा में पर्याप्त अन्तर होता है इसीलिये साहित्य के क्षेत्र में बोलचाल की भाषा को अपनाने से साहित्य की हानि होगी। प्रेमचन्द ने इसका उत्तर देते हुए लिखा था कि "यह जरूर सच है कि बोलने की भाषा और लिखने की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहता है। लेकिन लिखित भाषा सदैव बोलचाल की भाषा में मिलते-जुलते रहने की कोशिश किया करती। लिखित भाषा की खूबी यही है कि बोलचाल की भाषा से मिले। इस आदर्श से वह जितनी दूर हो जाती है उतनी ही अस्वाभाविक हो जाती है।"

'गोदान' भाषा-शैली की दृष्टि से अद्वितीय उपन्यास है। इस उपन्यास में भाषा-शैली, पात्र, देश के अनुसार चलती है लेकिन इस रूप में भी वह पहले से नवीन है और अधिक सशक्त रूप लिये हुए है। 'गोदान' का मुसलमान पात्र सरल उर्दू बोलता है।

'गोदान' के मुसलमान-पात्रों की इस भाषा की तुलना में प्रेमचन्द लिखित "अमावस्या की रात्रि" नामक कहानी के एक मुसलमान हकीम के विज्ञापन की भाषा द्रष्टव्य है। विज्ञापन इस प्रकार है—

"नाजनीन आप जानते हैं मैं कौन हूँ ? आपका जर्द चेहरा, तने—लागद, आपका जरासी मेहनत में बेदम हो जाना, आपका लज्जाते दुनियाँ से महरूम रहना, आपकी खाना तरीकी—यह सब इस सवाल की नफी में जवाब देते हैं। यह भाषा क्लिष्ट उर्दू का रूप लिये हुए है जिसके दर्शन प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कृतियों में होते हैं। परन्तु 'गोदान' में ऐसी बोझिल एवं क्लिष्ट भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है।

'गोदान' की भाषा की अन्य विशेषता उसका भावानुरूप होना है। विभिन्न भावों के समय भाषा-शैली भी परिवर्तित हो गई है। इस विशेषता से स्वाभाविकता आ गई है।

एक उदाहरण दृष्टव्य है। जब धनिया होरी से आकर झुनियाँ के विषय में पहला समाचार देती है तो होरी सुनकर आग-बबूला हो जाता है और कहता है—"मैं कुछ नहीं जानता, हाथ पकड़कर घसीट लाऊँगा और गाँव के बाहर कर दूँगा। बात तो एक दिन खुलनी ही है फिर आज ही क्यों न खुल जाय। वह मेरे घर आई क्यों ? जाय जहाँ गोबर है। उसके साथ कुकरम किया तो क्या हमसे पूछकर किया था ?" परन्तु जब धनिया जो स्वयं भी पहले झुनियाँ पर बिगड़ रही थी, होरी को सारी स्थिति समझाकर झुनियाँ से कुछ भी न कहने का आग्रह करती है है तो ये भोले देवता तुरन्त रुद्र से भोले शिव का रूप धारण कर लेते हैं और घर पहुँच कर झुनियाँ से कहने लगते हैं—"डर मत बेटी, डर मत, तेरे हम हैं···जैसी तू भोला की बेटी है, वैसी ही मेरी बेटी है। जब तक हम जीते हैं किसी बात की चिन्ता मत कर। हमारे रहते कोई तुझे तिरछी आँखों से न देख सकेगा।" भाषा के ऐसे परिवर्तित रूप 'गोदान' में प्राय: मिलते हैं, जहाँ भावों के अनुरुप उनमें परिवर्तन होता रहता है।

'गोदान' की भाषा वैसे अधिकाँश स्थलों पर सरल और सुबोध रही है किन्तु अनेक स्थल ऐसे भी आये हैं जहाँ लेखक ने चिन्तन पूर्ण स्थलों पर उसे गम्भीर बनाया है। भाषा-गाम्भार्य का एक उदाहरण दृष्टव्य हैं—"वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर

देती है। फिर मध्यान्ह का प्रखर ताप आता है, क्षण-क्षण पर बगुले उठते हैं और फिर काँपने लगती है। लालसा का सुनहला आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममयी संध्या आती है, शीतल और शांत, जब हम थके हुए पाथिकों की भाँति दिन भर यात्रा का वृतान्त कहते हैं और सुनते है, तटस्थ भावों से, मानो हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहाँ नीचे का जनरव हम तक नहीं पहुँचता।"

गठी हुई, कोमल, सरस, भावपूर्ण भाषा का एक अन्य रूप भी दृष्टव्य है—"वह अभिसार की मीठी स्मृतियां याद आईं। जब वह अपने उन्मत्त उसासों में, अपनी नशीली चितवनों में मानों अपने प्राण निकालकर उसके चरणों पर रख देता था। झुनियाँ किसी वियोगी पक्षी की भाँति अपने छोटे से घोंसले में एकान्त जीवन काट रही थी। वहाँ नर का मत्त आग्रह न था, न वह उद्दीप्त लालसा, न शावकों की मीठी आवाजें, मगर बहेलिये का जाल और छल भी तो वहाँ न था।"

भाषा-शैली की दृष्टि से 'गोदान' न केवल प्रेमचन्द के उपन्यासों में विशिष्ट स्थान रखता है। अपितु हिन्दी के अपने समय से पूर्व के उपन्यासों में भी वह अपनी पृथक विशेषता रखता है। 'गोदान' में पात्र, देश, काल और भावों के अनुरूप भाषा शैली के कई रूप मिलते हैं। और उन सभी रूपों में भाषा अधिक से अधिक समर्थ रूप में प्रकट हुई है और अधिक से अधिक स्वाभाविकता की रक्षा में समर्थ सिद्ध हुई है।

प्रश्न २०—'गोदान' को 'प्रेमाश्रम' का प्रायश्चित कहा जाता है—क्या आप इससे सहमत है? युक्तिसंगत उत्तर दीजिये।

उत्तर—प्रेमचन्द उपन्यास लिखते समय पहले समाज की यथार्थ स्थिति का चित्रण करते थे और अन्त में किसी कल्पित आश्रम, संस्था या प्रणाली की स्थापना कर यह सिद्ध कर देते थे, या संकेत देते थे कि समाज का कल्याण इसी प्रकार के कार्यों द्वारा सम्भव हो सकता है। 'सेवासदन' में उन्होंने सेवासदन की स्थापना की, 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशङ्कर द्वारा स्थापित 'प्रेमाश्रम' द्वारा उन्होंने

एक आदर्श संस्था का आदर्श स्थापित किया, 'कर्मभूमि' में जनता के प्रतिनिधियों और शासकों की एक सम्मिलित कमेटी बना कर जनता के दुःखों को दूर कराने का प्रयत्न किया परन्तु 'गोदान' में उन्होंने ऐसा कोई भी प्रयोग नहीं किया । 'गोदान' से पूर्व लिखे गए लगभग सभी प्रसिद्ध उपन्यासों में समस्या के समाधान के रूप में पाये जाने वाले ऐसे प्रयत्न अन्त में जाकर उन्हें कल्पना-लोक का आश्रय लेने के लिए बाध्य कर देते थे और वहीं आकर उनकी कला खण्डित हो जाती थी । यदि उन उपन्यासों में से ऐसे सभी समाधान निकाल दिए जायँ तो प्रेमचन्द शुद्ध यथार्थवादी उपन्यासकार बन जाते हैं ।

अपने चिन्तन के विकास की उपरोक्त प्रगति में प्रेमचन्द अपने समसामयिक आन्दोलनों से बहुत प्रभावित होते रहे थे । आरम्भ में उन पर आर्य समाज का प्रभाव था और बाद में वे गाँधीवाद से प्रभावित रहे । परन्तु अपने हर पहले समाधान से असन्तुष्ट होकर उनका कलाकार निरन्तर नए-नए समाधान ढूँढ़ता रहा और 'गोदान' तक आते-आते प्रेमचन्द को यह विश्वास हो गया कि समस्यायों का निराकरण या हल ऐसे छोटे-छोटे प्रयत्नों से होना सम्भव नहीं । उन्होंने गाँधीजी के असहयोग आन्दोलनों की असफलताएँ देखीं, सेवाग्राम जैसे आश्रमों का सीमित और संकुचित प्रभाव देखा और तब जाकर जनता के विवेक में उनकी मान्यताओं को दृढ़ आधार प्राप्त हुआ । इसलिए 'गोदान' में उन्होंने जनता की वास्तविक स्थिति का पेचीदगियों से भरा हुआ परन्तु सरल चित्र उपस्थित कर, यह कार्य जनता पर ही छोड़ दिया कि वह अपनी उन समस्याओं को सुलझाने के लिए कौनसा मार्ग ग्रहण करें । उन्हें अपने सभी पूर्व समाधान निस्सार एवं व्यर्थ प्रतीत हुए थे, इसलिए उन्होंने एक सफल चित्रकार के समान समाज का सच्चा चित्र अंकित कर उसकी बुराइयों के प्रति संकेत कर अपना कर्त्तव्य समाप्त कर दिया । 'गोदान' में उन्होंने स्पष्ट रूप से कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया परन्तु इतना संकेत अवश्य कर दिया कि यह समाज सड़ गया है, इसके विषम-सङ्गठन से उत्पन्न विकृतियाँ उस चरम सीमा तक पहुँच चुकी हैं जिनका निराकरण साधारण दवाइयों से नहीं हो सकता बल्कि उसके लिए जर्राह के ऐसे तेज नश्तर की आवश्यकता है जो उन्हें जड़ से काटकर अलग कर दे ।

गाँधीजी का मानव के शुभ पक्ष में विश्वास, स्वयं कष्ट सहकर मानव के हृदय परिवर्तन होने में दृढ़ आस्था आदि सिद्धान्तों द्वारा समाज की विकृतियाँ दूर नहीं की जा सकतीं, प्रेमचन्द 'गोदान' तक आते-आते इस सत्य को समझ चुके थे । और उनके इसी ज्ञान ने 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' के उद्देश्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया था ।

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने किसान-जमींदार के इसी संघर्ष का प्रमुख रूप से चित्रण किया है । उस समय तक प्रेमचन्द यह सोचते थे कि भारतीय किसान की सभी समस्याओं का हल जमींदार के खिलाफ संगठित होकर संघर्ष करने से हो जायेगा और लखनपुर जैसे आदर्श गाँवों की स्थापना सम्भव हो सकेगी । साथ ही वे यह भी सोचते थे कि प्रेमाशंकर जैसे जमींदार-वर्ग के व्यक्ति किसानों की समस्याओं को समझते हैं तथा 'प्रेमाश्रम' जैसे आश्रमों द्वारा जनता का कल्याण किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त उनका यह भी विश्वास था कि गाँधी जी द्वारा बताये गए प्रयत्नों द्वारा अत्याचारियों का हृदय-परिवर्तन सम्भव है इसलिए उन्होंने मायाशंकर का हृदय-परिवर्तन करवा कर उसे विरक्त बना दिया था । उस समय तक प्रेमचन्द का यह दृढ़ विश्वास था कि संगठन में अमोघ शक्ति होती है इसलिए यदि भारतीय किसान संगठित होकर जमींदारों तथा उनके रक्षक सरकारी अफसरों एवं अन्य अहलकारों का प्रतिरोध करेंगे तो उन्हें अवश्य सफलता प्राप्त होगी । यह प्रेमचन्द की आदर्शवादी कल्पना थी और उन्होंने 'प्रेमाश्रम' में इसका प्रयोग किया था ।

'प्रेमाश्रम' की रचना प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त की गई थी । भारतीयों पर पुरस्कार के रूप में विदेशी-सरकार द्वारा भयङ्कर जुल्म ढाए जा रहे थे । सारा देश इन जुल्मों से क्षुब्ध हो उठा था । जनता का असन्तोष अपनी चरम सीमा पर था । विजय के मद के उन्मत्त बनी हुई अंग्रेज सरकार हर सम्भव उपायों से जनता के इस असन्तोष का दमन कर रही थी । इसीलिए 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने जनता एवं सरकार के प्रयत्नों और प्रतिकारों का उग्रतम रूप चित्रित किया था । रूस की सफल जनक्रान्ति का भी प्रेमचन्द पर गहरा प्रभाव पड़ा । वे समझते थे कि भारत के किसान भी संगठित होकर रूसी जनता

की तरह ही आजादी हासिल कर सकते हैं। इसलिए 'प्रेमाश्रम' का बलराज बारबार रूस का हवाला देता पाया जाता है।

'प्रेमाश्रम' में किसान और जमीदार का सीधा संघर्ष है। किसान अपनी एकता, संगठन एवं प्रेमशङ्कर जैसे अस्थिर व्यक्तियों के नेतृत्व के बल पर आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है। जमींदार की पीठ पर सरकार का पूरा बल है। कलक्टर, तहसीलदार, थानेदार आदि सब उसकी सहायता करते हैं। जमींदार किसान पर बेदखली दायर करता है, उसके हल बैल नीलाम कराता है, उसकी चरावर जमीन छीन लेता है। सरकारी अहलकार दौरों पर आते समय अपनी और अपने लश्कर की पूरी रसद किसानों से वसूल करता है, बेगार कराता है और इन्कार करने पर किसानों को बुरी तरह पिटवाता है, उसकी औरतों की बेइज्जती करवाता है तथा पुलिस किसान को मारती है तथा झूठे मुकदमे चलाकर सजा करवाती है। इस तरह अकेला किसान इस दोहरी मार से पस्त हो जाता है और फिर उठ खड़ा होता है।

किसान के पास अपनी एकता का बल है। यह एकता भी अधूरी और कच्ची है। बलराज जैसा किसान राजनीति की अधकचरी बातें करता है और जुल्मों के सामने झुकने से इन्कार कर देता है। वह अत्याचारों का प्रतिरोध अहिंसा द्वारा न कर हिंसा की धमकी देता है। वह मानव मात्र को समान समझता है। अपने हलवाहे को भी अपना जैसा ही खाना देता है।

लखनपुर गाँव में दो प्रकार के किसान हैं—एक उग्रतावादी जैसे बलराज तथा दूसरे समझौतावादी या भाग्यवादी जैसे कादिर मियाँ। जब जमींदार गाँव के पुस्तैनी तालाब पर पानी भरने से रोक लगा देता है तो सुक्खू और कादिर जैसे बूढ़े किसान भी अपनी लाठी उठाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। बलराज की माँ विलासी जमींदार के कारिन्दा गौसखाँ का विरोध करती है और जब गौसखाँ उस पर हाथ उठाता है तो बलराज और उसका पिता मनोहर इस अपमान को बर्दाश्त न कर सकने के कारण रात में चुपचाप गौसखाँ की हत्या कर डालते हैं। इस प्रकार लखनपुर का कोई व्यक्ति अत्याचार के सम्मुख सिर नहीं झुकता।

'प्रेमाश्रम' में भाग्यवाद और धर्म के आडम्बरों की दीवाल भी भहरा कर गिर जाती है। कादिर जैसे पुराणपंथी लोग—"अन्याय का विरोध नहीं करना चाहते, हर चीज अल्लाह और किस्मत के नाम पर सह लेना चाहते हैं, लेकिन बलराज की कही हुई बातों ने मन में एक नया भाव भर दिया है। एक देश है जहाँ किसान घास छीलने के लिए मजदूर नहीं किए जाते। यह भाव उन्हें अपनी तकदीर पर आँसू बहाने के लिए विवश करता है।" ऐसा कादिर बलराज और मनोहर को हमेशा अत्याचार का विरोध करने से रोका करता था, उन्हें ईश्वर का भरोसा कर अन्याय सहने का उपदेश दिया करता था। परन्तु जब गौसखाँ की हत्या के मामले में बहुत से किसान पुलिस द्वारा फांस लिए जाते हैं और जब वे लोग मनोहर की आलोचना करते हैं तो यही कादिर उनसे कहता है—"यारो! ऐसी बातें न करो, बेचारे ने तुम लोगों के लिए तुम्हारे हक की रक्षा करने के लिए सब कुछ किया। उसके हियाब और जीवट की तारीफ तो नहीं करते और उसकी बुराई करते हो? हम सब के सब कायर हैं, वही एक मर्द है।" कादिर ने जिन्दगी के स्कूल में एक नया सबक सीखा था—अन्याय का विरोध न करना कायरता है।"

'प्रेमाश्रम' के पात्रों में देशभक्ति की, विद्रोह की एवं शहीद बनने की भावना जोरों पर है। यहाँ तक कि मनोहर के मर जाने पर उसकी विधवा विलासी जैसी ग्रामीण स्त्री अपने गर्व को कितने सशक्त शब्दों में व्यक्त करतीं है—"मैं विधवा हो गई तो क्या, घर का सत्यानाश हुआ तो क्या, किसी के सामने आँख तो नीची नहीं हुई।"

लखनपुर के किसान जैसे-जैसे विद्रोह करते जाते हैं उन पर वैसे-ही-वैसे अत्याचार भी बढ़ते चले जाते हैं। उन किसानों को यह ज्ञात हो चुका है कि सत्याग्रह में अन्याय को दमन करने की शक्ति नहीं है। इसलिए वे लोग हिंसात्मक प्रतिरोध का मार्ग अपनाते हैं, फौजदारी के लिए सन्नद्ध होते हैं परन्तु उन्हें अन्त में पराजय ही मिलती है। क्योंकि इस संघर्ष में भाग लेने वाले दोनों प्रतिद्वन्द्वी बराबर के जोड़ के नहीं हैं। एक तरफ लखनपुर का गाँव बारबार अपनी शक्ति बटोरता है-लड़ता है, परास्त होता है और बिखर जाता है। अमन और कानून की ताकतें अब भी बहुत मजबूत हैं। दूसरे गाँव के किसान

इस संघर्ष से तटस्थ रहते हैं। लखनपुर के किसानों को कहीं से भी सहायता नहीं मिलती; वे अकेले पड़ जाते हैं। प्रेमशंकर जैसे नेताओं की प्रेम से सब झगड़े निपटाने की नीति किसानों को एक भी अत्याचार से नहीं बचा पाती। जमींदार और उसके कारिन्दे, थानेदार और तहसीलदार, जज, वकील और पेशकारों की एक पूरी फौज अपनी समस्त शक्ति को संगठित कर इस गाँव को कुचल डालना चाहती है।

लखनपुर गाँव संघर्ष में हार जाता है परन्तु प्रेमशंकर जैसे व्यक्ति नेता बनकर सामने आते हैं और उसे एक आदर्श गाँव बना देते हैं। समझ में नहीं आता कि प्रेमचन्द ऐसे अस्वाभाविक परिणाम पर कैसे पहुँचते हैं? प्रेमशंकर ऐसे पात्र हैं जो संघर्ष के युग में किसानों को संगठित नहीं कर पाते और अत्याचार एवं दमन का मुकाबला करने में उनका साथ नहीं देते। वे बुद्धिजीवी वर्ग के स्वप्नद्दष्टा हैं जो सपने देख सकते हैं परन्तु संघर्ष की कठोरता से घबड़ा जाते हैं। ऐसा व्यक्ति लखनपुर के उन तपे तपाये कर्मठ किसानों को संगठित कर उनके गाँव को एकाएक कैसे स्वर्ग बना देता है? और यह सब तब होता है जब लखनपुर पर अत्याचार ढाने वाली शक्तियों की शक्ति में रंचमात्र भी अन्तर नहीं आ पाया है। वे सब बरकरार रहती हैं। शासन और समाज की उप व्यवस्था में भी कोई अन्तर नहीं आता जिसमें अँग्रेजों के दलाल-जमींदार-किसानों को खुद लूटते थे और अपनी लूट में से एक हिस्सा अँग्रेजों को भी दे देते थे। तब लखनपुर एक सुखी और आदर्श गाँव कैसे बन गया?

इसके मूल में प्रेमचन्द की वही आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत करने की भावना कार्य कर रही थी जिसने 'सेवासदन' का समाधान प्रस्तुत किया था। ऐसे समाधान सदैव अस्वाभाविक और शुद्ध रूप से काल्पनिक रहते हैं। 'प्रेमाश्रम' तक ही नहीं बल्कि 'कर्मभूमि' तक भी प्रेमचन्द इस काल्पनिक समाधान प्रस्तुत करने के मोह से छुटकारा नहीं पा पाये थे। केवल अन्तिम कृति 'गोदान' में आकर ही उन्होंने इस कलंक से मुक्ति पाई थी।

'गोदान' भी किसान जीवन की कहानी है जो ग्रामीण और नागरिक दोनों क्षेत्रों को साभिप्राय एक साथ समेट कर चलती है। 'प्रेमाश्रम' में प्रारम्भ से

अन्त तक एक उत्तेजना है, वातावरण में विद्रोह और दमन का चीत्कार है। वहाँ शोषक और शोषित अपनी पूर्ण शक्ति के साथ आमने-सामने ताल ठोककर खड़े हो जाते हैं।

'गोदान' में भी किसानों की समस्या है। परन्तु यहाँ आते-आते प्रेमचन्द रोग के असली कारण को समझ गए हैं। 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' तक उन्होंने किसानों के रोग का निदान करने का प्रयत्न तो किया था परन्तु वे रोग का वास्तविक कारण नहीं समझ पाए थे इसलिए आधुनिक डाक्टरों की तरह एक के बाद एक विभिन्न प्रकार के इन्जेक्शनों का प्रयोग करते रहे थे। इस आशा में कि शायद इनमें से एकाध कारगर हो जाय। परन्तु जब उन्होंने पुनः गहराई के साथ उस रोग का अध्ययन किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका वह निदान गलत था। 'गोदान' तक आते-आते वे उस रोग का मूल कारण तो समझ गए थे परन्तु उनकी समझ में यह नहीं आया था कि इस रोग को दूर कैसे किया जाय। इस कार्य को उन्होंने सम्भवतः अपनी भावी सन्तति या उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ दिया था। काल्पनिक समाधानों से उन्हें घोर निराशा प्राप्त हुई थी।

'प्रेमाश्रम' का वह काल्पनिक समाधान एवं लखनपुर के किसानों का वह सङ्गठित विद्रोह कल्पना ही बन कर रह गए थे। किसान-जीवन में उनका कहीं अस्तित्व भी नहीं था। प्रेमचन्द ने इस स्थिति को गहराई से देखा था और समझा था। 'गोदान' का होरी अकेला है, भाग्यवादी है, धर्म एवं बिरादरी की मान्यताओं में उसका अन्ध विश्वास है। समाज की थोथी मर्यादाओं के पालन में वह आत्म-गौरव समझता है। उसका गाँव बेलारी भी समृद्ध गाँव है। उसमें अनेकों साहूकार हैं, जमींदार का कारकुन नोखेराम है तथा होरी के अनेक भाई-बन्द किसान भी हैं। गाँव के लगभग सभी किसान साहूकारों के प्राण-घातक शिकंजे में जकड़े हुए हैं। उनमें एकता का अभाव है क्योंकि उन पर सामूहिक रूप से खुलकर अत्याचार नहीं किया जाता। सब अपनी ही समस्याओं में गर्क हैं। कभी-कभी एक दूसरे के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर देते हैं। होरी अपने को नितान्त एकाकी अनुभव करता है। उसके अपने सगे

भाई उसके दुश्मन हैं। यही थी भारतीय गाँवों एवं उनमें रहने वाले किसानों की वास्तविक स्थिति।

लखनपुर के एके का यहाँ कहीं नाम निशान भी नहीं मिलता। इन किसानों की सबसे बड़ी एवं प्रधान समस्या कर्ज से छुटकारा पाने की समस्या है। जमींदार किसान से बिना रसीद दिये लगान वसूल करता है, नजर-नजराना लेता, बेगार कराता है। गाँव के पंच साहूकार लोग हैं। वे पंचायत की आड़ लेकर होरी से अपनी व्यक्तिगत रंजिश का बदला लेते हैं। जमींदार के कानों तक उस अत्याचार का समाचार पहुँचने पर वह किसानों की सहायता करना तो दूर रहा उस जुर्माने की रकम को खुद हड़पना चाहता है। थानेदार भी आकर किसान को ही सताने और चूसने का मन्सूबा बाँधता है। इस प्रकार होरी के युग का किसान घर और बाहर चारों तरफ से सताया जाता है और उसकी फरियाद सुनने वाला कोई भी हमदर्द नहीं आता।

बेलारी गाँव का यह चित्र 'प्रेमाश्रम' के लखनपुर गाँव से नितान्त भिन्न है। और बेलारी की जो स्थिति है वही उत्तर भारत के सम्पूर्ण गाँवों की है। काँग्रेस की बागडोर एवं नेतृत्व भी रायसाहब जैसे जमींदारों के या खन्ना जैसे पूँजीपतियों के हाथ में है। किसान इनके अत्याचारों से छटपटाता है परन्तु भाग्य की दुहाई देकर शान्त हो जाता है। इतना निर्बल है कि सब कुछ जानते हुए भी उसका प्रतिकार नहीं कर पाता। उसकी सहायता को प्रेमशंकर जैसे नेता भी नहीं आते जो समय-असमय उसके आँसू भी पौंछ सकें। वह सहायता के लिए चारों तरफ निरीह दृष्टि फैलाता है परन्तु उसे कहीं से भी सहानुभूति या सहायता नहीं प्राप्त हो पाती। लखनपुर जैसा सुख एवं समृद्धि से परिपूर्ण ग्राम 'गोदान' के लिए स्वप्न की वस्तु बन गया है। ऐसे ग्रामों का कहीं भी अस्तित्व नहीं दिखाई पड़ता।

इसका कारण यह है कि 'गोदान' में आकर प्रेमचन्द का वह स्वप्न चूर-चूर हो गया था जो उन्होंने 'प्रेमाश्रम' के समय देखा था। उस समय प्रेमचन्द ने अत्यधिक आशावादी एवं आदर्शवादी बनकर परिस्थितियों का चित्रण एवं विश्लेषण किया था जो 'गोदान' यथार्थ से टकराकर चकनाचूर हो गया था। प्रेमचन्द समझ गये थे कि भारतीय किसान को जब तक

सदैव भयंकर बने रहने वाले आर्थिक संकट से मुक्त नहीं किया जायेगा तब तक उसका उद्धार असम्भव है। उसकी आर्थिक समस्या हल कर दीजिये फिर किसान अपने आप सारे संकटों से त्राण पाकर प्रगति के पथ पर आगे चल पड़ेगा। आश्रमों आदि की स्थापना से उस समस्या का हल असम्भव है। और जब तक उसकी यह कर्ज की समस्या रहेगी तब तक न तो वह लखनपुर के निवासियों के समान संगठित हो सकेगा और न उसमें नैतिक साहस एवम् बल ही आ पायेगा जिससे वह जमींदारों एवं साहूकारों का डटकर विरोध कर सके।

इसलिए प्रेमचन्द ने 'गोदान' में आकर हमारे ग्रामीण समाज का सच्चा एवं घोर यथार्थवादी चित्र उपस्थित कर जनता एवं पाठकों का ध्यान इस सत्य की ओर आकर्षित किया था कि हमारा वर्तमान सामाजिक सङ्गठन इतना सड़ चुका है कि जब तक इसका समूल उच्छेद नहीं किया जायेगा तब तक भारतीय किसान की समस्या एवं दुख का समाधान नहीं हो पायेगा। इनके लिये उन्होंने मेहता जैसे बुद्धिजीवियों को सेवा के क्षेत्र में आगे आकर काम करने के लिये ललकारा था। मेहता जैसे व्यक्ति ही इस समस्या को सुलझाने में समर्थ हो सकते थे।

गोदान में गोबर जैसे व्यक्ति भाग्यवाद, कर्मवाद, उच्चवर्ग के नैतिक ह्रास एवं जमींदारों के असली रूप को समझने लगा है परन्तु उचित शिक्षा एवं पथ-प्रदर्शन के अभाव में यह नहीं समझ पाता कि गुलामी के इस बन्धन से कैसे छुटकारा पाए। उसे कोई राह दिखाने वाला नहीं मिलता इसलिए वह सबकुछ समझते हुए भी गुमराह होकर पतित हो जाता है। लखनपुर के आश्रम में उसका हल नहीं मिलता। लखनपुर की एकता एवं संघर्ष की शक्ति का 'गोदान' में कहीं नाम निशान भी नहीं मिल्ता। क्योंकि लखनपुर कल्पना की उपज है जबकि बेलारी वास्तविकता की, इसीलिये प्रेमचन्द ने परिस्थितियों के कल्पित चित्रण की जो भूल 'प्रेमाश्रम' में की थी—'गोदान' के यथार्थवादी चित्रण में उस भूल का प्रायश्चित कर लिया है।

प्रश्न २१—'गोदान' में ग्राम और नगर से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का सजीव-चित्रण हुआ है और इन समस्याओं के चित्रण

के कारण ही वह अपने समय का प्रतिनिधि उपन्यास माना जाता है इस कथन का विवेचन कीजिये ।

उत्तर—उपन्यास जीवन का विस्तृत चित्रण होता है इसलिए उसमें जीवन की समस्याओं का चित्रण अनिवार्य रूप से आ जाता है। परन्तु जिस प्रकार किसी विशिष्ट समस्या को लेकर समस्या-नाटकों की रचना की जाती है वैसा कोई भी प्रयत्न 'गोदान' में नहीं मिलता। इसमें स्पष्टतः दो वर्गों का संघर्ष दिखाया गया है—शोषक और शोषित। एक वर्ग साधन-सम्पन्न अतः सबल है, दूसरा पक्ष साधन-हीन अतः निर्बल है। प्रेमचन्द ने 'समस्या' शब्द का कहीं भी स्पष्टतः उल्लेख न करते हुए उक्त दोनों वर्गों की जीवन-मान्यतायें, उनके साधनों एवं उनकी शक्तियों का चित्रण किया है। भारत कृषि-प्रधान देश है। देश की लगभग अस्सी प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में ही बसती है। इन गाँवों में बसने वाले किसानों का प्रधान पेशा खेती है। ये देश के अन्नदाता हैं। इन अन्नदाताओं की वास्तविक स्थिति क्या है, उनकी सामाजिक मान्यताएँ एवं आस्थाएँ कैसी हैं तथा उनका जीवन कैसे व्यतीत होता है, इसका 'गोदान' में सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया है। इसी स्थिति के चित्रण में विभिन्न प्रकार की समस्यायें स्वतः ही उठ खड़ी होती हैं।

'गोदान' में चित्रित नागरिक जीवन का सम्बन्ध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इन गाँवों से है। प्रेमचन्द का प्रधान उद्देश्य भारतीय किसान की वास्तविक दशा का सवाक चित्र प्रस्तुत करना था। इसलिए उन्होंने नागरिक जीवन के केवल उसी अंश को अपने उपन्यास में स्थान दिया है जिसका किसानों से सम्बंध है। इस कारण नागरिक जीवन हमें अपने समग्र रूप में चित्रित हुआ नहीं मिलता। नगरों में रहने वाले जमींदारों, ताल्लुकेदारों, मिल मालिकों, साहूकारों तथा देशभक्त जागरूक विचारकों एवं सेवाकर्मियों का सम्बन्ध गाँवों से रहता है। जमीदार आदि किसानों की कमाई पर नगर के विलासमय वातावरण में जीवन यापन करते हैं; मिल-मालिक गाँवों में उत्पन्न होने वाले कच्चे माल द्वारा अपने उत्पादन कार्य को आगे बढ़ाते हैं। इस प्रकार इन दोनों का काम किसानों के बिना नहीं चल सकता। साहूकार गाँवों में अपने एजेन्ट नियुक्त कर पैसा वसूल करते हैं। केवल जागरूक विचारक एवं सेवा कार्य करने

वाले व्यक्ति ही किसानों के शुभचिन्तक के रूप में आगे आते हैं। 'गोदान' में नागरिक-समाज के इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों का चित्रण किया गया है। रायसाहब, खन्ना आदि किसानों के शोषक हैं तथा मेहता एवं मालती किसानों के सहायक एवं शुभ-चिन्तक हैं परन्तु बहुत अल्पाँश में ही।

नगर की जनता का प्रतिनिधित्व वहाँ का मध्यवर्ग करता है। निम्न-वर्ग—मजदूर आदि तो गांव के किसान ही होते हैं। इस मध्यवर्ग का किसानों से कोई भी प्रयत्क्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। इसलिए 'गोदान' में इस वर्ग का चित्रण नही किया गया है। किसी भी देश का मध्यवर्ग उस देश की रीढ़ माना जाता है। सम्पूर्ण राजनैतिक, साँस्कृतिक, धार्मिक आदि आन्दोलन इसी वर्ग द्वारा सँचालित किए जाते हैं। जब 'गोदान' में इस वर्ग का कोई चित्रण ही नहीं तो फिर उक्त विभिन्न प्रकार के आन्दोलनों का चित्रण कैसे आ सकता था। अतः इस वर्ग की समस्याओं से भी 'गोदान' अछूता है। इसमें केवल ग्रामीण समाज की तथा नागरिक समाज के उस वर्ग की समस्यायें सामने आती हैं जिसका ग्रामीणों से सम्बन्ध है। मेहता एवं मालती जैसे पात्रों का साधारणतः गाँवों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु प्रेमचन्द चाहते थे कि मेहता एवं मालती जैसे व्यक्ति सामने आयें और अपने सेवाकार्य एवं सहायता द्वारा इन दीन दुखी दलित किसानों की स्थिति को सम्हालें। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रेमचन्द ने मेहता और मालती को गाँव में भेजा है।

जब हम 'गोदान' में चित्रित कृषक-जीवन का गहराई से अध्ययन एवं विश्लेषण करते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय कृषक की अन्य सभी समस्यायें उसी आर्थिक अभाव की समस्या से उत्पन्न हैं। सब के मूल में यही आर्थिक दीनता प्रधान कारण है। होरी, गोबर आदि उस समाज के अङ्ग हैं जिसमें धन की मर्यादा सर्वोपरि है। धन व्यक्ति को समाज में उच्च स्थान प्राप्त कराता है; धन व्यक्ति के सम्पूर्ण कुकर्मों को न्याय संगत सिद्ध कर देता है; धनहीन होने पर सत्कर्म भी कुकर्म घोषित कर दिए जाते हैं। इसीलिए गोबर धन कमाने के लिए शहर भागता है और यहाँ से थोड़े से रुपये कमाकर जब गाँव लौटता है तो उसमें इतना साहस आ जाता है कि वह गांव के साहूकारों अर्थात् शक्तिमानों की खुलकर हंसी उड़ाता है और उसका कोई कुछ नहीं कर पाता।

गांव के साहूकर सभी दुराचारी हैं। क्योंकि उनके पास पैसा है इसलिए समाज उनसे कुछ भी नहीं कह पाता। खन्ना दुराचारी है। मेहता जैसे लोग उसकी आलोचना करते है क्योंकि बुद्धिजीवियों को प्राय: धन की शक्ति से नहीं जीता जा सकता। रायसाहब दुराचारी तो नहीं हैं परंतु अपने आराम, मर्यादा आदि के लिए खूब धन लूटते हैं और खूब ही खर्च करते हैं। पैसे वाले लोग लगभग सभी अत्याचारी हैं। प्रेमचन्द धन और सदाचार में शाश्वत शत्रुता का सम्बन्ध मानते थे और 'गोदान' का प्रत्येक धनी पात्र इसका प्रतीक है। इन धनी लोगों का अपना मूक संगठन है। वे निर्धनों को सताने में सदैव एक हो जाते हैं। उधर निर्धन बराबर लूटते रहते हैं—कानून के नाम पर, रिवाज के नाम पर, धर्म के नाम पर, बिरादरी के नाम पर और इस सारी लूट की पूर्ति वे नए-नए कर्ज लेकर करते रहते हैं। इस प्रकार 'गोदान' में दो भिन्न संस्कृतियों के अनवरत संघर्ष का रूप मिलता है—एक मुनाफे की दुनिया और दूसरी महनत की दुनिया का।

उक्त दोनों संस्कृतियाँ अपने अपने अस्तित्व की रक्षा में प्राणपण से लगीं हुई है। मुनाफे की दुनिया वाले 'प्रेमाश्रम' के युग से अधिक चतुर और धूर्त बन चुके हैं। उनकी लूट का तरीका अब प्रत्यक्ष न रहकर अप्रत्यक्ष बन गया है। होरी को प्रत्यक्ष रूप से कोई भी नहीं सताता। उससे जितना भी पैसा वसूल किया जाता है वह सब कानून, धर्म, न्याय, परम्परा आदि के नाम पर ही किया जाता है। प्रेमचन्द शोषण की इस नवीन पद्धति के चित्रण में बड़े सतर्क रहे हैं। उन्होंने कहीं भी होरी के साथ प्रत्यक्ष अन्याय नहीं होने दिया है। नोखेराम उससे दुबारा लगान वसूल नहीं कर पाते, दारोगा उससे रिश्वत मांग कर भी लेने में सफल नहीं हो पाता। होरी को जो कुछ भी देना पड़ता है वह ऊपर से देखने पर पूर्णत: न्यायसंगत प्रतीत होता है।

रायसाहब उससे नजर-नजराना लेते हैं क्योंकि ऐसा परम्परा से होता चला आया है। मंगरूशाह उसकी ऊख नीलाम करवा लेते हैं क्योंकि वह उनका कर्जदार है और उन्होंने अदालत से उसके ऊपर डिगरी करवा ली है। बिरादरी उस पर दण्ड लगाती है क्योंकि बिरादरी के अनुसार उसने झुनियाँ को घर में आश्रय देने का अक्षम्य अपराध किया है। दातादीन उससे मजदूर की तरह कस

कर खेत में काम करवाते हैं क्योंकि उन्होंने समय पर सहायता देकर उसके खेतों में बुवाई के साधन जुटाये हैं। वे ३०) के २००) लेते हैं क्योंकि होरी उनसे वचन-बद्ध है। फिर होरी के साथ किसने अन्याय किया? इनमें से एक भी कार्य अन्यायपूर्ण नहीं है। मगर फिर भी हम देखते हैं कि जीवन पर्यन्त जी-तोड़ परिश्रम करने वाला होरी लुट जाता है, उसके बाल-बच्चे भूखे भरने लगते हैं, उसे शक्ति से अधिक परिश्रम करने के कारण असमय में ही काल-कवलित हो जाना पढ़ता है। जीवन भर वह यही नहीं समझ पाता कि लुटेरे कौन हैं क्योंकि उसके लूटने वाले सभी न्याय की दुहाई देते हुए सामने आते हैं। दूसरे शब्दों में उसके लुटेरे न्यायपूर्ण हराम की कमाई खाने वाले हैं जो जीवन भर आनन्द भोगते हैं और ऐसा करते हैं। इस क्षेत्र में जो जितना ही अधिक चतुर है वह उतना ही अधिक सफल होता है। इस लूट की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप इसे न्याय के आधार पर लूट नहीं कह सकते। यह तो इन लुटेरों का जन्मसिद्ध अधिकार है जैसा कि रायसाहब का कथन था।

इसलिए 'गोदान' की सबसे प्रमुख समस्या यह है कि इस अप्रत्यक्ष लूट का निराकरण कैसे किया जाय? होरी जैसे कर्मठ व्यक्तियों की इस लूट से कैसे रक्षा की जाय? निरन्तर बने रहने वाले ऋण के इस दैत्य से परिश्रमी भोले भाले किसानों को कसे मुक्ति दिलायी जाय। 'गोदान' और होरी के जीवन की यही प्रमुख समस्या है। प्रेमचन्द ने इस समस्या को बड़ी गहराई तक जाकर देखा है और समझा है। वे जानते थे कि इस समस्या का निदान साधारण उपायों से नहीं किया जा सकता। इसके लिए जर्राह के तेज नश्तर की जरूरत है जो एक ही झटके से विकृति के मूल कारणों को दूर कर उन्हें सदैव के लिए समाप्त कर दे। हमारे समाज का वर्तमान संगठन सड़ चुका है इसलिए इसका समूचा ढाँचा बदलना पड़ेगा; शोषक और शोषित का भेद हटाना पढ़ेगा; समाज में न्याय का वास्तविक रूप स्थापित करना पड़ेगा; भाग्यवाद, कर्मवाद आदि के ढकोसलों को दूर करना पड़ेगा—तभी होरी जैसे मानव के प्राणों की रक्षा हो सकेगी। इन भेड़ की खाल पहने हुऐ भेड़ियों का वास्तविक रूप जब तक स्पष्ट नहीं होगा तब तक होरी की लूट निरन्तर होती रहेगी।

प्रेमचन्द ने 'गोदान' में इस समस्या का कोई समाधान नहीं दिया है।

समाधानों से उनका मन भर चुका था। इसीलिए 'गोदान' में उन्होंने कल्पित समाधान देने से अपने को बचाया है। उन्होंने शोषण का नीचता-पूर्ण कुचक्र स्पष्ट रूप से सामने रख हमें यह सोचने के लिए बाध्य कर दिया है कि क्या इस स्थिति को ऐसे ही चलने दिया जायेगा। 'गोदान' में आकर प्रेमचन्द अपने पाठकों की बुद्धि एवं चिन्तन शक्ति पर विश्वास करने लगे हैं। वे जानते थे कि असलियत को देखकर समाज अपने आप अपने उद्धार का उचित मार्ग ढूँढ़ लेगा। आज जमींदारियाँ टूट चुकी हैं, रजवाड़े समाप्त हो चुके हैं। इससे होरी के उत्तराधिकारियों को थोड़ी सी राहत मिली है। परन्तु अभी तक समाज ऋण की उस मूल समस्या का समाधान नहीं खोज पाया है। पूर्ण समाजवाद ही इस समस्या का एकमात्र हल है, इस बात को विचारक समझने लगे हैं और वह दिन दूर नहीं जब इस समस्या को भी हल कर लिया जायेगा।

'गोदान' की उपरोक्त प्रमुख समस्या के विवेचन के उपरान्त अन्य समस्याओं के विषय में सोचने के लिए बहुत कम मसाला रह जाता है। अन्य समस्यायें इसी की शाखायें हैं। परन्तु विद्यार्थियों के संतोष के लिए संक्षेप में उनका विवेचन भी आवश्यक हो जाता है।

होरी के जीवन की एक अन्य महत्त्वपूर्ण समस्या **धर्म की समस्या** है। वह अन्याय करते समय ईश्वर के रौद्र रूप से आतङ्कित रहता है, भाग्यवाद और कर्मवाद के सिद्धान्तों को अमिट एवं सत्य समझकर अपनी दीन दशा को न्याय-पूर्ण मानता है; रूढ़ियों एवं परम्पराओं का वह अन्ध भक्त है; बिरादरी की मर्यादा उसके लिये सर्वोपरि है। जायदाद के प्रति उसके मन में उत्कट मर्यादा का भाव है। होरी अशिक्षित है इसलिए उसमें वास्तविकता को समझने की शक्ति नहीं है। शोषक समाज निम्नवर्ग को सदैव अशिक्षित ही बनाये रखना चाहता है क्योंकि शिक्षित होने पर शोषित शोषक की असलियत को समझ जायेगा। आधुनिक शिक्षा इतनी मँहगी है कि होरी के बच्चों के लिए उसे प्राप्त करना आकाश-कुसुम बन गया है। अपनी अशिक्षा के कारण ही होरी धर्म के बाह्य रूप को ही सत्य समझ लेता है और कष्ट उठाता है। बिरादरी की पंचायत पर पैसे वालों का प्रभुत्व है इसलिए बिरादरी भी उसे सताती है। पंडितों

पर उसकी अगाध श्रद्धा है इसलिए दातादीन उसे धर्म के नाम पर चूसते हैं। रायसाहब ने पूर्वजन्म में सत्कार्य किये थे इसलिए उन्हें होरी को लूटने का पूरा अधिकार है। यदि होरी के पास पैसा होता तो वह भी शिक्षा पाता, उसके बच्चे भी शिक्षा पाते और तब धर्म का यह ढकोसला नष्ट हो जाता। इसलिए वह धनहीन होने के कारण ही यह सारे अत्याचार सहता है।

इसीसे मिलती-जुलती **नगर के मजदूरों की समस्या** है। वे भी अशिक्षित हैं, उनमें अनेक प्रकार की बुराइयाँ हैं परन्तु नगर में रहने के कारण वे अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हैं। वहाँ उन्हें मेहता जैसे सहायक भी मिल जाते हैं। इसलिए हड़तालें होती हैं, मिलें जला दी जाती हैं। फिर भी उन्हें राहत नहीं मिल पाती। वहाँ शोषित और शोषक का संघर्ष अधिक स्पष्ट और प्रबल है। मजदूरों की समस्या भी किसानों जैसी ही है। आर्थिक अभाव उन्हें भी कभी चैन नहीं लेने देता। केवल पारस्परिक एकता के बल पर ही इस आर्थिक-दानव से मुक्ति सम्भव है।

स्त्रियों की शिक्षा एवं अधिकारों की समस्या नागरिक समाज की एक ज्वलन्त समस्या बहुत दिनों से बनी रही है। परन्तु हमारा विचार है कि 'गोदान' में प्रेमचन्द ने इस समस्या को एक दूसरे ही दृष्टिकोण से उठाया है क्योंकि इस समस्या का अपने साधारण रूप में कथानक की मूल समस्या से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। ग्रामीण नारियों की समस्या मूलतः वही है जो वहाँ के पुरुष-समाज की है। वहाँ दोनों ही समान रूप से परिश्रम करते हैं और उसके परिणाम के भोक्ता भी समान रूप से ही रहते हैं। पुरुषों द्वारा मारपीट किया जाना कोई समस्या नहीं है। नागरिक समाज में दो प्रकार की नारियाँ हैं—गोविन्दी और मालती। गोविन्दी मेहता के शब्दों में सेवा और त्याग की देवी अतः आदर्श नारी है। गोविन्दी जैसी नारियों में ही सेवा और त्याग की भावना सम्भव है; मालती जैसी नवयुग की प्रतिमाओं में नहीं जो साँसारिक भोग विलास को ही नारी जीवन की चरम सार्थकता मानती हैं। इसीलिये प्रेमचन्द ने मालती को मेहता के संसर्ग द्वारा गोविन्दी जैसी आदर्श नारी बना दिया है। और ऐसा इसलिये किया है कि उपन्यास के अन्तिम

भाग वाली मालती जैसी नारियाँ जन-कल्याण के क्षेत्र में आगे आयें और समाज की गन्दगी को दूर करने में मेहता जैसे पुरुषों का हाथ बटायें इसीलिये नवीन पाश्चात्य सभ्यता की बुराइयों, उन्मुक्त भोग वाले सिद्धान्त की विकृतियों तथा भौतिकवादी प्रेम की संकीर्णताओं के साथ-साथ तलाक जैसी महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

उपरोक्त सभी समस्याओं का मूलाधार वही उपरोक्त आर्थिक अभाव की समस्या है। वही उपन्यास का केन्द्र विन्दु है। अन्य समस्यायें उसी केन्द्र विन्दु तक पहुँचने के मार्ग के पड़ाव-मात्र हैं। प्रेमचन्द ने इससे पहले इस समस्या को इतने व्यापक रूप में कभी नहीं उठाया था। 'गोदान' तक आते-आते वे यह समझ गए थे कि आर्थिक अभाव की इस समस्या को दूर होने पर ही अन्य सभी समस्यायें अपने आप सुलझ जायेंगी।

प्रश्न २२—"गोदान में पाश्चात्य तथा पौर्वात्य सभ्यताओं के संघर्ष के स्वर भी सुनाने पड़ते हैं।" क्या यह कथन सत्य है ? तर्क-पूर्ण विवेचन कीजिए।

उत्तर—'गोदान' में मूलतः भारतीय कृषक-समाज की कथा है। नागरिक कथा भी उसी के विषद् रूप का एक अंश है। इस चित्रण में उपन्यासकार का उद्देश्य न तो ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की तुलना करना रहा है और न पाश्चात्य एवं पौर्वात्य सभ्यताओं की तुलना ही। कथा के बहाव में प्रासंगिक रूप से पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव थोड़ा सा अवश्य दिखा दिया है। परन्तु बहुत ही सीमित एवं संकीर्ण क्षेत्र में।

"आज" के प्रसिद्ध सम्पादक बाबूराव विष्णु पराड़कर ने एक बार 'गोदान' पर विचार प्रकट करते हुऐ लिखा था कि—"प्राच्य और पाश्चात्य भाग, प्राच्य संयम और पाश्चात्य अनिमय, ईश्वर पर अन्ध विश्वास और मानवत्व में ईश्वर को प्राप्त करने की लालसा, त्यागमय पारिवारिक जीवन और बाप-दादों के ऋण को अस्वीकार करनै की कामना, इन विचारों का सम्मिश्रण गोदान में जगह-जगह दिखाई देता है। प्राच्य पाश्यात्य संघर्ष से जीवन का एक शास्त्र गोदान में क्रमशः विकसित हो रहा है, पर दुर्भाग्यवश पूर्ण विकास नहीं

हो पाता, और प्रेमचन्दजी हमें मंझधार में छोड़कर सहसा अन्तर्धान हो जाते हैं।''

सम्पूर्ण उपन्यास में केवल डाक्टर मेहता ही एक ऐसा पात्र है जो नागरिक नारी-समाज के एक वर्ग विशेष पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव दिखाता है। मेहता का कथन है कि पाश्चात्य प्रभाव के कारण भारतीय समाज में धन लिप्सा बढ़ी है। नगर को शिक्षित नारियों पर पाश्चात्य सभ्यता का गहरा प्रभाव पड़ा है जिससे नारियाँ देवी का पद त्याग कर तितली बनती जा रही हैं। मालती इङ्गलैण्ड से डाक्टरी पढ़कर आई है इसलिए तितली के समान चंचल और उन्मुक्त भोग की उपासिका बन गई है। उसकी दृष्टि में भौतिकता से उपलब्ध सुखों का मूल्य सर्वाधिक है और इस तथाकथित कलुषित भौतिकवादी पाश्चात्य प्रभाव को दूर कर मेहता अन्त में मालती को त्याग और सेवा की देवी बना देते हैं। मालती अपना सस्कार हो जाने पर तंखा से स्पष्ट शब्दों में कहती है कि—"इस नई सभ्यता का आधार धन है, विद्या और सेवा और जाति सब धन के सामने हेच है।'' मेहता भी धन की महत्ता को अप्रधान घोषित कर रायसाहब से कहते हैं—"मेरे लिए धन केवल उन सुविधाओं का नाम है जिनमें मैं अपना जीवन सार्थक कर सकूँ। धन मेरे लिए बढ़ने और फलने वाली चीज नहीं केवल साधन है। मुझे धन की बिल्कुल इच्छा नहीं, आप वह साधन जुटा दें जिससे मैं अपने जीवन का उपयोग कर सकूँ।'' मालती एवं मेहता के उपरोक्त विचारों को ही आधार मान कर कुछ आलोचक 'गोदान' में पाश्चात्य एवं प्राच्य विचार-धाराओं का संघर्ष देखते हैं। दूसरे शब्दों में वे धन के प्रति अधिक मोह न होने के कारण भारतीय विचारधारा को अध्यात्मवादी और पाश्चात्य विचारधारा को भौतिकवादी घोषित कर देते हैं।

आध्यात्मवादी और भौतिकवादी शब्द भ्रामक हैं। न तो यूरोप पूर्णतः भौतिकवादी और न भारत अध्यात्मवादी। यूरोप में भी आध्यात्मवाद का वैसा ही प्रभाव है जितना कि भारत में। यूरोप में भौतिकवाद को उतना ही महत्व दिया जाता है जितना कि भारत में। कुछ अँग्रेजों ने कह दिया कि

भारतीय अध्यात्मवादी होते हैं और भारतियों ने स्वयं को मूर्ख समझ कर गोरे प्रभुओं के इस कथन को पत्थर की लकीर समझ लिया और गर्व से फूल उठे। हमारे यहाँ अध्यात्मवाद को मौखिक रूप से तो पूर्ण महत्व दिया जाता रहा है परन्तु व्यावहारिक रूप में उसका कहीं नामनिशान भी नहीं मिलता। संसार माया है, असत् है, मिथ्या हैं, फिर भी हनारे पूर्वज इसी संसार में रहते हुए अपने भौतिक अस्तित्व की रक्षा में प्राणपण से लगे रहे थे। उनके लिए संसार सदैव सत्य रहा था। फिर यह अध्यात्मवार की दुहाई क्यों ?

समाज में जहाँ तक धन लिप्सा की प्रधानता का प्रश्न है, यह भी पाश्चात्य प्रभाव नहीं माना जा सकता। हमारे समाज में धन की लिप्ता कब प्रधान नहीं रही ? इतने युद्ध किसलिए होते रहे ? यदि इस बात को मान लिया जाय कि नगरों में नवीन पूँजीवाद के प्रभाव के कारण, जो यूरोप की देन है, धन का महत्व बढ़ा तो हमारे गाँवों में किस के प्रभाव से बड़ा ? 'गोदान' के गाँव पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से अछूते हैं। फिर भी उनमें रहने वाले साहुकारों के लिए धन-संग्रह करना ही सबसे बड़ा कर्त्तव्य एवं लक्ष्य बन गया है। उन्हें किस भौतिकवादी दर्शन शास्त्री ने धन की महत्ता का यह पाठ पढ़ाया है। चाहे नगर हो अथवा गाँव, धन की महत्ता सभी जगह समान रूप से व्याप्त है। इसका कारण हमारे समाज का वर्तमान गठन है। यह स्थिति भारत या यूरोप में ही न होकर सभ्य जगत के प्रत्येक भाग में इसी रूप में पाई जाती है। इसलिए इसे हम प्राच्य और पाश्चात्य विचार-धाराओं का संघर्ष न मानकर शोषक और शोषित वर्गों का संघर्ष ही मानेंगे। यह संघर्ष मोटे तौर पर उन्नत किन्तु ह्रासशील पूँजीवादी तथा समान रूप से म्रियमाण सामन्तवाद के विचारों का संघर्ष है। इस संघर्ष को किसी भी रूप में अध्यात्मवाद और भोतिकवाद या भारतीय संस्कृति तथा यूरोपीय संस्कृति का संघर्ष नहीं कहा जा सकता।

जहाँ तक नारी स्वतंत्रता, शिक्षा, अधिकार आवि का प्रश्न है, पाश्चात्य विचारधारा का हल्का सा प्रभाव अवश्य दिखाया गया है। प्रेमचन्द जी इस विचार के कट्टर समर्थक थे कि नारी को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए परन्तु वे यह नहीं चाहते थे कि हमारा शितिज नारी-समाज अपनी स्वतन्त्रता एवं अधिकार प्राप्त करने के लिए पाश्चात्य स्त्री समाज का अनुकरण करे। इसलिये उन्होंने

मालती का प्रारम्भिक रूप पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित एक तितली के रूप में गढा है और बाद में उसे सुधार कर तथाकथित भारतीय नारी बना दिया है।

मेहता अनीश्वरवादी हैं। स्वच्छन्द भोग में विश्वास रखते हैं। विवाह को बन्धन समझते हैं परन्तु तलाक प्रथा के विरोधी हैं। ऐसे मेहता 'गोदान' में भारतीय संस्कृति के उपदेशक एवं अनुयायी बन कर आते हैं। समझ में नहीं आता कि अनीश्वरवादी एवं स्वछन्द भोग के उपासक मेहता आध्यात्मवादी भारतीय संस्कृति के उपदेशक कैसे बन गए। अनीश्वरवादी भौतिकतावादी होता है और आध्यात्म और भौतिकवाद में कहीं एकता नहीं दिखाई देती। मेहता गोविन्दी को आदर्श नारी मानते हैं और नारी का सर्वोच्च रूप गृह-स्वामिनी के रूप में मानते हुए भी बर्बर प्रेम के उपासक हैं। मेहता के चरित्र में यह अन्तर्विरोध क्यों है? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि प्रेमचन्द मेहता के इन विचारों की सामाजिक उपयोगिता को स्वीकार नहीं करते थे, इसीलिए उन्होंने मेहता के स्वच्छन्द भोग एवं बर्बर प्रेम की मान्यताओं पर मालती द्वारा करारी चोट करवाई थी। इस तरह डाक्टर मेहता का चरित्र न तो आध्यात्मवादी रह जाता है और न भौतिकवादी। उनमें दोनों प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण है। अतः मेहता किसी विशिष्ट संस्कृति के प्रतिनिधि न होकर एक सामान्य उलझे हुए विचारक-मात्र हैं।

यदि 'गोदान' के एक थोड़े से अंश में युगानुरूप उठने वाले प्रश्नों को किन्हीं विशिष्ट संस्कृतियों का संघर्ष मान लिया जाय तो यह असंगत होगा। इस चित्रण में प्रेमचन्द का उद्देश्य केवल इतना ही था कि वे सामाजिक जीवन में सेवा और त्याग की महत्ता को स्वीकार करते थे और चाहते थे कि हमारी नारियाँ सेवा और त्याग की प्रतिमूर्त्ति बनकर समाज-सेवा में अग्रसर हों। तभी जनता का कल्याण सम्भव हो सकेगा। केवल अपने ही सुख-स्वार्थ में डूबे हुए प्राणी समाज का कल्याण नहीं कर सकते।

दूसरी बात यह है कि जिस समय 'गोवान' लिखा गया था उस समय तक भारतीय समाज का एक अङ्ग पाश्चात्य सभ्यता का उपासक बन चुका था। विशेष रूप से सरकादी उच्च अधिकारी वर्ग अपने को पाश्चात्य

सभ्यता का प्रेमी घोषित करने में गर्व का अनुभव करने लगा था। परन्तु 'गोदान' में इस वर्ग का कहीं नाम विशन भी नहीं मिलता। क्योंकि प्रेमचन्द का यह उद्देश्य ही नहीं था। उन्होंने नव-शिक्षित नागरिक महिलाओं पर इस पाश्चात्य सभ्यता आँशिक प्रभाव दिखाया है और उसकी कतिपय न्यूनताओं की ओर संकेत कर यह सन्देश दिया है कि नारी खिलौना नहीं है। वह माता है इसलिए उसे सेवा और त्याग की देवी बनकर समाज कल्याण के क्षेत्र में आगे आना चाहिये।

प्रश्न २३—क्या आप 'गोदान' को राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास की संज्ञा से विभूषित कर सकते हैं? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।

उत्तर—इस प्रश्न का विवेचन करने के लिए पहले राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास की परिभाषा समझ लेना आवश्यक है। मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के राष्ट्र कवि अथवा राष्ट्रीय प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं क्योंकि उन्होंने भारतीय राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं को लेकर अनेक काव्य ग्रन्थों की रचनायें की हैं। खड़ी बोली-काव्य के विकास की विभिन्न दिशाओं का उनके काव्य में चित्रण हुआ है। उनके सम्पूर्ण काव्य का अध्ययन करने के उपरान्त पाठक को समग्र भारतीय राष्ट्र एवं खड़ी बोली की विभिन्न समस्याओं, पक्षों, एवं विकास की दशाओं का साधारण सा परिचय मिल जाता है। काव्यत्व की दृष्टि से हिन्दी में अनेक महाकवि ऐसे हुए हैं और अब भी हैं जो गुप्तजी से श्रेष्ठ हैं परन्तु जीवन के विविध प्रश्नों का उनमें उतना विस्तार नहीं मिलता जितना कि गुप्त जी में है। इसीलिए गुप्तजी को राष्ट्रकवि की पदवी से सम्मानित किया गया।

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने महाकाव्य और राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास को समकक्ष मानते हुए भी यह मत प्रकट किया है कि युग का प्रतिनिधि उपन्यास लिखा जाना एक प्रकार से असम्भव ही है। वाजपेयी जी का कथन है कि—"राष्ट्रीय संस्कृति के विकास में विभिन्न युगों के प्रतिनिधि महाकाव्य तो हो सकते हैं; परन्तु युग का प्रतिनिधि उपन्यास कठिनाई से मिलेगा। इसका कारण

यह है कि उपन्यास में सामाजिक जीवन के वाह्य स्वरूप को चित्रित करते हैं और ऐसा उपन्यास क्वचित् ही कोई हो सकता है जिनमें बाह्य सामाजिक जीवन के किसी युग विशेष का सम्पूर्ण चित्र दिखाया जा सके। महाकाव्य में युग की संस्कृति का चित्रण तथा युग की ज्वलन्त समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाता है, परन्तु सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण उसके सम्पूर्ण पक्षों के साथ किसी एक कृति में कर सकना सम्भव नहीं है।"

वाजपेयी जी के उपरोक्त वक्तव्य से यह ध्वनि निकलती है कि राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास उसे कहा जा सकता है जिसमें किसी युग विशेष का सम्पूर्ण चित्र दिखाया जा सके। परन्तु साथ ही आपका यह भी कहना है कि यह महाकाव्य में तो सम्भव है परन्तु उपन्यास में नहीं। दूसरी बात यह कि वाजपेयी जी 'राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास' संज्ञा को भी साहित्यिक दृष्टि से अधिक समीचीन नहीं मानते क्योंकि महाकाव्य की परम्परा औपन्यासिक परम्परा से नितांत भिन्न है। अँग्रेजी में राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास को Epic novel कहा जाता है। इस शब्द से यही अर्थ निकलता है कि एक ऐसा उपन्यास जिसमें Epic अर्थात् महाकाव्य की सी उदात्तता, विस्तार और विवेचन की गहराई हो तथा जो एक युग विशेष की संस्कृति का समग्र चित्र उपस्थित कर सके। महाकाव्य साहित्य की ही एक कृति है। उपन्यास भी साहित्यिक कृति मानी जाती है। अतः जो चित्रण एक महाकाव्य में सम्भव है वही एक उपन्यास में भी सम्भव हो सकता है क्योंकि दोनों का ही चित्रण विश्लेषणात्मक होता है। रही आकार की बात सो इस दिशा में उपन्यास लेखक के ऊपर कोई बन्धन नहीं लगाया गया है। अतः एक उपन्यास में भी किसी युग विशेष की संस्कृति का चित्रण सम्भव हो सकता है। प्रश्न केवल लेखक की क्षमता का है। क्षमता के अभाव में जिस प्रकार महाकाव्य लिखना असम्भव है उसी प्रकार राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास का निर्माण करना भी।

वाजपेयी जी रूसी उपन्यासकार तोल्स्तोय के प्रसिद्ध उपन्यास War and Peace को राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास मानते हैं। यह वृहदाकार ग्रन्थ है जो हिन्दी में अनुवादित होने पर ढाई हजार पृष्ठों का विशालकाय ग्रन्थ बन जायेगा

और आलोचकों ने जिसका नायक रूस की जनता को माना है। वाजपेयी जी के ही शब्दों में इसका कथानक सुसम्बद्ध नहीं है। परन्तु आप इसे Epic novel इसीलिए स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि—"टाल्स्टाय की साहित्यिक ख्याति, उनका रचना-सामर्थ्य, युग की सम्पूर्ण गतिविधि को एक कृति में समाहित करने की उनकी क्षमता, अप्रतिम थी।" सम्भव है कि वाजपेयी जी तोल्स्तोय की विश्व-विख्यात प्रसिद्धि, प्रतिभा एवं ग्रन्थ के वृहद् आकार से आतंकित होकर ही इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए बाध्य हुए हों।

'गोदान' को कुछ आलोचकों ने कृषक जीवन का महाकाव्य कहा है। यहाँ 'महाकाव्य' कहने से उनका अभिप्राय यह नहीं प्रतीत होता कि प्रेमचन्द ने 'गोदान' की रचना संस्कृत काव्य शास्त्र में वर्णित महाकाव्य के लक्षणों को सामने रखकर की थी। इस कथन से यही ध्वनि निकलती है कि 'गोदान' में महाकाव्य की सी उदात्तता, महानता, विस्तार एव गाम्भीर्य है। परन्तु वाजपेयी जी 'गोदान' की महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों को सामने रखकर ही परीक्षा करते हैं। महाकाव्य का एक लक्षण उसका वीर-रस प्रधान होना माना गया है। वाजपेयी जी के कथनानुसार गोदान में ग्रामीण जीवन के दैन्य और सामाजिक वैषम्य के चित्रण के कारण करुण-रस की प्रधानता है। "इस करुण रस प्रधान ग्राम्य चित्र को राष्ट्रीय जीवन का प्रतिनिधि चित्र नहीं कहा जा सकता।" वाजपेयी जी इस निष्कर्ष पर इसलिए पहुँचे हैं कि उन्हें 'गोदान' में भारतीय राष्ट्र की उस नव जाग्रति एवं सामाजिक उत्थान के चित्र नहीं मिले हैं जो उस समय सम्पूर्ण राष्ट्र में व्याप्त थी। अतः वे आगे चलकर यह घोषणा करते हैं—"पूरे उपन्यास को पढ़ लेने पर वर्तमान युग के सामाजिक और राज-नीतिक संघर्ष का बहुत ही कम आभास होता है। ऐसी अवस्था में इसे युग की प्रतिनिधि रचना कहना सुसंगत होगा।"

वाजपेयी जी महाकाव्य में उस युग की सर्वोच्च राष्ट्रीय चेतना तथा विकास की झलक पाना चाहते हैं। इसलिए महाकाव्य में वीर-भावना का होना अत्या-वश्यक है। वाजपेयी जी का एक आक्षेप और है कि 'गोदान' में समाज का सर्वतोमुखी चित्रण नहीं हुआ। उसमें भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में होने

वाले सांस्कृतिक विनिमय और राजनीतिक उद्योगों का कोई उल्लेख नहीं है। आगे चलकर वाजपेयी जी इस बात को स्वीकार कर लेते हैं कि—

"भारतवर्ष के वर्तमान जीवन में इतनी धारायें और अन्तर्धाराएँ, विचारों, आदर्शों की इतनी अनेकरूपता, साथ ही राष्ट्रीय उद्योग का इतना बड़ा सामारम्भ चल रहा है कि उसे किसी एक उपन्यास में बाँध सकना अत्यन्त कठिन है।" यह कहकर अन्त में आप इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि—"वास्तव में प्रेमचन्द जी सीमित देश और काल को लेकर वर्तमान ग्रामीण जीवन का दिग्दर्शन ही कराना चाहते हैं। 'गोदान' में न तो महाकाव्य के से औदात्य और उत्कर्ष का समारम्भ आया है और न गहनतम उच्छ्वास का सा सीमित और तन्मयकारी प्रभाव ही व्यक्त हो पाया है। हमारी दृष्टि में वह राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास की उन शर्तों को पूरा नहीं करता जिन्हें टालस्टाय का War and Peace (वार एन्ड पीस) उपन्यास करता है।"

वाजपेयी जी के उपर्युक्त वक्तव्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने एक तरफ तो संस्कृत महाकाव्यों के शास्त्रीय लक्षणों को सामने रखकर 'गोदान' के महाकाव्यत्व की परीक्षा की है तथा दूसरी ओर उन्होंने ताल्स्तोय के War and Peace नामक उपन्यास को राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास माना है।। 'उपन्यास' आधुनिक युग की देन है। इतने थोड़े से समय में ही इसकी परिभाषाओं में काफी अन्तर आ गया है। इसलिए हम शास्त्रीय लक्षणों से बंध कर उसका विवेचन नहीं कर सकते। उसके विवेचन के लिए हमें अपनी पूर्व मान्यताओं में परिवर्तन करना पड़ेगा तभी हम युग की प्रगति के साथ कदम मिला कर चल सकेंगे और ऐसा होने पर हम साहित्य की किसी नवीन विधा का सही मूल्यांकन करने में समर्थ हो सकेंगे।

वाजपेयी जी राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास को महाकाव्य का ही पर्याय समझते हैं इसलिए उसे महाकाव्य के लक्षणों की कसौटी पर परखना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि महाकाव्य के ही समान उसमें सम्पूर्ण शास्त्रीय लक्षणों को स्पष्ट रूप में देख लें। परन्तु वे साथ ही इस बात का कष्ट नहीं करते कि जो वस्तु उन्हें ऊपर से देखने पर नहीं मिलती उसे भीतर से देखने का भी प्रयत्न करें। 'गोदान' की उनकी की हुई आलोचना उनके इस असामर्थ्य का

सबसे बड़ा प्रमाण है। अब हम वाजपेयी जी के एक-एक आक्षेप को लेकर उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे।

प्रथम आक्षेप—वाजपेयी जी का सबसे पहला आक्षेप यह है कि **'गोदान' अपने युग का प्रतिनिधित्व नहीं करता क्योंकि उसमें उस युग की राष्ट्रीय जागृति एवं संघर्ष का चित्रण नहीं हुआ है।** उसका कथानक किसानों के सीमित क्षेत्र की गाथा तक ही सीमित होकर रह गया है। भारत कृषि प्रधान देश है। उसकी अस्सी प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है और होरी इस अस्सी प्रतिशत जनता का प्रतिनिधि है। इसलिये हम होरी को भारत की अस्सी प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करते हुए पाते हैं क्योंकि जो होरी की समस्यायें हैं, जैसा होरी का संघर्षमय जीवन है वैसा ही भारत के प्रत्येक किसान का है। इसलिए इस उपन्यास का कथानक सीमित न रह कर सारे भारत के किसानों की कथा को अपनी परिधि में समेट लेता है। इस कथानक का दूसरा पक्ष नागरिक जीवन का है जिसमें उच्चवर्ग एवं निम्नवर्ग दोनों का चित्रण आ गया है। और इन दोनों वर्गों का किसानों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इस तरह यह प्रतिशत और भी आगे बढ़ जाता है। अतः गोदान में हमें मध्यम वर्ग के थोड़े से अंश को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण भारत का चित्रण मिल जाता है। यह तो हुई 'गोदान' की कथावस्तु के विस्तृत क्षेत्र की समस्या।

दूसरी बात यह कि इसमें उस युग की राष्ट्रीय जागृति का समग्र चित्र नहीं आ पाया है। यह ठीक है। परन्तु प्रेमचन्द का उद्देश्य उस राष्ट्रीय जाग्रति का स्पष्ट रूप से चित्रण करना ही था। वे तो यह दिखाना चाहते थे कि देश व्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन के रहते हुए भी देश की जनसंख्या के सबसे बड़े भाग —किसान—की क्या स्थिति थी। क्या ये आन्दोलन किसान की स्थिति में किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन लाने में समर्थ हो सके थे? इसलिए प्रेमचन्द 'गोदान' के माध्यम से किसानों की वास्तविक स्थिति एवं समस्याओं को सामने रखकर यह माँग कर रहे थे कि देश के सारे राष्ट्रीय आन्दोलन तब तक व्यर्थ हैं जब तक कि राष्ट्र की रीढ़—किसान की स्थिति को नहीं सम्हाला जाता। क्या यह उद्देश्य महाकाव्य के गौरव के अनुरूप नहीं था? क्या इसी समस्या को सम्मुख रखकर एक महाकाव्य की पद्य में रचना नहीं की जा सकती थी?

वाजपेयी चित्र के इस पक्ष को क्यों भूल गए हैं ? परन्तु मुसीबत तभी आती है जब हम अपने पूर्वाग्रहों के मोह से मुक्त नहीं होना चाहते। तभी हमारा दृष्टिकोण सङ्कीर्ण और एकाँगी हो जाता है यदि कोई कवि किसानों की इसी करुण गाथा को पद्यबद्ध कर देता तो वाजपेयी जी उसे महाकाव्य स्वीकार कर लेते। महाकाव्य तो पद्य में लिखा जाता है फिर उसे गद्य के रूप में कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? वाजपेयी जी सम्भवत: इसी कारण 'गोदान' को महाकाव्य के समकक्ष मानने को प्रस्तुत नहीं है (War and Peace) भी गद्य में ही लिखा हुआ उपन्यास है परन्तु क्योंकि विश्व के जाने-माने हुए आलोचकों ने उसे राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास (Epic Novle) की पदवी प्रदान की है इसलिये वाजपेयी जी मजबूर होकर ही उसे स्वीकार कर लेते हैं फिर भी यह कहने से नहीं चूकते—"कि यह कृति वास्तव में उपन्यास नहीं है, उससे कुछ अधिक है।" इस वाक्य से यही ध्वनि निकलती है कि दरअसल वाजपेयीजी किसी उपन्यास को महाकाव्य के समकक्ष मानने को प्रस्तुत नहीं।

द्वितीय आक्षेप—वाजपेयीजी की दूसरी मान्यता यह है कि क्योंकि **महाकाव्य वीर रस प्रधान होना चाहिये और 'गोदान' में करुण-रस प्रधान है इसलिए उसे राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास नहीं माना जाना चाहिए।** वाजपेयीजी चाहते थे कि 'गोदान' में भारतीय राष्ट्र के संघर्ष का चित्रण होना चाहिए था। "हमारे देश में पिछले समय जो राष्ट्रीय संघर्ष हो रहा था, जिसके परिणामस्वरूप देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, वह अभूतपूर्व है। गोदान में इस सामाजिक उत्थान का कोई निर्देश नहीं है।" यदि प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' की भाँति किसान जमींदार के सीधे संघर्ष और किसान-आन्दोलनों का चित्रण 'गोदान' में भी कर देते तो कदाचित वाजपेयी जी इसे महाकाव्य के समकक्ष मान लेते। परन्तु उन्होंने 'प्रेमाश्रम' जैसे संघर्ष प्रधान उपन्यास को भी यह पदवी नहीं दी। उसमें उन्हें वीर-रस तो मिल गया होगा परन्तु उन्होंने उसमें महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों में से किसी अन्य लक्षण का अभाव ढूँढ़ लिया होगा।

यह सत्य है कि हमें 'गोदान' में संघर्ष का कोई प्रत्यक्ष रूप नहीं मिलता। उसका संघर्ष अप्रत्यक्ष परन्तु प्रत्यक्ष संघर्ष से अधिक प्रभावशाली है। होरी

जीवन भर आर्थिक अभाव के दानव से संघर्ष करता रहता है और अन्त में शक्ति क्षीण हो जाने पर मर जाता है। लेकिन जीवन में उसने हार कभी नहीं मानी। वह अन्त तक अजेय रहा। होरी राम है और आर्थिक अभाव ससैन्य रावण के समान घोर अत्याचारी और जनता का पीड़क है। इन दोनों विरोधियों में धनुष-बाण, आधुनिक अस्त्र-शस्त्र अथवा सत्याग्रह, असहयोग आदि के द्वारा युद्ध नहीं होता। इसलिए वाजपेयी जी को गोदान में वीर, रौद्र, वीभत्स आदि रसों के दर्शन नहीं होते। हमारे ख्याल में होरी का अत्याचार के विरोध में वह मूक संघर्ष उपरोक्त सभी प्रकार के संघर्षों से अधिक भयानक और अधिक लम्बे समय तक चलने वाला है। परन्तु उसे देखने के लिये हमें आदर्शवाद के चश्मे को आँखों पर से उतार देना पड़ेगा। सत्य एवं यथार्थ के कायल आलोचक की गहरी दृष्टि से ही उस संघर्ष के सम्पूर्ण रूप को हृदयंगम करने में समर्थ होती है।

होरी इस संघर्ष में अपने परिवार को साथ लिये हुए अकेला जूझता है। सुग्रीव और हनुमानादि के समान कोई भी उसकी सहायता करने को नहीं आते। देशव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलनों के कर्णधारों में से कोई भी उसकी करुण-पुकार नहीं सुनता। उसके दुश्मन अमित शक्तिशाली हैं। साहूकार, जमींदार, पटवारी, पुलिस, मिल-मालिक, बिरादरी के पञ्च, उसके हीरा जैसे अपने सगे भाई, अपने पूरे दलबल के साथ एकत्र होकर उस पर जीवन भर चढ़ाई करते रहते हैं। इन सब की पीठ पर इनके सबसे बड़े सेनापति अँग्रेज का हाथ है जिसके पास संसार की सर्व साधन सम्पन्न एक विशाल सेना है। अब जरा विरोधियों की तुलना कीजिए। एक तरफ अकेला होरी अथवा भारत का निरीह, अस्त्र-शस्त्र हीन किसान और दूसरी तरफ संसार का सर्वाधिक शक्तिशाली माना जाने वाला विशाल सैन्य-दल। होरी शत्रु की शक्ति को पहचानता है, हर प्रकार के हथकन्डों में अपना बचाव करता है और शत्रुरूपी इस भयंकर रूप से उद्वेलित संसार रूपी महासागर में अपने नन्हें प्राणों की किश्ती को साहस के साथ खेता चला जाता है। जब तक उसके शरीर में शक्ति की एक भी बूँद बाकी रहती है, वह हार नहीं मानता और अन्त में वीर क्षत्रिय के समान संघर्षों से भरी इस विशाल रणभूमि में अपने प्राण त्याग देता है।

पुराणों की मान्यताओं के अनुसार इस समय वह स्वर्ग में बैठा हुआ हिन्दी के आधुनिक आलोचकों की इस अज्ञानता पर कदाचित मुस्करा रहा होगा जो उसके जीवन को संघर्ष का जीवन नहीं मानते। यद्यपि होरी 'स्वर्ग की नसैनी' गौमाता के लिये बिलखता ही रहा था परन्तु मरने पर उसे स्वर्ग अवश्य मिला होगा।

होरी के जीवन में "दैन्य और दुख है परन्तु उसके निवारण का महा संकल्प भी है।" वह नये-नये कर्ज लेता है, झूठ बोलता है, भाइयों के साथ फरेब करता है, 'स्वर्ग की नसैनी' को प्राप्त करने के लिये भोला को झांसा देता है, दुश्मन का हृदय कामल बनाने के लिये उसकी विनती-चिरौरी करता है और अपने इन हथकन्डों से जीवन के इस युद्ध को काफी लम्बा खींच ले जाता है। उसका यह सम्पूर्ण संघर्ष वीर-रस-प्रधान है। परन्तु उसका अन्त: करुण-रस प्रधान ही रहता है। वाजपेयीजी करुण रस-प्रधान साहित्यिक कृति को महाकाव्य नहीं मानते। इस विषय में हमारी उनके साथ पूर्ण सहानुभूति है।

ततीय आक्षेप—वाजपेयीजी का तीसरा आक्षेप यह है कि—**पूरे उपन्यास को पढ़ लेने पर युग के सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष का बहुत ही कम आभास होता है।''** इसलिए इसे युग की प्रतिनिधि रचना नही माना जा सकता। ऊपरी दृष्टि से देखने पर यह आरोप सत्य प्रतीत होता है। परन्तु किसानों द्वारा जीवन-पर्यन्त किए जाने वाले, आर्थिक अभाव के दानव से मुक्ति का प्रयत्न क्या सामाजिक या राजनीतिक संघर्ष नहीं कहा जा सकता। उस युग में कांग्रेस का आन्दोलन हो रहा था। वाजपेयी जी उसे राजनीतिक संघर्ष मानते हैं परन्तु होरी के गाँव में उस संघर्ष का कहीं नामनिशान भी नहीं मिलता। इसका क्या कारण है? क्या यह असत्य है? जिन प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' एवं 'कर्मभूमि' में किसान-जमींदार संघर्ष का इतना व्यापक एवं सशक्त चित्रण किया था वे 'गोदान' में उसकी अवहेलना क्यों कर गए? इस अवहेलना का कारण यही है कि प्रेमचन्द को अपने पूर्वोक्त दोनों उपन्यासों का वह संघर्षमय चित्रण अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत हुआ था क्योंकि असलियत वही

थी जो 'गोदान' के वेलारी गाँव की थी। लखनपुर जैसे गाँव कल्पना की उपज थे। इनका प्रधान कारण यही था कि काँग्रेस का आन्दोलन देश के एक विशिष्ट वर्ग एवं क्षेत्र तक ही सीमित था। इसकी बागडोर नगरों के हाथ में थी जिससे गाँव की उपेक्षा की जाती थी। ग्रामीण क्षेत्र में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव बहुत ही कम था। वेलारी की धनिया जैसी साधारण स्त्री भी इस सत्य को समझ चुकी थी 'जेहल जाने से सुराज नहीं मिल सकता।" गाँवों में जागृति की लहर केवल उसी समय उठा करती थी जब सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ जाया करते थे और उनके स्थगित हो जाने पर वहाँ पुनः लूट और अत्याचार का बाजार गर्म हो उठता था। इस प्रकार भारत के गाँव इस राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रायः अछूते से ही रहे थे। प्रेमचन्द इस आन्दोलन की इस संकीर्णता एवं सीमा को पहचान गए थे। इसीलिए उन्होंने 'गोदान' में 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशंकर एवं 'कर्मभूमि' के अमरकान्त जैसे उच्चवर्गीय किसानों के नेताओं की अवतारणा नहीं की थी क्योंकि ऐसे नेता निर्बल और आदर्शवादी होने के कारण जनता का वास्तविक उपकार करने में असमर्थ रहे थे। इसके विपरीत प्रेमचन्द ने 'गोदान' में भारत के किसानों के उस मूक संघर्ष का विस्तार के साथ चित्रण किया है जो वे अपने अस्तित्व रक्षा के लिये युगों से करते चले आ रहे थे। 'राजनीतिक संघर्ष', 'राष्ट्रीय उत्कर्ष का संस्कार', 'सर्वोच्च राष्ट्रीय चेतना', आदि शब्द सामान्य जनता के उस मूक संघर्ष पर परदा डाल देते हैं जिसकी तरफ नगरों में रहने वाले उच्चवर्गीय नेताओं का ध्यान ही नहीं जा पाता। 'गोदान' में भारतीय कृषक की सम्पूर्ण संस्कृति का यथार्थ, सशक्त एवं विस्तृत चित्रण हुआ है परन्तु आदर्शवादी आलोचक 'उच्चता' के मोह में पड़कर न तो उसे संघर्ष मानते हैं और न संस्कृति।

रायसाहब और खन्ना काँग्रेस के नेता रह चुके थे। जिला एवं नगर में उनका प्रभाव था परन्तु हमारे पाठक उनका असली रूप पिछले पृष्ठों में भली प्रकार देख आये हैं। वाजपेयी जी जिसे राष्ट्रीय संघर्ष, सर्वोच्च राष्ट्रीय चेतना जैसी आकर्षक संज्ञायें प्रदान करते हैं, रायसाहब और खन्ना का चरित्र उस आन्दोलन की असलियत को खोलकर सामने रख देता है।

चतुर्थ आक्षेप—वाजपेयी जी का चौथा आरोप यह है कि **'गोदान'** में

समाज का सर्वतोमुखी चित्रण नहीं हुआ है। उनका देश और काल सीमित है। भारत के विभिन्न प्रान्तों में होने वाले सांस्कृतिक विनियमों एवं राजनीतिक उद्योगों का उसमें चित्रण नहीं है। वाजपेयी जी का यह कथन सत्य है परन्तु आंशिक रूप में ही। बेलारी जैसे गाँव भारत के कौने-कौने में छाये हुए हैं। उन सब गाँवों की स्थिति एक सी है इसलिए समस्या भी एक ही सी है। प्रेमचन्द की दृष्टि में सांस्कृतिक विनिमयों तथा राजनीतिक उद्योगों से इन गाँवों की आर्थिक समस्या को सुलझाना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था और वही उन्होंने किया। आप मूल समस्या को सुलझा दीजिए, अन्य समस्यायें स्वतः ही सुलझ जायेंगी। सूखते हुए वृक्ष की जड़ छोड़कर यदि आप उसकी टहनियों को सींचने लगेंगे तो संसार आपके विषय में क्या कहेगा, यह आप स्वयं सोच सकते हैं।

पाँचवां आक्षेप—वाजपेयी जी का पाँचवाँ आक्षेप यह है कि 'गोदान' में **चरित्रों की संख्या थोड़ी है और वे कुल मिलाकर युग-जीवन का यथेष्ठ परिचय नहीं करा पाते**। वाजपेयी जी को चरित्रों की संख्या तो इसलिए थोड़ी लगी क्योंकि War and Peace में लगभग पाँच सौ पात्र हैं। अगर प्रेमचन्द 'गोदान' में भी न्यूनाधिक इतने ही पात्रों की गिनती करा डालते तो यह भी उसी कोटि का उपन्यास मान लिया जाता। परन्तु प्रेमचन्द का उद्देश्य पात्रों की भरमार न कर थोड़े से पात्रों द्वारा ही अपनी मूल समस्या का स्पष्टीकरण कर देना था। उनका प्रत्येक पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रतीक अथवा प्रतिनिधि है। उन्होंने ऐसे ही पात्रों को नगर एवं ग्राम दोनों ही क्षेत्रों से उठाया है जिनका सीधा सम्बन्ध उपन्यास की मूल समस्या से है। यह मूल समस्या ही हमारे राष्ट्रीय जीवन का प्राण है। इसको सुलझाये बिना अन्य समस्याओं का सुलझना असम्भव है। काँग्रेस ने इस मूल-समस्या की उपेक्षा की थी इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भी जनता को किसी प्रकार की राहत नहीं मिल सकी। आज भारत की सामान्य-जनता पहले से भी अधिक दुखी है। खाद्य-संकट, व्यापार की मन्दी, नए करों का बोझ, विदेशी पूँजीपतियों द्वारा देश का शोषण, सरकारी अहलकारों एवं तथाकथित सफेद टोपी वाले नेताओं के अनाचारों एवं अत्याचारों ने देश के जीवन को विषम बना रखा है। क्या प्रेमचन्द

इसी प्रकार की स्वतन्त्रता के आकांक्षी थे ? उन्ही के शब्दों में आज शासन की बागडोर 'जान' (अँग्रेज) के हाथों में से छिनकर 'गोविन्द' (देशी पूँजी-पतियों) के हाथ में आ गई है । अतः प्रेमचन्द द्वारा 'गोदान' में उठाई गई आर्थिक-अभाव की भयंकर समस्या यदि हमारे राष्ट्रीय जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं करती तो और कौन सी समस्या करेगी ? अतः 'गोदान' का लक्ष्य इतना व्यापक एवं-सर्व-स्पर्शी है कि उसमें अनायास ही वर्णित युग का पूर्ण चित्र—गौण चित्रों को छोड़कर—आ गया है ।

छठा आक्षेप—वाजपेयी जी का छटवाँ आरोप यह है कि **'गोदान' के लेखक का उद्देश्य भारतवर्ष के वर्तमान जीवन की बहुमुखी प्रगति का चित्रण करना नहीं था** क्योंकि इतने विशाल समारम्भ को एक ही उपन्यास में बाँध सकना कठिन था । इसका उत्तर हम ऊपर दे चुके हैं । दूसरी चीज यह कि यदि विस्तार में न सही तो गहराई में तो यह उपन्यास युग का प्रतिनिधित्व करता ही है । 'होरी' देश के वास्तविक स्थिति का प्रतिनिधि है । 'होरी' के रूप में देश की करुणा साकार हो उठी है । परन्तु वाजपेयी जी इस बात को भी स्वीकार नहीं करते क्योंकि अपने आदर्शवाद के अनुसार वे इस उपन्यास में जिस कल्पित एवं उदात्त चित्रण की अपेक्षा करते थे वह उन्हें नहीं मिला । यथार्थ कभी आदर्श को सन्तुष्ट नहीं कर पाता । स्वप्न और सत्य में अन्तर रहता ही है । सत्य का सौन्दर्य तीखा होता है । स्वप्न द्रष्टा उसके तीखेपन से भयभीत होकर उसके वास्तविक रूप को देखने में असमर्थ रहते हैं । 'गोदान' का मूल्यांकन करते समय वाजपेयी की स्थिति भी ऐसी ही रही है । इसी कारण उन्हें 'गोदान' में ''न तो महाकाव्य के से औदात्य और उसके उत्कर्ष का समारम्भ'' दिखाई पड़ा है और ''न गहनतम उच्छवास का सा सीमित और तन्मयकारी प्रभाव'' ही मिला है । इसलिए उनकी दृष्टि में ''वह राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास की उन शर्तों को पूरा नहीं करता जिन्हें टाल्सटाय का War and Peace उपन्यास करता है ।

वाजपेयी जी ने War and Peace को ही राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास का आदर्श मानकर 'गोदान' की उक्त आलोचना की है । वे यह कल्पना करने में असमर्थ रहे हैं कि उससे भिन्न प्रकार का कोई उपन्यास भी इस संज्ञा का

अधिकारी हो सकता है। इसी कारण उन्हें उस दृष्टि से 'गोदान' में न्यूनतायें दिखाई पड़ीं और उन्होंने उक्त फतवा दे दिया। इस सीमित दृष्टिकोण के कारण उनकी दृष्टि 'गोदान' की उन विशेषताओं की तरफ नहीं जा पाई जो 'गोदान' को एक विशिष्ट गौरव प्रदान करती है।

'कथाकार प्रेमचन्द' के लेखक प्रसिद्ध क्रांतिकारी मन्मथनाथ गुप्त ने 'गोदान' की इन विशेषताओं को समझा है और लिखा है कि—'गोदान में हम होरी के जीवन संग्राम के एपिक इतिहास को पढ़ सकते हैं, किन्तु यह संग्राम केवल इसलिए है कि होरी किस प्रकार अपने सिर को पानी से ऊपर रख सके, किस प्रकार अस्तित्व को कायम रख सके। यह किसी बड़े या महान आदर्श के लिए संग्राम नहीं है, सच्चे मानों में यह केवल जीवन संग्राम है। होरी के लिये अपने जीवन को कायम रखना ही इतनी बड़ी समस्या है, और उसके प्रतिकूल इतनी शक्तियाँ हैं कि उसे दुनिया को बेहतर बनाने के लिए लड़ने की फुरसत ही नहीं है। यह सवाल ही उसके लिए नहीं उठता। इतना बड़ा एपिक संग्राम, इतने घात प्रतिघात, इतनी कुर्बानियाँ और इसका कोई ढंग का उद्देश्य नहीं। यह एक ट्रेजडी है, किन्तु यह ट्रेजडी आज सारे भारतवर्ष के बल्कि सारी दुनिया के अभी तक अजागरूक शोषितों की ट्रेजडी है। गोदान इसी ट्रेजडी की गुत्थियों को हमारे सामने स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है। जब हम इस दृष्टिकोण से गोदान को देखेंगे, तभी हम उसकी महत्ता को अच्छी तरह हृदयंगम कर सकेंगे।

उक्त ट्रेजडी के चित्रण द्वारा प्रेमचन्द हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए विवश करते हैं कि समाज सड़ गया है। इसका आमूल परिवर्तन सबसे प्रथम एवं सबसे महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। और ऐसा सुधारवादी उपाय से नहीं किया जा सकता। यह सन्देश अपने में एक महाकाव्य का सम्पूर्ण विस्तार, औदात्य, उत्कर्ष एवं तीव्र संवेदनशीलता को समेटे हुए है। इसके चित्रण बिहारी के नाविक के वे नन्हें-नन्हें परन्तु तीखे तीर हैं जो सीधे मर्म पर चोट करते हैं।

मन्मथनाथ गुप्त ने 'गोदान' के सन्देश का उद्घाटन करते हुए आगे लिखा है और उनका यह लिखना ही 'गोदान' को एक राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास की संज्ञा प्रदान करने के लिये पर्याप्त सबल प्रमाण है। आप लिखते हैं—'गोदान'

में प्रेमचन्द ने एक तरफ गांधीवादी और उसके बाद आने वाली वर्ग-संग्राम की तीव्रता की बुद्धि पर आधारित कर्म पद्धति तथा दूसरी तरफ विषमतामूलक वर्तमान समाज पद्धति और आगामी समाज-पद्धति जिसमें मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा—इन दोनों तरह की कर्म-पद्धति तथा समाज-पद्धति के प्रति अपना कर्त्तव्य बहुत अच्छी तरह निभाया है। पहले की कर्म-पद्धति तथा समाज-पद्धति को उन्होंने मृत्युदण्ड दिया है और आगामी कर्म-पद्धति तथा आगामी समाज को उन्होंने एक कलाकार का आशीर्वाद दिया है।"

संक्षेप में—"गोदान आगामी-युग का पेशखेमा था किन्तु अवश्य साथ ही साथ वह पहले के युगों का मुकुर भी है। सच बात तो यह है कि गोदान में यही दिखलाया गया है कि पहले के युगों में ही आगामी युग अन्तर्निहित है वह आ रहा है, उसे कोई रोक नहीं सकता। सहस्त्र वज्रों तथा एटम बमों की तरह उसकी शक्ति है, म्रियमाण तथा ह्रासशील समाज)पद्धतियाँ और विचार-धारायें उसकी जययात्रा को रोक नहीं सकती। वह युग आकर ही रहेगा। इसी में गोदान की श्रेष्ठता है, इसी में उसका अमरत्व है, इसी कारण और कला की कृतियों के मुकाबले में उसकी श्रेष्ठता है।"

(मन्मथनाथ गुप्त)

अतः इतने विशाल क्षेत्र एवं सन्देश को लेकर चलने वाले प्रेमचन्द जैसे अमर कलाकार की सर्वश्रेष्ठ कृति 'गोदान' राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास (Ebic Novel) की संज्ञा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी है। हम जब केवल शास्त्रीय सिद्धान्तों को ही सामने रखकर उसकी आलोचना करने बैठते हैं तो उसके वास्तविक मूल्य का अनुमान भी नहीं लगा पाते। हमें 'गोदान' जैसे युग प्रवर्तक उपन्यास के महत्व का पता तभी लगेगा जब हम सिद्धान्तों एवं आदर्शों के प्राचीन एवं कल्पित मोह को दूर हटाकर उसका मूल्यांकन करने में समर्थ हो सकेंगे। वाजपेयी जी प्रेमचन्द को आदर्शवादी उपन्यासकार मानते हैं। परन्तु जब 'गोदान' में उन्हें आदर्श के स्थान पर केवल यथार्थ का सशक्त चित्रण दिखाई पड़ा तो वे अचकचा उठे हैं। उनकी दृष्टि में कोई भी यथार्थवादी कृति महत्वपूर्ण नहीं हो सकती। वाजपेयीजी की अपनी मान्यतायें

हैं अपनी सीमायें हैं और उसी के अनुसार उन्होंने 'गोदान' को देखा है। परन्तु वास्तविकता वही है जो मन्मथनाथ गुप्त ने उपरोक्त पंक्तियों में व्यक्त की है।

प्रश्न २४—क्या आप प्रेमचन्द को हिन्दी का मौलिक उपन्यासकार मान सकते हैं?—इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिये।

उत्तर—इस प्रश्न के समाधान के लिये पहले हमें उनके पूर्व उपन्यासों के इतिहास एवं उस समय के प्रचलित उपन्यासों को देखना होगा। हिन्दी साहित्य में उपन्यास अँग्रेजी से बंगला द्वारा आया। इसीलिये साहित्य के इस अङ्ग का प्रारम्भ अनुवादों से हुआ। जासूसी और तिलिस्मी उपन्यासों के अनुवाद प्रारम्भिक काल में खूब निकले। इनमें सबसे अधिक जोर बङ्गाली उपन्यासों का रहा। उस समय बंगला उपन्यास की रुचि हिन्दी की अपेक्षा अधिक परिष्कृत थी। उसमें चरित्र चित्रण का भी प्राधान्य था। समाज, व्यक्ति और राष्ट्र उस समय बंगला के उपन्यासों के ध्येय बन चुके थे। उपन्यासों के हिन्दी अनुवाद बहुत लोकप्रिय हुए। इनमें मौलिक उपन्यास-निर्माण की भी प्रेरणा मिली।

इन अनुवादों के अतिरिक्त उस समय जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों का एकछत्र राज्य था। देवकीनन्दन खत्री का 'चन्द्रकान्ता' अत्यन्त लोकप्रिय रहा है और साधारण पाठकों में अब भी है। पाठक इन उपन्यासों के रहस्यों और तिलस्मी घटनाओं में डूब जाता है। कहते हैं इसे पढ़ने के लिये बहुतों ने हिन्दी सीखी थी। इनके अतिरिक्त गोपालराम गहमरी के इसी प्रकार के उपन्यास भी बहुत लोकप्रिय हुये। इसी क्षेत्र में किशोरी लाल गोस्वामी भी आते हैं यद्यपि उन्होंने उस समय कुछ मौलिक उपन्यास भी लिखे। इनके अतिरिक्त मराठी और अंग्रेजी से भी कुछ उपन्यासों के अनुवाद किये गये जो अधिक लोकप्रिय न हो सके।

यों तो हिन्दी के सबसे पहले उपन्यासों में गिने जाते हैं, बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ सुजान और एक अजान।' इनके अतिरिक्त श्री निवास दास का 'परीक्षा गुरु' और कृष्णदास का 'निस्सहाय हिन्दू' भी इसी कोटि में

आते हैं। प्रचलित तिलस्मी और अनुवादित उपन्यासों के सम्मुख ये अधिक लोकप्रिय नहीं हो सके क्योंकि न तो इनमें समाज का सजीव चित्रण था, न पात्र इतने सशक्त थे। तिलिस्मी, जासूसी तथा बंगला उपन्यासों के द्वारा पाठकों की रुचि भी परिष्कृत होती जा रही थी लेकिन स्वयं हिन्दी के पास उन्हें देने के लिये कोई अच्छे ग्रन्थ नहीं थे। लोगों को अपनी चीज की चाहना थी। इस समय जब प्रेमचन्द जी हिन्दी में आये तो जैसे सारा हाल अभिनन्दन और स्वागत में तालियों से गड़गड़ा उठा।

प्रेमचन्द जी का 'सेवासदन' उस समय की प्रचलित धाराओं में सबसे प्रथम प्रकार का उपन्यास था। उन्हें एक सीधी सरल स्वाभाविकता प्राप्त थी। हमारी कमजोरियाँ, सामाजिक बुराइयाँ, कुरीतियाँ, हमारी दैनिक समस्याएँ आदि उनका विषय थीं। इसलिये प्रेमचन्द जी के 'सेवादन' का जितना अधिक आदर एवं सत्कार किया गया, वह जहाँ जनता की भूख का सूचक था, वहाँ वह प्रेमचन्द जी की मौलिक प्रतिभा और समाज की मनोवृत्ति पहचानने वाली तीव्र दृष्टि का भी द्योतक था। प्रेमचन्दजी की मौलिकता उनकी भाषा और समस्याओं का चित्रण करने के ढंग में भी है। हमारे समाज का कोई भी ऐसा ढङ्ग नहीं बचा जो उनसे छूट गया हो। इन सभी बातों की ओर उनकी दृष्टि सबसे पहले गई और सबसे पहले, सबसे अच्छी तरह उन्होंने इन समस्याओं का चित्रण किया।

उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही प्रेमचन्द जी हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार माने गये हैं। उन्होंने ही तत्कालीन रुचि एवं समस्याओं को पहचान उन्हें चित्रित किया। यही उनकी लोकप्रियता की एकमात्र कुंजी है। ये उर्दू से हिन्दी में आये थे, इसलिये उनकी शैली में एक अद्भुत निखार था। उनके कथानक उस समय के प्रचलित कथानकों में सबसे अधिक प्रभावशाली एवं नवीन थे। उस समय अनुवादों और तिलस्मी उछलकूदों से बचना उन जैसे ही कुशल उपन्यासकार का काम था। इसी कारण वह प्रथम मौखिक उपन्यासकार कहलाए।

विशिष्ट परीक्षोपयोगी स्थलों की व्याख्यायें

(नोट—व्याख्या के लिए आये हुये गद्य-खंडों की पृष्ठ-संख्या सन् १९५६ में प्रकाशित 'गोदान' के तेरहवें संस्करण के अनुसार दी गई है।)

(१) पृष्ठ ५—६—"कभी तो··· ···· ज्ञान होता था।"

प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द के अंतिम उपन्यास 'गोदान' के प्रथम परिच्छेद में से लिया गया है। उपन्यासकार उपन्यास के नायक होरी की विपन्न दशा का विश्लेषण करता हुआ कहता है—

होरी और धनिया अपने बचपन से निरन्तर गरीबी के विरुद्ध संघर्ष करते आए थे परन्तु फिर भी उन्हें और उनके बच्चों को भरपेट रोटियाँ भी नसीब नहीं हो पाती थीं। इस निरन्तर के संघर्ष ने धनिया को असमय में ही वृद्धा बना दिया था। वह सदैव इस बात का विरोध किया करती थी कि जब जमींदार हमारे साथ कोई रियायत नहीं करता तो होरी क्यों बार-बार उसकी खुशामद करने के लिए जाया करता है। इसलिए जब कभी होरी जमींदार के यहाँ जाने की तैयारी करने लगता था तो पति-पत्नी में कलह हो जाया करती थी। धनिया को कभी भी सुख नहीं मिला था। परिवार में निरन्तर छाई रहने वाली गरीबी के कारण धनिया अपने आत्म-सम्मान के प्रति भी उदासीन हो उठी थी। वह जानती थी कि उसके विरोध करने पर होरी उसे फटकार देगा परन्तु फिर भी विरोध करना उसका स्वभाव सा बन गया था। गरीबी गरीब की आत्म-सम्मान की भावना को सदैव कुचल दिया करती है। पेट की चिन्ता करते-करते धनिया भी इसी स्थिति में आगई थी। वह सोचती थी कि निरन्तर परिश्रम करते रहने पर भी जब भरपेट भोजन तक न मयस्सर हो सके तो उसके लिए किसी की खुशामद क्यों की जाय। इसीलिए वह सदैव होरी का विरोध करती रहती थी और जब होरी उसे डाट देता था तब धनिया की समझ में वास्तविकता आ जाती थी कि यदि होरी ऐसा न करे तो उनका

कहीं भी ठिकाना न रहे। इसी खुशामद के बल पर अन्य अत्याचारों से उनके प्राण बचे रहते हैं।

विशेष—(१) प्रेमचन्द ने कृषक-जीवन की आर्थिक दशा का सुन्दर और सजीव चित्रण इन पंक्तियों में किया है।

(२) भाषा सरल और प्रवाहमयी है।

(२) पृष्ठ ६—"विपन्नता के इन ... ... हो सकता है।

प्रेमचन्द विरचित 'गोदान' के प्रथम परिच्छेद में से उद्धृत इन पंक्तियों में निरन्तर बने रहने वाले जीवन संघर्ष से त्रस्त होरी ने जब धनिया के मजाक के उत्तर में अत्यन्त वेदनापूर्ण स्वर में कह दिया कि—"साठे तक पहुँचने की नौबत नहीं आयेगी धनिया। इसके पहले ही चल देंगे।" तो धनिया भविष्य की आशंका से भयभीत हो उठी। वह केवल होरी के सहारे अपनी जीवन-नौका को खेती चली आ रही थी। कभी समाप्त न होने वाले दुःखों से परिपूर्ण उस जीवन में धनिया को यही सोचकर एकमात्र सन्तोष मिल जाता था कि वह अकेली नहीं है। उसका पति उसके साथ है और भारतीय नारी की मृत्यु-पर्यन्त सधवा बनी रहने की साध उसके जीवन की सबसे बड़ी साध और सबसे बड़ा सहारा होता है। इसी सुहाग के सहारे वह अपना जीवन दुखों में भी हँसते-खेलते काट ले जाती है। इसलिए होरी ने जब उपरोक्त शब्द कहे तो धनिया आतंकित हो उठी। होरी के ये शब्द यद्यपि उस परिस्थिति के उपयुक्त नहीं थे जिसमें कि वे कहे गए थे परन्तु इनमें सच्चाई की झलक अवश्य थी। क्योंकि होरी की अवस्था अभी चालीस वर्ष की ही थी और साठ तक पहुँचने के लिए बीस लम्बे वर्षों की कठिन यात्रा सामने मुँह बाये खड़ी थी। धनिया जानती थी कि इतना कठोर परिश्रम करते हुए इन लम्बे बीस वर्षों को पार करना कठिन था। यथार्थ के इसी ज्ञान ने उसे इस आशंका से भयभीत कर डाला कि कहीं उसका यह सहारा-पति-भी उससे न छिन जाय। क्योंकि होरी के उक्त कथन में यथार्थ का पुट था इसीलिए उसके इन शब्दों में इतनी वेदना भर उठी थी। पति-पत्नी दोनों ही उस तथ्य से अवगत थे। क्योंकि यह सत्य था इसी कारण धनिया अपने पति की मंगल-कामना के लिए इतनी व्याकुल हो उठी थी।

असत्य हमें कभी इतना प्रभावित नहीं करता जितना कि सत्य करता है। काना क्योंकि काना होता है—जो सत्य है—इसलिए काना कहने से उसे वेदना होती है परन्तु दो आँखों वाले व्यक्ति से यदि कोई काना कहे तो वह केवल हँस जाता है क्योंकि असत्य से व्यक्ति कभी भी दुखी या प्रभावित नहीं होता।

विशेष—(१) भारतीय कृषक की असहाय दशा का बड़ा ही मार्मिक और यथार्थ अङ्कन यहाँ हुआ है।

(२) भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है। भाषा की रवानगी भी दर्शनीय है।

पृष्ठ १६—"लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द अन्तिम लक्ष्य है।

उपन्यास का नायक होरी अपने जमींदार रायसाहब अमरपालसिंह के पास जाता है। जमींदार, शिक्षित, समझदार एवं कूटनीतिज्ञ व्यक्ति है। भावुकता में आकर वह जमींदारों के अत्याचारों का स्वयं ही विरोध करने लगते हैं और यह मानते हैं कि जमींदार बिना कुछ परिश्रम किये असहाय कृषकों की खून पसीने की कमाई को हड़प जाते हैं। उनका कथन है कि यदि जमींदार श्रम द्वारा अर्जित कमाई करना सीख जायें तो वे यह भी जान जायेंगे कि खून पसीने द्वारा कमाया हुआ धन कृषकों के लिए कितना जरूरी और प्रिय होता है और यह जानकर वे शायद कृषकों के ऊपर अत्याचार करके उनकी कमाई हड़पने के अमानवीय कृत्य को करना छोड़ देंगे, लेकिन चूँकि ये सब नहीं हो पा रहा है अतः न यह निश्चय मालूम होता है कि शोषण और अमानवीयता पर आधारित इस जमींदारी प्रथा का अंत शीघ्र ही होगा। सरकार भी चूँकि अपना स्वार्थ इस प्रथा के द्वारा सिद्ध कर चुकी है और इससे बदनाम भी काफी हो चुकी है—परिणाम-स्वरूप अब भी वह उनकी रक्षा नहीं कर सकेगी।

अतः परिस्थितियों का विश्लेषण करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बहुत जल्दी ही जमींदारी-प्रथा समाप्त हो जायेगी। रायसाहब उत्कण्ठा के साथ इस प्रथा की समाप्ति की प्रतीक्षा कर रहे हैं, ऐसा उनका कहना है। और वे ईश्वर से वह दिन शीघ्र ही लाने के लिए प्रार्थना भी करते हैं। क्योंकि ऐसा होने पर ही पतन के इस गर्त से उनका उद्धार सम्भव हो

सकेगा। परिस्थितियों ने इस जमींदार वर्ग को इतना पतित बना दिया है। उन्हें अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए बड़ों के चरण पकड़ने पड़ते हैं और छोटों का रक्त चूसना पड़ता है। इसी कारण उनका सर्वनाश हो रहा है। इसलिए वे कहते हैं कि जब तक उनके पास यह धन-सम्पदा रहेगी तब तक वह सच्चे अर्थों में मानव न बन सकेंगे। सम्पत्ति अभिशाप के समान है जो व्यक्ति को अकर्मण्य और पतित बना देती है। इसलिए रायसाहब इससे मुक्ति पाना चाहते हैं क्योंकि बिना इससे मुक्ति पाए वे सच्चे अर्थों में मानव न बन सकेंगे। और उनके जीवन का लक्ष्य यही है कि वे सच्चे अर्थों में मानव बन सकें। पराई मेहनत पर जीवन-यापन करना मानवता के विरुद्ध कहा गया है।

विशेष—(१) प्रेमचन्द जी जमींदारी प्रथा के परम विरोधी थे, इस प्रथा को वे मानवता के विरुद्ध समझते थे अतः वे इस अमानवीय प्रथा को शीघ्र से शीघ्र समाप्त करने के हिमायती थे। इस गद्यांश में जमींदार के मुख से इस प्रथा की बुराइयों को कहलवाकर उन्होंने इसके उन्मूलन की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया है।

(२) रायसाहब के चरित्र में अन्तर्विरोध का दिग्दर्शन बखूबी इन पंक्तियों से हो जाता है। रायसाहब मक्कार और धूर्त व्यक्ति हैं लेकिन भावुकता-वश वे भी जमींदार प्रथा का विरोध करने लगते हैं और इसे समाप्त करने के पक्ष-पाती मालूम पड़ते हैं। होरी के समक्ष वे जमींदार से अधिक सहृदय मानव के रूप में प्रस्तुत हो जाते हैं। लेकिन इस सम्भाषण के पश्चात् वे पुनः बेगार कराने एवं नजराना लेने जैसे कृषकों को शोषित करने वाले कर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं। प्रेमचन्द जी ने अपनी सधी हुई तूलिका से रायसाहब के द्विमुखी व्यक्तित्व का चित्र बड़ी सजीवता से अंकित कर दिया है।

(३) इस गद्यांश की भाषा चलती हुई और सजीव है। भाषा की सरलता भी दृष्टव्य है।

(४) पृष्ठ २४—"बूढ़ों के लिए ··· ··· ··· प्रसंग नहीं होता।"

वृद्ध लोग सदैव बीते हुए सुखों की प्रशंसा वर्तमान काल के दुखों की निन्दा और भविष्य में होने वाले सर्वनाश की चर्चा करने में बड़ी रुचि लेते हैं। जब दो वृद्ध आपस में बातें करने लगते हैं तो उन्हें इन्हीं बातों की चर्चा करने

में सबसे अधिक आनन्द प्राप्त होता है। वे प्राचीन परम्पराओं एवं मर्यादाओं के अन्ध भक्त होते हैं। उन्हीं के पालन में उन्हें सदैव सुख मिलता रहा है। इसलिए जब आगे चल कर अपने जीवन के संध्याकाल में वे उन परम्पराओं एवं मान्यताओं को ध्वस्त होता हुआ देखते हैं तो दुखी हो उठते हैं। समय सदैव जीर्ण-शीर्ण पुरातन का नाश कर नवीनता के क्षेत्र में पग बढ़ाता रहता है। इससे जीवन में तीव्रता आ जाती है। वृद्ध लोग इस तीव्रता के साथ पग मिला कर चलने में असमर्थ रहते हैं। उन्हें अपना पुराना जीवन अधिक सरल, सात्विक एवं सुन्दर प्रतीत होता है। इसीलिए उसके प्रति उनके मन में स्वाभाविक मोह रहता है। नवीनता को ग्रहण करने में उनका संस्कार-बद्ध मन असमर्थ रहता है। इसीलिए वर्तमान उन्हें सदैव दुर्भाग्यपूर्ण एवं घातक प्रतीत होने लगता है। और उन्हें आशंका बनी रहती है कि यदि युग इसी प्रकार आगे बढ़ता रहा तो भविष्य में सर्वनाश अवश्यम्भावी होगा। वे प्रगति के नवीन चरणों की दिशा एवं लक्ष्य को पहचान नहीं पाते इसीलिए भयभीत हो उठते हैं। और उन्हें इन्हीं बातों की चर्चा करने में सबसे अधिक आनन्द मिलता है।

विशेष—(१) वृद्धों के स्वभाव का बड़ा मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक चित्रण यहाँ हुआ है।

(२) भाषा सरल, सजीव और प्रवाह-युक्त है।

(५) पृष्ठ ३३-३४—"वैवाहिक जीवन के प्रभात में···हम तक नहीं पहुँचाता।"

प्रस्तुत गद्य-खंड में प्रेमचन्द ने अलंकारमयी भाषा में वैवाहिक जीवन की तुलना दिवस के द्वारा की है। जिस प्रकार उषा खिलती है, सूर्य उदय होता है, फिर मध्यान्ह का प्रखर ताप आता है और उसके उपरान्त दिन भर की क्लान्ति को दूर करने वाली संध्या आती है उसी प्रकार वैवाहिक जीवन में उत्थान-पतन आते रहते हैं।

जब विवाह होता है तो व्यक्ति के मन में उषा के समान मधुर विभिन्न प्रकार की लालसायें उठती रहती हैं। उस जीवन में एक विचित्र मादकता भरी रहती है और उस मादकता के कारण सम्पूर्ण जीवन सुखमय प्रतीत

होने लगता है। व्यक्ति सोचता है कि जिस प्रकार बाल-सूर्य की रंगीन किरणें संसार में एक सुखद एवं सुन्दर वातावरण उपस्थित कर देती हैं उसी प्रकार उसका यह विवाहित जीवन भी सदैव ऐसा ही सुखद एवं सुन्दर बना रहेगा। उस समय वह जीवन की चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। दो प्यासे, यौवन से परिपूर्ण हृदय जब आपस में मिलते हैं तब सारी चिन्ताओं को भूल कर आनन्द भोग में लीन हो जाते हैं। परन्तु बाल-सूर्य जब ऊपर उठता हुआ आकाश के मध्य में आ जाता है तब उसकी वे सुखद रंगीन किरणें अग्निवाणों के समान दाहक हो उठती हैं। लू चलने लगती है और उस भयंकर ताप से सारा संसार काँपने लगता है। इसी प्रकार विवाह के उपरान्त जब गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ सामने आती हैं तो व्यक्ति अपनी लालसा की तृप्ति का मोह छोड़कर उन्हें निभाने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। उसे आनन्दभोग के उस मनोहर एवं मादक वातावरण से बाहर निकल कर जीवन के संघर्ष-पूर्ण क्षेत्र में जुट जाना पड़ता है। और यह क्षेत्र संकटों से परिपूर्ण रहता है। उसे अथक परिश्रम करते हुये आगे बढ़ना पड़ता है। लालसा की मादकता नष्ट हो जाती है और जीवन का संघर्षमय यथार्थ रूप उसके सम्मुख आ खड़ा होता है।

परिश्रम करते-करते जब उसकी अवस्था ढलने लगती है और वह क्लान्त हो उठता है तो उसकी सन्तति उसके उस संघर्ष के भार को सम्हाल लेती है। और वह थके हुये पथिक के समान विश्राम करता चाहता है। जीवन का यह भाग संध्या के समान शीतल एवं शान्त होता है। संघर्ष की ज्वाला का अन्त हो जाता है। और ऐसी स्थिति में आकर व्यक्ति निर्लिप्त भाव से अपने विगत जीवन की बातें करने में आनन्द का अनुभव करता है। उस समय उसे संसार से कोई क्रियात्मक मोह नहीं रह जाता संसार के संघर्षों की ज्वाला एवं हलचल से दूर रहते हुए वह अपने विगत जीवन को इस भाव से देखता है जैसे कोई व्यक्ति किसी बहुत ऊँचे शिखर पर जा बैठा हो और वहाँ से नीचे के व्यस्त संसार को तटस्थ भाव से देख रहा हो, जिससे अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहा हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने गद्य में भी अलंकारों का सफल प्रयोग करके कविता के समान माधुर्य उत्पन्न कर दिया है।

(२) सांगरूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(३) भाषा अलंकारिक एवं चमक-दमक से पूर्ण है।

(६) **पृष्ठ ४७ – 'उनकी दृष्टि में······यौवन जाग उठा है।**

प्रस्तुत गद्यांश में प्रेमचन्द झुनियाँ के यौवन से पूर्ण हृदय का विश्लेषण करते हैं।

गोबर अभी अल्हड़ किशोर था अतः उसकी भाभियाँ उससे केवल मजाक ही किया करती थीं। उनके उस मजाक में कोई कलुषित भावना नहीं रहती थी। वे जानती थीं कि वह अभी किशोर है, उसमें अभी यौवन का स्फुरण नहीं हुआ है। इस अवस्था में उसके प्रति आकर्षित होना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार फल वाले वृक्ष के फूलों पर ढेले मारना व्यर्थ है क्योंकि उसके फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। फूल जब फल बन जाय तब उस पर ढेले फैंकना सार्थक होता है। गोबर की अवस्था अभी फूल की ही थी। उसमें यौवन रूपी फल नहीं लगा था। इसलिये भाभियों के उस मजाक में गोबर को किसी भी प्रकार का आमन्त्रण अथवा उत्साह नहीं प्राप्त होता था। वह अपने को किशोर समझता था। झुनियाँ युवती परन्तु बाल-विधवा नारी थी। जब उसकी भाभियाँ उससे मजाक करतीं तथा जब वह उन्हें अपने पतियों के साथ हास-विलास करती हुए देखती तो उसका यौवन से परिपूर्ण हृदय विचलित हो उठता था। वह किसी को समर्पित हो जाने के लिए व्याकुल हो उठती थी। ऐसी मानसिक स्थिति में जब गोबर से उसकी भेंट हुई तो उसका भूखा मन गोबर की उस कुमारावस्था पर ही ललचा उठा। और उधर झुनियाँ के इस साभिप्राय आकर्षण से गोबर के मन में भी एकाएक यौवन की भावनायें उसी तरह जाग्रत हो उठीं जिस तरह कोई शिकारी जानवर पत्ते के खड़कते ही चौकन्ना होकर खड़ा हो जाता है।

विशेष—(१) युवक हृदय की भावनाओं का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है।

(२) भाषा प्रवाहपूर्ण और शैली कवित्वपूर्ण है।

(७) **पृष्ठ ५७—"जब से मनुष्य ······ न बन सकी।"**

डाक्टर मेहता का कहना है कि संसार में छोटे-बड़े का भेद हमेशा रहेगा और रहना भी चाहिये। इस भेद को मिटा देने से मनुष्य-जाति का सर्वनाश

हो जायेगा। उनका तर्क यह है कि जब से मनुष्य के हृदय में ममत्व का अर्थात् दूसरों के प्रति ममता एवं करुणा का उदय हुआ तभी से ऊँच-नीच या छोटे-बड़े के भेद को समाप्त करने का समर्थन करने वाले मत का प्रारम्भ हुआ। गौतम बुद्ध, प्लेटो और ईसा जैसे महान धर्म-प्रवर्तकों एवं विचारकों ने मानव-मात्र ही नहीं अपितु जीवमात्र की समता का प्रचार किया। यूनान, रोम और सीरिया की प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृतियों ने समता के इस सिद्धांत को मानव समाज में लागू करना चाहा। परन्तु डाक्टर मेहता का कहना है कि समता का यह सिद्धान्त अप्राकृतिक अतः अव्यावहारिक था, इसलिए उसे सफलता न मिल सकी। यदि मिली तो क्षणिक काल के लिए मिली। वह स्थायी न रह सकी। क्योंकि आज भी, इतने वर्षों के उपरान्त मानव-समाज ऊँच-नीच के इस भेद से मुक्त नहीं हो पाया है।

विशेष—प्रेमचन्द जी उन साम्यवादियों से सहमत नहीं हैं जो सभी मनुष्यों को एक समान मानते हैं।

(८) पृष्ठ ५८—"धन को श्राप .... विषमता नहीं है।"

डाक्टर मेहता अपने उपरोक्त मत की पुष्टि निम्नलिखित तर्कों द्वारा करते हैं। आपका कहना है कि आप किसी अन्याय द्वारा, अर्थात् अमीरों के धन को छीनकर तथा उसे मनुष्यों में समान रूप से विभाजित कर, सब में बराबर फैला सकते हैं। धन प्रकृति-प्रदत्त वस्तु नहीं है। इसीलिए उसका समान विभाजन सम्भव हो सकता है। परन्तु ऐसा करना अन्याय होगा क्योंकि बिना बल प्रयोग के ऐसा सम्भव नहीं। यह ठीक है। लेकिन बुद्धि, चरित्र, रूप, प्रतिभा तथा बल आदि गुण प्रकृति-प्रदत्त होते हैं। इसलिए इन गुणों का मानव-मात्र में समान वितरण या विभाजन करना मानव की शक्ति से परे है। दूसरी बात यह है कि समाज में छोटे बड़े का भेद धन के आधार पर ही नहीं माना जाता, क्योंकि संसार में प्रायः यह दृश्य दिखाई पड़ जाता है कि बड़े-बड़े धनी व्यक्ति भिक्षुकों के सामने घुटने टेक देते हैं। उदाहरण के लिए गौतम बुद्ध से प्रभावित होकर अनेक धनपतियों ने अपना सब कुछ उनके संघ को समर्पित कर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था। रूपवती नारियों का प्रेम प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े सम्राट उनके द्वार पर जाकर नाक रगड़ते

हैं। इतिहास में अनेक ऐसी घटनायें मिलती हैं जहाँ किसी अत्यन्त रूपवती परन्तु साधारण सामाजिक स्थिति की नारी ने साम्राज्यों का संचालन किया है जैसे नूरजहाँ ने किया था। क्या गुणों की इस असमानता को सामाजिक विषमता नहीं माना जायेगा ?

विशेष—मनुष्यों के बीच असमानता रहेगी ही, प्रेमचन्द ने इस मत की पुष्टि इन पंक्तियों में की है !

(९) पृष्ठ ५८—'**बुद्धि अगर स्वार्थ ········· देना चाहते हैं।**'

रायसाहब डाक्टर मेहता के उपरोक्त तर्कों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि हम केवल बुद्धि के उसी रूप का अधिकार मानने को प्रस्तुत हैं जिसमें स्वार्थ की भावना न हो। स्वार्थ से भरी हुई बुद्धि समाज के लिए कल्याणकारी नहीं होती। समाजवाद का आदर्श समाज का पूर्ण कल्याण है। इसलिए स्वार्थ-पूरित बुद्धि समाजवाद के लिए घातक होती है। समाज महात्माओं का सम्मान केवल उनके त्याग के बल के कारण करता है। जिस प्रकार हम त्याग के बल का सम्मान करते हैं उसी प्रकार बुद्धि के बल का सम्मान कर उसे अधिकार और नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं। परन्तु बुद्धि को सम्पत्ति पर अधिकार नहीं करने दे सकते। क्योंकि बुद्धि से प्राप्त अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है परन्तु सम्पत्ति व्यक्ति के उपरान्त उत्तराधिकारियों के हाथ में चली जाती है और ऐसा होने पर उसके लिए झगड़े होने लगते हैं। इसलिए सम्पत्ति बुद्धि से बहुत घातक एवं विषैली है। बुद्धि के बिना किसी भी समाज का सुचारु संचालन असभम्व है परन्तु धन के बिना सम्भव हो सकता है। इसलिए रायसाहब कहते हैं कि हमें पहले इस बिच्छू के डंक के समान विषैली सम्पत्ति को नष्ट कर देना चाहिए। तभी समाज में सुख शान्ति स्थापित हो सकेगी।

विशेष—रायसाहब का चरित्र उपन्यासकार ने यहाँ विवेकी और प्रबुद्ध व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। यहाँ उसकी विचारधारा की स्पष्टता दर्शनीय है।

(१०) ८६—"**सामने की पर्वत माला ··· ···· नहीं पाता।**"

मेहता शिकार के समय एक पीपल की छाँह में जा बैठे। उनके सम्मुख

विशाल पर्वत माला फैली हुई थी और एक ऊँचे शिखर पर एक मन्दिर दिखाई दे रहा था। मेहता इस दृश्य को देखकर विभोर हो उठे। मेहता दार्शनिक हैं इसलिए उपन्यासकार ने इस दृश्य को दर्शन-तत्व के समान रूपक बांध कर उपस्थित किया है।

जिस प्रकार दर्शन का तत्त्व अगम्य और अत्यन्त विस्तृत होता है, सामने की पर्वतमाला उसी के समान अगम्य और अत्यन्त विस्तृत थी। उसका रूप ऐसा था मानों वह अगम्यता एवं विस्तार द्वारा ज्ञान की अगम्यता एवं विस्तार का बोध करा रही हो। मानो आत्मा उस ज्ञान को, उस प्रकार को ('तमसो मा ज्योतिगमय'), उस अगम्यता को, उस पर्वत माला के विराट रूप द्वारा साकार रूप में देख रही हो। दूर एक शिखर पर एक छोटा-सा मन्दिर बना हुआ था। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह बुद्धि के समान ऊँचा एवं एकाँकी हो। जिस प्रकार बुद्धि ज्ञान की उस अगम्यता का रहस्य-भेदन करने के लिए बड़ी ऊँची उड़ानें भरती है परंतु फिर भी उस ज्ञान के पूर्णत्व को प्राप्त न कर सकने के कारण उदास एवं कुछ खोई खोई सी खड़ी रह जाती है। मनुष्य का मन- पक्षी के समान उस बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान के अंश द्वारा संतोष प्राप्त करना चाहता है, परंतु उसे संतोष नहीं होता। अर्थात् बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञानाँश मनुष्य के मन को संतोष प्रदान करने में असमर्थ रहता है। निष्कर्ष यह निकला कि हम बुद्धि द्वारा जिस सत्य का उद्घाटन करते हैं, सत्य का वह रूप हमारे मन को संतोष प्रदान करने में असमर्थ रहता है क्योंकि वह व्यावहारिक जगत से दूर की वस्तु होती है। इसलिए हमारा व्यावहारिक मन उसे ग्रहण नहीं कर पाता।

विशेष—(१) मेहता चूँकि दार्शनिक है अतः पर्वतमाला को देखकर उनके मन में दार्शनिक भावों का उठना स्वाभाविक है।

(२) विचारों के अनुरूप भाषा भी यहाँ गम्भीर और मंथर हो गई है। प्रतीकों के प्रयोग से दुरुहता भी आ गई है।

(११) पृष्ठ १२८"धनिया का यह मातृ स्नेह ··· ··· लेता था।"

जब धनिया ने झुनियाँ के प्रसंग को लेकर होरी को बिगड़ते देखा तो उसके हृदय में झुनियाँ के लिए मातृस्नेह उमड़ पड़ा और उसने होरी के गले में बाँहें

डाल कर उससे झुनियाँ से कुछ भी न कहने की प्रार्थना की। प्रेमचन्द ने धनिया के उसी मातृ रूप का चित्रण अत्यन्त भावुक होकर किया है।

धनिया के हृदय में उत्पन्न उस मातृस्नेह की भावना ने उसके मुख-मंडल पर एक ऐसी स्निग्ध आभा उत्पन्न कर दी जिससे उसका मुख उस अंधेरे में भी चमक सा उठा। जिस प्रकार दीपक अन्धकार में प्रकाश उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार मातृस्नेह की इस भावना ने धनिया के चिन्ताओं से जर्जर बने हुए मुख को एक नई शोभा प्रदान कर दी। होरी और धनिया दोनों के हृदयों में मानों बीते हुए यौवन की लहरें उत्पन्न हो उठीं। धनिया का यौवन समाप्त हो चुका था परन्तु होरी को धनिया इस समय भी वैसी ही सरल एवं कोमल हृदय वाली बालिका के समान प्रतीत हुई जैसी वह पच्चीस साल पहले अपने विवाह के समय थी। धनिया के उस आलिंगन में वात्सल्य की कितनी अथाह भावना भरी हुई थी जो झुनियाँ के आगमन से उत्पन्न होने वाले सारे कलंक, सारी सामाजिक बाधाओं तथा समाज की सम्पूर्ण रूढ़िवादी परम्पराओं का सामना करने को कटिबद्ध थी।

विशेष—(१) धनिया के ममत्वपूर्ण हृदय की बड़ी मधुर झाँकी यहाँ लेखक ने प्रस्तुत की है।

(२) भाषा सरल है और शैली कवित्वपूर्ण है।

(१२) पृष्ठ १२८—"वह आफत की ...... खड़ा था।"

झुनियाँ विधवा थी। उसकी भाभियाँ सदैव उस पर व्यंग्य कसा करती थीं। जीवन का कोई भी सुख उसे प्राप्त नहीं हो पाता था। इसलिए इन आफतों से दुखी एवं उद्विग्न होकर वह किसी की भी किंचित् सहानुभूति प्राप्त करने के लिए सदैव लालायित बनी रहती थी। वृक्ष की छाया के समान क्षणिक शान्ति एवं विश्राम देने वाली सहानुभूति के स्थान पर जब उसे गोबर के प्रेम के रूप में सुख से जीवन-यापन करने योग्य एक भवन मिल गया; किंचित् सुख की लालसा करते हुए उसे जीवन व्यापी विशाल सुख एवं आश्रय प्राप्त हो गया। और वह समझने लगी कि गोबर का प्रेम पाकर वह जीवन भर सुखी एवं सुरक्षित रहेगी। परन्तु आज जब गोबर उसे इस विषम परिस्थिति में डालकर भाग खड़ा हुआ तो झुनियाँ का वह सुख एवं

सुरक्षा का विशाल भवन एकाएक उसी तरह गायब हो गया जैसे अलादीन के चिराग के जिन्न द्वारा बनाया गया राजभवन पलक झपकते ही गायब हो जाता था। उस सहारे के समाप्त हो जाने पर उसका भविष्य एक विकराल दैत्य के समान उसे निगल जाने को सामने आ खड़ा हुआ। स्वजनों से विछोह, समाज की लांछना, गोबर का विश्वासघात आदि के कारण वह अपने भविष्य को पूर्णतः अन्धकारमय देख रही थी।

विशेष— (१) प्रेमचन्द ने झुनियाँ की मानसिक स्थिति का बड़ा सजीव चित्रण प्रस्तुत पंक्तियों में किया है।

(२) अलङ्कारों के प्रयोग से वर्णन में स्पष्टता एवं प्रभावोत्पादकता का समावेश हो गया है।

(१३) पृष्ठ १३९-४०—"वह अभिसार की······ पीछे लौट पड़ा।"

गोबर जब झुनियाँ को अपने गाँव तक पहुँचा कर रास्ते से ही भाग खड़ा हुआ तो कुछ दूर जाकर सोचने लगा। उसने झुनियाँ से प्रीति और निबाह की बात की थीं। उसे जीवन के वे क्षण याद आये जब वह प्रेम में उन्मत्त होकर झुनियाँ से चुपचाप मिलने जाया करता था और मिलन के समय जब वह उन्मत्त उसासें लेता हुआ, प्रेम के नशे से भरी हुई अपनी दृष्टि द्वारा मानो अपने प्राणों को झुनियाँ के चरणों पर लुटा देता था। गोबर से पहले विधवा झुनियाँ किसी एकाकी पक्षी के समान अपने पिता के घर रूपी घोंसले में चुप-चाप अपने दिन काट रही थी। वह किसी के भी प्रलोभन में नहीं आती थी। उस जीवन में पति का विलास के लिए उन्मत्त आग्रह नहीं था और न मिलन से उत्पन्न उल्लास ही था। बच्चे न होने से उनकी सुन्दर बातें भी नहीं थीं। इन सारे अभावों के रहते हुए भी झुनियाँ को इस बात का सन्तोष था कि पिता के घर रहते हुए कोई बहेलिए के समान छली पुरुष आकर्षणों का जाल बिछाये हुये उनके पीछे नहीं पड़ता था। उसके ऐसे अभाव-ग्रस्त परन्तु सुरक्षित जीवन में गोबर ने प्रवेश किया था। यह तो नहीं कहा जा सकता कि गोबर ने उसके उस एकान्त जीवन में प्रवेश कर उसे किसी भी प्रकार का कोई आनन्द पहुँचाया था या नहीं परन्तु यह सत्य था कि उसने उसके जीवन को संकट में डाल दिया था। उसके गर्भ को लेकर अब वह कहाँ

सुरक्षा पाये ? यह सोचकर गोबर सम्हल गया। और भुनियाँ की सहायता एवं रक्षा करने के लिए उसी भाँति पीछे लौट पड़ा जैसे रणक्षेत्र से भागता हुआ कोई सैनिक अपनी साथी की ललकार को सुनकर जूझने के लिए पुनः लौट पड़े।

विशेष—(१) गोबर के चरित्र का अङ्कन लेखन ने बड़ी कुशलता के साथ किया है। उसके हृदय के अन्तर्द्वंद की झाँकी यहाँ बड़ी सजीव बन पड़ी है।

(२) अलङ्कार योजना से भाषा में सजीवता आगई है।

(१४) पृष्ठ १५४-५५—"मेरे जेहन में·······सर्वांश में स्त्री हो।"

मिर्जा खुर्शेद द्वारा आयोजित कबड्डी के समाप्त हो जाने पर मेहता और मिर्जा मालती के विषय में बातें कर रहे थे। मिर्जा ने कहा कि अफवाह है कि मालती की मेहता से शादी हो रही है। इस पर मेहता ने इस कयास को गलत बताते हुये नर और नारी की व्याख्या की और यह बताया कि कैसी नारी को पत्नि-रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

मेहता ने कहा कि उसके विचारानुसार नारी सच्चाई और त्याग की मूर्ति होती है। नारी निरीह होती है इसलिए कभी पति के किसी भी कार्य को देखकर शिकायत नहीं करती। पति के लिये सर्वस्व त्याग करने को प्रस्तुत रहती है और अपने अहं आदि को पूर्णतः नष्ट कर पूरी तरह पति के अस्तित्व में अपने अस्तित्व को विलीन कर देती है। पति और पत्नी के संयोग में शरीर पुरुष का रह जाता है परन्तु आत्मा पूर्णतः पत्नी के अधिकार में आ जाती है। नारी अपना सर्वस्व बलिदान कर पुरुष की आत्मा पर विजय प्राप्त कर लेती है। अब प्रश्न यह उठता है कि नारी ही अपने को क्यों मिटाती है, पुरुष अपने को क्यों नहीं मिटाता, यह त्याग क्यों नहीं करता ? नारी से त्याग की ही आशा क्यों करता हैं ? मेहता इसका उत्तर देते हैं कि पुरुष में त्याग एवं बलिदान करने की वह शक्ति ही नहीं होती जो नारी में होती है। यदि पुरुष अपने अहं का विसर्जन कर देगा तो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। ऐसा होने पर वह संसार से विरक्त होकर तपस्या करने के लिए किसी खोह में जा बैठेगा और वहाँ ईश्वर से मिलने का स्वप्न देखता रहेगा। अर्थात् कर्मक्षेत्र से भागकर वह मोक्ष की लालसा करने लगेगा। वह ऐसा इसलिये करता है क्योंकि उसमें तेज का

अंश प्रधान होता है। और तेज से व्यक्ति अहंकारी हो जाता है। इसलिये पुरुष अपने अहंकार में यह समझ कर कि वह पूर्ण ज्ञानी है, ईश्वर से मिलके के स्वप्न देखने लगता है। इसके विपरीत नारी में तेज का अंश प्रधान नहीं होता इसलिए उसमें अहंकार भी नहीं होता। और अहंकार न होने से वह स्वप्न भी नहीं देखती। उसका जीवन यथार्थ से सटा हुआ चलता है। स्त्री पृथ्वी के समान सम्पूर्ण आपदाओं एवं कष्टों का सामना धैर्य के साथ करती है। उसमें शान्ति की प्रधानता रहती है। वह सब कुछ सह लेती है। यदि पुरुष में नारी के ये गुण आ जाते हैं तो संसार उसे महात्मा कहने लगता है। सहिष्णुता, शान्ति, क्षमा, दया, करुणा आदि नारी के गुण हैं। महात्माओं में इन्हीं गुणों की प्रधानता पाई जाती है। परन्तु यदि नारी में पुरुष का वह तेज एवं अहंकार आ जाता है तो वह-भ्रष्ट होकर कुलटा हो जाती है। पुरुष ऐसी ही नारी के प्रति आकर्षित होता है जिसमें नारी के उपरोक्त सम्पूर्ण गुण विद्यमान रहते हैं। पुरुष के गुणों से युक्त नारी पुरुष को आकर्षित नहीं कर पाती। समर्पण नारी की विशेषता है, पुरुष की नहीं। मेहता जैसे पुरुष ऐसी स्त्री से विवाह कर सकते हैं जो बिना किसी शर्त के पूर्ण समर्पण कर दे।

विशेष—प्रेमचन्द ने यहाँ मेहता के द्वारा भारतीय नारी की त्यागशीलता एवं क्षमाशीलता का गुणगान किया है। नारी के इन गुणों को ही वे नारी का गौरव मानते हैं।

(१५) पृष्ठ १६९—"पुरुष कहता········सहयोग कहाँ है ?"

डाक्टर मेहता के भाषण के इस अंश को समझने के लिये हमें इसे इससे पूर्व व्यक्त किए गये संदर्भ में देखना पड़ेगा। मेहता नारी को पुरुष से श्रेष्ठ मानते हैं। नारी क्षमा, त्याग और अहिंसा की मूर्ति होती है। पुरुष इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए युगों से प्रयत्न करता चला आ रहा है। परन्तु असफल रहा है। पुरुष का सम्पूर्ण अध्यात्म-चिन्तन और योग नारी के त्याग की तुलना में बराबर नहीं बैठता। इसके उपरान्त मेहता अपने प्रयत्नों के प्रति पुरुष के दम्भ की व्याख्या करते हैं।

पुरुष को इस बात का गर्व है कि संसार के सारे दार्शनिक एवं वैज्ञानिक आविष्कार करने वाले पुरुष ही हुए हैं। बड़े-बड़े महात्मा योद्धा राजनीतिज्ञ,

नाविक आदि केवल पुरुष ही हुए हैं। यह सत्य है। परन्तु प्रश्न यह है कि इन बड़े आदमियों ने किया क्या ? उनके प्रयत्नों का परिणाम क्या निकला ? संसार के महात्माओं एवं धर्म-प्रवर्त्तकों ने मानव-मानव के बीच भेद की खाई उत्पन्न कर वैमनस्य के बीज बोये और इस वैमनस्य का परिणाम यह हुआ कि संसार में रक्त की नदियाँ बहीं । प्रत्येक धर्म-प्रवर्त्तक ने अपने ही विचारों एवं उपदेशों को पूर्ण एवं अन्तिम सत्य घोषित कर अन्य विचारकों तथा धर्म-प्रवर्त्तकों के प्रति विद्वेष की भावना उत्पन्न की। ईसाइयों, मुसलमानों, बौद्धों तथा अन्य प्राचीन धर्मावलम्बियों ने अपने ही मत को सर्वोपरि रखने के लिए क्या-क्या कुकर्म नहीं किये, कौन-कौन से अत्याचारों का सहारा नहीं लिया, इतिहास इसका प्रमाण है। धर्म युद्धों ने मध्यकालीन युग को पागल बना डाला था। यह तो हुई विचारकों, महात्माओं तथा धर्म प्रवर्त्तकों के कर्मों की सूची।

संसार प्रसिद्ध योद्धाओं ने अपनी वीरता किस पर दिखाई ? अपने भाइयों पर ही। उन्होंने अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए लाखों-करोड़ों भाइयों को (मानव-मात्र आपस में भाई हैं) युद्धों में कटवा दिया ! राजनीतिज्ञों ने जिन विशाल साम्राज्यों की स्थापना की थी आज वे कहाँ हैं ? उनके खण्डहर ही आज उनके विगत अस्तित्व की कहानी कहने के लिये शेष रह गये हैं। प्राचीन रोम, मिश्र, सीरिया, क्रीट, मोहेन्दजोदड़ों आदि की सभ्यतायें आज इतिहास का विषय बनकर रह गई हैं। यदि उनमें सच्चाई एवं कल्याण की भावना होती तो वे नष्ट ही क्यों होतीं। यह हुईं इतिहास की बातें।

अब उन आधुनिक वैज्ञानिकों को देखिये जिन्होंने मशीन-युग का प्रवर्त्तन कर मानव-जीवन को अधिक सुरक्षित एवं सुखी बनाने का दम्भ किया है। परन्तु इनके सम्पूर्ण आविष्कारों का परिणाम यही हुआ कि आज मनुष्य पूर्णरूपेण मशीन का गुलाम बन गया है। मशीन के बिना उसका काम नहीं चल सकता। मशीन मानव पर हावी हो गई है। उपरोक्त सभी बड़े आदमी पुरुष थे या हैं परन्तु उनके द्वारा निर्मित मानव-समाज में शान्ति का कहीं नाम भी नहीं मिलता। मनुष्यों में सहयोग की भावना लुप्त हो गई है।

मानव-मानव के रक्त का प्यासा बन गया है। फिर पुरुष प्रधान इस समाज का मानव-जीवन के लिए क्या उपयोग रहा ?

विशेष—नारी-पुरुष के समानाधिकार के सम्बन्ध में यहाँ प्रेमचन्द ने मेहता के शब्दों में अपनी स्पष्ट सम्मति व्यक्त की है।

(१६) पृष्ठ १७०—"मैं आपसे पूछता हूँ .... चुगता है।"

मेहता पश्चिम के नारी-स्वातन्त्र्य आन्दोलन पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रहार करते हुए कहते हैं कि नारी के लिए पुरुष के गुणों को अपनाने की लालसा करना उसके लिए घातक होगी। इस बात को वे 'बाज' और 'हंस' की तुलना द्वारा स्पष्ट करते हैं। बाज दूसरी चिड़ियों के शिकार पर जीवत रहने वाला मासाहारी पक्षी होता है। उसका जीवन सदैव हिंसा एवं अशान्ति से भरा रहता है। इसके विपरीत हंस मोती चुगने वाला तथा मानसरोवर के आनन्द-मय एवं शान्त वातावरण में रहता हैं। क्या हँस के लिए यह उचित होगा कि वह उस सात्विक एवं आनन्दमय शान्त जीवन को त्याग कर बाज के समान चिड़ियों का शिकार करने लगे। अर्थात् क्या यह उचित होगा कि नारी, जो हंस के समान सात्विक प्रवृत्ति वाली होती है, बाज के समान नृशंस, हिंसा-कारी एवं दुखद संघर्षों में सदैव लिप्त रहने वाले पुरुष के गुणों को अपना ले। यदि हंस बाज के समान शिकारी बन जाय तो क्या वह हमारी बधाई का पात्र होगा ? परन्तु वास्तविकता यह है कि हँस प्रयत्न करने पर भी बाज का रूप धारण नहीं कर सकता। क्योंकि उसके पास बाज के समान न तो तेज चोंच है, न उतने तीखे नाखून हैं, और न उतनी तेज आँखें और उतने शक्तिशाली डने हैं और न ही उसमें रक्त-पान करने की उतनी तेज प्यास है। अर्थात् हंस में बाज की एक भी विशेषता नहीं है। इसलिए वह बाज नहीं बन सकता। अगर फिर भी वह बाज बनने का प्रयत्न करेगा तो उसे इस प्रयत्न में युग बीत जायेंगे फिर भी इस बात में सन्देह है कि वह पूर्ण रूप से बाज बन भी पायेगा या नहीं। इस प्रयत्न का यह परिणाम अवश्य होगा कि वह अपने हंस के गुणों को भूल जायेगा, भले ही बाज बन पाये या न बन पाये। क्योंकि हंस मोती चुगता है, वह माँस नहीं खा सकेगा।

नारी हंस के समान है। उसमें हंस की सी ही सात्विकता एवं शान्ति होती है। वह इन्हीं गुणों में सच्चा आनन्द पाती है। पुरुष बाज के समान हिंसक एवं रक्त का प्यासा होने के कारण तामसी प्रवृत्ति का होता है। यदि नारी पुरुष के गुणों को अपनाने का प्रयत्न करेगी तो परिणाम यह होगा कि वह पुरुष के उन गुणों को पूर्णरूपेण प्राप्त करने में तो असमर्थ रहेगी ही परन्तु उसकी सबसे बड़ी हानि यह होगी कि वह अपने नारीत्व के गुणों को खो बैठेगी। अतः जिस प्रकार हंस बाज नहीं बन सकता उसी प्रकार नारी पुरुष नहीं बन सकती।

विशेष—प्रेमचन्द नारी और पुरुष के कार्य क्षेत्रों को पृथक-पृथक मानने के पक्षपाती हैं। वे इस बात के समर्थक नहीं हैं कि नारी पुरुष के कार्यों को करने में समर्थ है। प्रसाद जी ने भी इसी प्रकार की विचारधारा अपने नाटक 'अजातशत्रु' में प्रतिपादित की है।

(१७) पृष्ठ १७३—**'जिसे तुम प्रेम कहते हो.........अविश्वास है।''**

मालती की छोटी बहन सरोज ने जब यह कहा कि अब युवतियाँ विवाह को पेशा न बनाकर प्रेम के आधार पर विवाह करना चाहती हैं तो मेहता ने उत्तर देते हुए कहा कि जिसे आजकल प्रेम कहा जाता है वह वास्तव में प्रेम न होकर धोखा-मात्र है। क्योंकि इस प्रेम में व्यक्ति की उद्दीप्त लालसा अपने स्वाभाविक रूप में व्यक्त न होकर अपने विकृत रूप में व्यक्त होती है। जिस प्रकार साधारण भिखारी भीख माँगता है तो उसे बुरा कहा जाता है। परन्तु जब एक व्यक्ति गेरुए कपड़े रंग कर भीख माँगने निकलता है तो संसार उसे सन्यासी समझ कर उसे भीख देता है और उसका सम्मान भी करता है। परन्तु भीख माँगने का मूल उद्देश्य वहाँ भी रहता है। उस उद्देश्य के रूप का संस्कार कर उसे उदात्त बनाने का प्रयत्न किया जाता है। जिस प्रकार सन्यासी भीख के वास्तविक रूप को छिपाने के लिए उसका संस्कार कर देता है वही हालत प्रेम की है। प्रेम भी उद्दीप्त लालसा का संस्कार किया हुआ विकृत रूप है। उद्दीप्त लालसा कहने से उसके प्रति घृणा एवं सामाजिक विरोध की भावना उत्पन्न होती है, परन्तु जब उसे 'प्रेम' की संज्ञा दे दी जाती है तो वही समाज द्वारा मान्य स्वीकार कर लिया जाता है। प्रेम वैवाहिक

जीवन में, अपने सच्चे स्वरूप में कम मात्रा में रहता है और मुक्त विलास में तो उसके अस्तित्व का ही पता नहीं चलता । अर्थात् प्रेम का विलास से कोई सम्बन्ध नहीं हैं । मनुष्य को सच्चा आनन्द केवल दूसरों की सेवा करने में ही प्राप्त होता है । सेवा द्वारा ही व्यक्ति अधिकार प्राप्त करता है, सेवा की भावना से ही शक्ति उत्पन्न होती है । यदि दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी परस्पर सेवा की भावना को लेकर चलें तो उनमें जीवन-पर्यन्त स्नेह रह सकता है । बड़े-बड़े सङ्कट पड़ने पर भी वे इस जीवन को विच्छिन्न करने की कल्पना भी मन में नहीं ला सकेंगे क्योंकि सेवा द्वारा उन दोनों का आत्मिक सम्बन्ध निरन्तर प्रगाढ़ होता चला जाता है । परन्तु जिस दाम्पत्य जीवन में सेवा भाव का अभाव हो सकता है वहाँ न तो परस्पर विश्वास स्थायी रहता है और न आपस में सहानुभूति रहती है । इसीलिए वहाँ तलाक की स्थिति आने में देर नहीं लगती । निष्कर्ष यही निकला कि सेवा भाव द्वारा ही दाम्पत्य-जीवन सुखी रह सकता है । अधिकार या समानता का प्रश्न उठाने से उसमें व्याघात उत्पन्न हो जाता है ।

विशेष—मेहता के शब्दों में प्रेमचन्द ने 'प्रेम' की जो व्याख्या इन पंक्तियों में प्रस्तुत की है वह बड़ी सुलझी हुई और विचारोत्तेजक है ।

(१९) पृष्ठ २०६––"जिसे संसार दुख·········लय हो जाता है ।"

मेहता गोविन्दी को आदर्श नारी मानकर अलङ्कारिक भाषा में भावुक होकर उसकी प्रशंसा कर रहे थे । इस पर गोविन्दी प्रशंसा से उल्लसित होकर कहा कि आपको तो दार्शनिक न होकर कवि होना चाहिए था । मेहता ने उत्तर दिया कि बिना दार्शनिक हुए कोई कवि हो ही नही सकता । दर्शन तो कविता तक पहुँचने के मार्ग की बीच की मंजिल है । इसके उपरांत मेहता सुख-दुख विषयक कवि दृष्टि की मीमाँसा करते हुए कहते हैं—

संसार की जिन बातों को संसार दुख से भरा मानता है; कवि असली सुख की प्राप्ति उन्हीं बातों से करता है । कवि एवं अन्य साँसारिक व्यक्तियों के दृष्टिकोणों का प्रधान अन्तर ही इस भेद का मूल कारण है । साँसारिक जन धन-ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि जैसी विभूतियों को सुख

प्राप्ति का साधन समझते हैं परन्तु कवि इन विभूतियों के प्रति तनिक भी आकर्षित नहीं होता। साँसारिक वैभव के प्रति कवि के हृदय में स्वाभाविक विरक्ति रहती है इसलिए इन विभूतियों के प्रदर्शन में उसे प्रसन्नता या सुख नहीं मिलता। कवि भावुक होता है। उसका हृदय करुणा एवं संवेदना से भरा रहता है। इसलिए उसका स्वाभाविक आकर्षण दैन्य, भग्न आशायें, दुख आदि के प्रति होता है। अपने जीवन में निराशा, बीती हुई स्मृतियों के सहारे जीने वाले तथा जीवन में पूर्ण रूप से निराश होकर निरन्तर रोते रहने वाले प्राणी कवि के स्नेह के एवं संवेदना के सच्चे अधिकारी होते हैं। जिस दिन कवि का प्रेम जीवन के इस पीड़ित, उपेक्षित पक्ष के प्रति नहीं रहेगा, उसी दिन उसका कवि नष्ट हो जायेगा। दार्शनिक जीवन के इन दुखद रहस्यों का उद्घाटन कर, तटस्थ भाव से केवल विनोद सा करता रहता है। वह केवल कारणों का विवेचन करता हुआ अपने निष्कर्ष देता है। वह कहता है कि धन बुरी वस्तु है। परन्तु उसका यह कहना तटस्थ भाव से रहता है। व्यावहारिक जीवन की वास्तविकता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसके विपरीत कवि जीवन के इस पीड़ित एवं उपेक्षित पक्ष को देखकर सम्वेदना से भर उठता है। उसका यह रूप दार्शनिक के समान तटस्थ रूप न होकर व्यावहारिक रूप होता है। इसी को उसका लय होना कहा गया है। कवि दार्शनिक के समान मीमाँसा नहीं करता बल्कि स्वयं उस अनुभूति में निमग्न होकर ऐसे शब्द-चित्रों की सृष्टि करता है जो दूसरों के हृदयों में भी वैसी ही अनुभूति उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। इसीलिए कवि का महत्व दार्शनिक से अधिक माना जाता है।

विशेष—उच्च कोटि के कवि के लिये यह आवश्यक है कि वह दार्शनिक हो—प्रेमचन्द ने यहाँ इस मत का समर्थन किया है।

अँग्रेजी आलोचक कॉलरिज ने भी यही बात एक स्थान पर कही है—

"No man was ever yet a great poet without being at a same time a profound philosopher."

(१९) पृष्ठ २०८-९—"**भविष्य की चिन्ता**············**कोल्हू है।**"

इस गद्य-खण्ड में मेहता ने मानव-जीवन के सच्चे रूप की व्याख्या की

है। वे जीवन को आनन्दमय क्रीड़ा मानते हैं, द्वेष आदि विकृतियों का उसमें स्थान स्वीकार नहीं करते। इसलिए वे भूत एवं भविष्य की चिन्ता न कर वर्तमान में ही निमग्न रहते हैं। मेहता जड़वादी हैं इसलिए ईश्वर, मोक्ष उपासना आदि में उनकी आस्था नहीं है। उनका तर्क यह है कि—

भविष्य अनिश्चित होता है। हमें सदैव यह शंका रहती है कि भविष्य में न जाने क्या होगा इसलिए यह शंका हमें कायर बना देती है भूतकाल की विभिन्न घटनायें हमारे ऊपर इतना भार डाल देती हैं कि हम उनकी चिन्ता करते-करते पस्त हो जाते हैं। मनुष्य की जीवन-शक्ति इतनी सीमित होती है कि यदि हम उसे भविष्य एवं भूत की चिन्ताओं में लगाये रखेंगे तो वह क्षीण हो जायेगी। भूत का भार वर्तमान के लिए व्यर्थ होता है। भूत हमें रूढ़ियों, अन्ध-विश्वासों आदि के जाल में उलझा कर पस्त हिम्मत बना देता है। हम रूढ़ियों को तोड़ने में अपने को असमर्थ पाते हैं। हम में इतनी शक्ति ही नहीं रहती कि उन्हें तोड़ सकें। इसका परिणाम यह होता है कि हमारी जो शक्ति मानव-धर्म के उत्कर्ष में, परस्पर सहयोग, भाईचारे आदि में लगनी चाहिए वह इन शुभ कार्यों में न व्यय होकर पुरानी अदावतों का बदला लेने तथा बाप-दादों के ऋण को चुकाने में व्यय हो जाती है। यही शक्ति यदि शुभ कार्यों में लगे तो मानव एवं समाज का कितना अधिक कल्याण हो।

इसके उपरान्त मेहता ईश्वर और मोक्ष का विवेचन करते हैं। उन्हें ऐसे लोगों पर हँसी आती है जो ईश्वर और मोक्ष के चक्कर में पड़े रहते हैं। क्योंकि मोक्ष और उसके लिए की जाने वाली उपासना मनुष्य के अहंकार की पराकाष्ठा है। इससे व्यक्ति स्वयं में केन्द्रित होकर मानवता के विराट रूप को भूल जाता है। मेहता मोक्ष एवं उपासना की अपने दृष्टिकोण से व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ईश्वर वहाँ रहता है जहाँ जीवन का उल्लास है, क्रीड़ा है परस्पर प्रेम है। मानव जीवन को सुखी बनाना ही उपासना का सच्चा स्वरूप है और यही मानव का मोक्ष है। जो ज्ञानी होता है वह कहता है कि हमें अपनी भावनाओं पर काबू पाना चाहिए। हर्ष-विषाद का हमारे ऊपर कोई प्रभाव न पड़े। ऐसी स्थिति आने पर ही मोक्ष एवं ईश्वर की

प्राप्ति होती है। परन्तु मेहता का कहना है कि यदि मानव की भावनायें मर गईं तो वह मानव नहीं रहा। सच्चा मानव वही है जो हँसता है और रोता भी है। यदि ये भावनायें मर गईं तो मनुष्य मनुष्य न रह कर जड़-पत्थर बन जायेगा। इसलिए ज्ञान का वह रूप जो मनुष्य की मनुष्यता को नष्ट कर दे, ज्ञान न होकर कोल्हू के समान मानवता का नाश कर देने वाला होता है।

ज्ञानी उस अवस्था का वर्णन करता है जहाँ सुख-दुख की भावना मर कर समरसता की स्थिति आ जाती है। ऐसी स्थिति आ जाने पर मानव की मानवता नष्ट हो जाती है। मेहता जड़वादी हैं इसलिए इस स्थिति का विरोध करते हैं। दूसरे शब्दों में वे घोर भौतिकता के समर्थक तथा आध्यात्मिकता के कट्टर विरोधी हैं। मोक्ष एवं उपासना का विरोध भी वे इसी कारण करते हैं। मानव-कल्याण या मानवता का प्रसार करने में उपासक का समाज के लिए कोई महत्व या उपयोगिता नहीं होती। उपासक अपने को संसार से अलग-विशिष्ठ (अहं प्रधान) व्यक्ति समझता है। वह समाज से तटस्थ होकर, स्वयं के ही कल्याण के लिए ईश्वर में लय हो जाने का प्रयत्न करता है।

विशेष—प्रेमचन्द ने मानव जीवन की व्याख्या इन पंक्तियों में की है। ईश्वर, मोक्ष आदि को भी वे उपयोगितावादी की दृष्टि से देखते हैं।

(२०) पृष्ठ ३१२—"सिल्लो निसंज्ञ' ····सर्वनाश कर देगा।"

जब मातादीन ने होरी के द्वारा सिलिया को दो रुपए भिजवाये तो सिलिया उन्हें पाकर फूली न समाई। मातादीन के प्रति उसका सारा आक्रोश समाप्त हो गया। कङ्गाल को खजाना मिल गया था। आनन्द की वह उमङ्ग उसके हृदय में समा नहीं रही थी। वह उसे किसी से व्यक्त कर देने के लिए छटपटा रही थी इसी कार्य के लिए रात के सन्नाटे में नदी पार कर सोना के यहाँ पहुँची। परन्तु सोना ने इतनी रात गए आने पर उसका स्वागत न कर अपमान किया।

अपमानित होकर सिलिया संज्ञाहीन सी होकर जमीन की ओर ताक रही थी। वह चाह रही थी कि धरती फट जाय और वह उसमें समा जाय। वह

चमारिन थी, निर्धन थी, दूसरे की रखैल थी। उसने जीवन में बहुत अपमान सहे थे, उसकी दुर्दशा की गई थी, परन्तु सोना द्वारा किया गया आज का अपमान उसके मर्म को बेध गया। उसका ऐसा अपमान आज तक नहीं हुआ था। गुड़ जब मटकों के अन्दर बन्द घर में रखा रहता है तो कितनी ही मूसलाधार वर्षा क्यों न हो, वह नहीं बिगड़ता। परन्तु जब उसे धूप में सूखने के लिए फैलाया जाय और उस समय पर पानी का एक छींटा भी पड़ जाय तो वह पिघल कर खराब हो जाता है। सिलिया के मन की स्थिति उसी सूखने के लिए डाले हुए गुड़ के समान थी। सिलिया ने आज तक अपने सुख-दुख की बात किसी से भी नहीं कही थी। परन्तु आज वह अपने उस अप्रत्याशित रूप से प्राप्त आनन्द की बात अपनी एकमात्र सखी सोना को सुनाने के लिए, इतना कष्ट उठा कर उसके घर गई थी परन्तु बदले में उसे अपमान मिला। इस अपमान ने उसकी आत्मा को व्यथा से झकझोर डाला। जब तक हम अपनी बात किसी से नहीं कहते, कोई बात नहीं। लेकिन जब हम किसी को अपना समझ कर उसके साथ अपना सुख-दुख बँटाने के लिए जाते हैं और हमें प्रतिदान में अपमान मिलता है। तो हमें मर्मान्तिक वेदना होती है। जिस सखी पर सिलिया का इतना अनन्य विश्वास था उसी के द्वारा इस प्रकार अपमानित होने की बात वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकती थी।

विशेष—(१) सिल्लो की मनः स्थिति का चित्रण यहाँ लेखक ने बड़ा ही मनोवैज्ञानिक एवं सजीव किया है।

(२) शैली कवित्वपूर्ण है।

(२१) **पृष्ठ** ३१६—अज्ञान की भाँति······मुश्किल हो जाता है।"

मेहता गाँव में बैठे हुये गाँव वालों की कुश्ती देख रहे थे। कुश्ती देखते-देखते उनके हृदय में ये विचार उत्पन्न हुए कि ऐसे प्रौढ़ एवं निरीह बालकों के समान इन गाँव वालों के साथ शिक्षित कहलाने वाले सभ्य पुरुष कैसे इतना नृशंस व्यवहार कर पाते हैं। मेहता दार्शनिक अथवा ज्ञानी हैं। अतः इस गद्य-खण्ड में उपन्यासकार ने ज्ञान एवं अज्ञान का वर्णन कर ज्ञानी पुरुष की प्रवृत्तियों का चित्रण किया है। अज्ञानावस्था में मनुष्य में विचार करने की शक्ति

नहीं होती परन्तु ज्ञानावस्था में मनुष्य यथार्थ की भूमि को त्याग कर आदर्श-वादी हो जाता है।

अज्ञानी पुरुष सरल, निष्कपट एवं जीवन के सुनहले स्वप्न देखने वाला होता है। परन्तु उसके ये स्वप्न केवल स्वप्न ही न होकर यथार्थ जीवन पर आधारित रहते हैं। अज्ञानी की भाँति ज्ञानी भी सरल, निष्कपट एवं सुनहले स्वप्न देखने वाला होता है। परन्तु उसके स्वप्न यथार्थ से परे आदर्श लोक के होते हैं। वह अपने आदर्शवाद के मोह में यथार्थ की विभीषिका को नहीं देख पाता और जब अपने उस आदर्श के प्रतिकूल व्यवहार होता देखता है तो उसे अमानुषीय घोषित कर देता है क्योंकि मानवता के शुभ पक्ष में उसकी दृढ़ आस्था रहती है। वह उसमें विकृति को सहन एवं स्वीकार नहीं कर पाता। अपने आदर्श के लोक में विचरण करते हुये ज्ञानी यथार्थ की जटिलता की स्वाभाविकता को नहीं समझ पाता। उसकी समझ में यह नहीं आता कि भेड़िया भेड़ों को क्यों खा जाता है। वह यह भूल जाता है कि यह प्रकृति का नियम है। भेड़ भेड़िया का खाद्य है। यथार्थ का यह स्वाभाविक एवं प्राकृतिक रूप उसकी कल्पना पर आधारित आदर्शवादी मानवता के सर्वथा विपरीत होता है। ज्ञान इन प्राकृतिक नियमों को अप्राकृति एवं अमानुषीय समझने लगता है। अपने आदर्शवाद के मोह में डूबे रहने के कारण उसे यथार्थ का रूप अगम्य, जटिल, दुर्बोध और अप्राकृतिक प्रतीत होता है। इसी कारण मेहता यह समझने में असमर्थ रहते हैं कि इन निरीह भोले-भाले ग्रामीणों की दशा इतनी दयनीय क्यों है।

विशेष—इस कथन से मेहता के विचारक रूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है तथा उनके चरित्र के गुण दयालुता पर भी प्रकाश पड़ता है।

(२२) पृष्ठ ३४६—"अब वह ... ... हो जाता है।"

मेहता के सिर में भयङ्कर दर्द हो रहा था। मालती के हाथ रखते ही जैसे गायब हो गया। मेहता सोचने लगे कि मालती के स्पर्श में उसकी तपस्या एवं कर्मण्यता का ही प्रभाव है। मालती के प्रति उनकी श्रद्धा और भी गहरी हो गई।

मेहता मालती से प्रेम करने लगे थे और उसे प्राप्त करने का प्राणपण से

उद्योग कर रहे थे परन्तु मालती के इस रूप को देखकर उन्होंने समझा कि वह अब प्रेम की वस्तु न रहकर श्रद्धा की वस्तु बन चुकी थी। प्रेम में हम अपने प्रेमास्पद को प्राप्त करने का स्वप्न देखा करते हैं परन्तु श्रद्धा में श्रद्धेय को प्राप्त करने की कामना नहीं रह जाती। प्रेमी अपने प्रेमास्पद पर एकाधिकार करना चाहता है परन्तु श्रद्धेय सब की श्रद्धा का अधिकारी बन जाता है। श्रद्धालु श्रद्धेय पर एकाधिकार की भावना न रखकर दूसरों को भी उसके प्रति श्रद्धा करते देखकर प्रसन्न होता है। प्रेम व्यक्ति तक ही सीमित रहता है परन्तु वही प्रेम श्रद्धा में परिवर्तित होकर सामाजिक वस्तु बन जाता है। अब मेहता मालती के प्रति श्रद्धालु हो उठे थे। इसीलिये मालती उनके लिये दुर्लभ वस्तु बन गई थी। महान आत्मायें दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहती हैं। भक्त इसीलिए भगवान को प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं।

मेहता अपने प्रेम में जिस सुख को प्राप्त करने की कल्पना किया करते थे उस सुख की कल्पना इस श्रद्धा भाव के कारण और भी गहरी हो उठी थी। और इससे उनके जीवन में और भी स्फूर्ति का संचार हो गया था। प्रेम में मान की भावना रहती है- अपना महत्व भी रहता है। अर्थात् व्यक्ति का अहं नष्ट नहीं हो पाता। परन्तु श्रद्धा में व्यक्ति के अहं का नाश हो जाता है। वहाँ अपना व्यक्तित्व नष्ट होकर केवल श्रद्धेय की ही स्थिति रह जाती है। अपने अहं को पूर्णतः विनष्ट कर श्रद्धेय को प्राप्त करने की भावना ही श्रद्धालु के जीवन का इष्ट बन जाती है। प्रेम में अधिकार की भावना रहती है। प्रेमी अपने प्रेम के प्रतिदान में अपने प्रेमास्पद से भी प्रेम की अपेक्षा करता है। परन्तु श्रद्धा में प्रतिदान की ऐसी कोई भावना नहीं रहती। श्रद्धा का चरम आनन्द अपने अहं का विसर्जन कर श्रद्धालु के प्रति पूर्ण समर्पण कर देने में ही है।

विशेष—मेहता की मनः स्थिति का बड़ा ही स्वाभाविक और सजीव चित्रण लेखक ने यहाँ किया है। प्रेम और श्रद्धा के सम्मिलन पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है।

(२३) पृष्ठ ३५१—"जब तक ममत्व·········पीछे पीछे चलूँगी।"

मेहता मालती से विवाह की प्रार्थना करते हैं परन्तु मालती उत्तर देती है कि पति-पत्नी बन कर रहने से मित्र बन कर रहना अधिक सुखकारी होता है। क्योंकि पति-पत्नी बन जाने पर आत्मायें गृहस्थी के सीमित क्षेत्र में बँध कर विकास नहीं कर पातीं। ऐसा होने पर नई-नई जिम्मेदारियाँ आ जाती हैं और मानव की सम्पूर्ण शक्ति उन्हीं जिम्मेदारियों को पूरा करने में व्यय होने लगती है; क्योंकि गृहस्थ जीवन में ममत्व एवं अपनत्व की भावना सर्वोपरि रहती है। यह हमारा परिवार है, पहले हमें इसकी चिन्ता करनी है। इस प्रकार की भावनायें उत्पन्न हो जाने पर व्यक्ति का अपने जीवन के प्रति मोह प्रबल हो जाता है, उसकी स्वार्थ भावना अपने परिवार की हित-चिन्ता में रत रहने लगती है।

इसलिये स्वार्थ की भावना एवम् जीवन के मोह से मुक्ति पाने के लिये हमें ममत्व एवम् अपनत्व के इस सीमित संसार से दूर रहना चाहिये। जिस दिन हमारा मन किसी के प्रति मोह में आसक्त हुआ और हम पारिवारिक बन्धन में बँध गये, उसी समय से हमारा त्याग और सेवा का क्षेत्र मानवता के विशाल क्षेत्र से हटकर अपने परिवार की सीमाओं तक ही रह जायेगा। क्योंकि परिवार बन जाने पर हमारे ऊपर नई-नई जिम्मेदारियाँ आ जायेंगी और इसका फल होगा कि हमारी जो शक्तियाँ मानवता के कल्याण में लगनी चाहिये वे परिवार की कल्याण कामना में ही व्यय होने लगेंगी।

अतः मालती यह नहीं चाहती कि वह मेहता जैसे विचारशील तथा प्रतिभावान व्यक्ति की शक्तियों को परिवार के सीमित क्षेत्र में बाँध दे क्योंकि मेहता का जीवन अभी तक समाज के कल्याण के लिये था, उसमें स्वार्थ की भावना बहुत कम थी। इसलिये मालती मेहता के उस जीवन को अपने स्वार्थ में बाँध कर पतन की ओर नहीं ले जाना चाहती। यह इसलिये कि आज दुखी संसार को मेहता जैसे साधकों की जरूरत है जो सारे संसार को अपना समझ कर उसके दुख को दूर करने में जुट जाँय।

सारे संसार में आतंक, भय और अन्याय का साम्राज्य छा रहा है। मनुष्य अन्ध-विश्वास, छल-कपट तथा अपनी ही स्वार्थ-साधना में डूबा हुआ है। मेहता ने संसार की इस विषम दशा को समझा है। और यदि मेहता

जैसे बौद्धिक प्राणी भी दुखियों की इस आर्त-पुकार को समझने की शक्ति नहीं रखेंगे तो औरों से क्या आशा की जा सकती है। झूठे तथा स्वार्थी व्यक्ति ही इस विषमता की ओर से अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं। परन्तु मेहता ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि वे जागरूक विचार तथा समाज के कल्याण में रत रहने वाले प्राणी हैं। यदि मेहता भी अपने स्वार्थ में सीमित होकर रह जायेंगे तो उन्हें अपना वह जीवन भार हो उठेगा क्योंकि उनकी आत्मा इस स्वार्थ वृत्ति को स्वीकार नहीं कर सकेगी। उसे तो परमार्थ में ही आनन्द मिलता आया है।

इसलिए मालती आग्रह करती है कि मेहता अपनी विद्या एवं बुद्धि को तथा अपनी मानवता की उद्बुद्ध भावना को और भी उत्साह एवं शक्ति के साथ मानवता के कल्याण में लगादें। मालती भी जन-कल्याण के इस महायज्ञ में उनका साथ देगी। वे केवल उसका पथ प्रदर्शन करते रहें।

विशेष—(१) मालती के चरित्र की त्यागशीलता और उच्चता इन पंक्तियों से पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाती है। जिस मेहता को वह अपना सर्वस्व समझती है और जिन्हें प्राप्त करने के लिए वह अनवरत प्रयत्न करती है उसी मेहता को प्राप्त करने का जब अवसर आता है तो वह हृदय पर पत्थर रखकर पीछे हट जाती है। ऐसा करने के पीछे उसका नेक इरादा यह है कि मेहता को वह जीवन पथ पर अनवरत रूप से प्रगति करते देखना चाहती है अतः वह उन्हें अपने बन्धन में बाँध कर उनकी प्रगति को अवरुद्ध नहीं, करना चाहती।

(२) मालती का चरित्र प्रसाद जी के नाटक 'स्कन्दगुप्त' की देवसेना से मिलता हुआ है।

—: ० :—